# होटल मॉडर्न

( होटल के मालिक की आत्मकथा )


लेखक

सत्यकेतु विद्यालंकार, डी० लिट् ( पेरिस )

( मंगलाप्रसाद पारितोषिक विजेता )



प्रकाशक

सरस्वती-सदन

मसूरी

[ प्रथम संस्करण ] जून, १९५२ [ मूल्य ३।।)

प्रकाशक

केतु, सरस्वती-सदन,

मसूरी

मुद्रक

श्यामसुन्दर श्रीवास्तव

नेशनल हेराल्ड प्रेस

लखनऊ

# प्राक्कथन

किसी बड़े होटल में ठहरकर मैं ऐसा अनुभव करता हूं, मानो किसी चिड़ियाघर या अजायबघर में पहुंच गया हूं। कितने विभिन्न प्रकार के नर-नारी वहां देखने को मिलते हैं। बड़े-बड़े राजा और नवाब, पूंजीपति और व्यापारी, शक्ति के मद में मस्त सरकारी अफसर, मानव-समाज के कल्याण में रत राजनीतिक नेता, और अपने पति के पद, धन तथा प्रतिष्ठा के कारण गर्वोन्मत्त नारियां—इन सबको अत्यन्त समीप से देखने का अवसर बड़े होटल में ठहरकर प्राप्त होता है। और यदि आप इन्सानों के इस चिड़ियाघर के मालिक या संचालक हों, तब तो कहना ही क्या? आप अपने मेहमानों के घनिष्ठ सम्पर्क में तो आते ही हैं, साथ ही आपको कितने ही सरकारी अफसरों और कारोबारी लोगों से मिलने का भी अवसर प्राप्त होता है। यदि आपकी आंखें खुली हुई हों, ये दो चर्म-चक्षु नहीं अपितु ज्ञान-नेत्र—तो आप वर्तमान समाज को ध्यान से देखने और उस पर विचार करने का जो सुवर्णीय अवसर होटल में प्राप्त करते हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

इस पुस्तिका में मैंने एक ऐसे होटल-मालिक की आत्मकथा लिखी है, जो अपने मेहमानों और होटल के साथ सम्बन्ध रखनेवाले अन्य व्यक्तियों की गतिविधि को ध्यानपूर्वक देखता है, उनके मनोभावों का अनुशीलन करता है, और उनका चरित्र-चित्रण करने की क्षमता रखता है। इस पुस्तक द्वारा हमारे वर्तमान समाज की अनेक समस्याएं पाठकों के सम्मुख उपस्थित होंगी, और उनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विचार पाठकों के मन में उद्बुद्ध होंगे। यही इसे लिखने का प्रयोजन है।

अनेक पाठकों के मन में यह जिज्ञासा होगी, कि क्या यह आत्मकथा किसी सत्य घटना पर आश्रित है। इसका उत्तर मैं क्या दूं? मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो अभाव से भाव की, असत् से सत् की या शून्य से विश्व की उत्पत्ति में विश्वास रखते हैं, या उसकी उत्पत्ति की सामर्थ्य रखते हैं। इस कथानक की उत्पत्ति भी शून्य से नहीं हुई है। साहित्यकार वास्तविक जीवन में जो कुछ देखता है, जिन लोगों के सम्पर्क में आता है, उन्हीं से अपने पात्रों का निर्माण करता है। पर वह अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण करते हुए बहुधा अपने अनुभवों का सम्मिश्रण कर देता है, और इस प्रकार इस ढंग के पात्रों का सृजन करता है, जिनकी वस्तुतः कहीं सत्ता नहीं होती। मेरे इस कथानक के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है।

इसीलिए मैं यहां पर यह स्पष्ट रूप से लिख दूं, कि इस कथानक के सब पात्र कल्पित हैं। किसी जीवित अथवा दिवंगत व्यक्ति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। न रामनगर नाम का कोई शहर ही हिमालय की पर्वत-शृंखला में कहीं है, और न 'होटल मॉडर्न' नाम का कोई होटल ही किसी प्रसिद्ध पार्वत्य नगर में है। कितने ही गोयल, त्यागी और तिवारी आज-कल राजनीतिक नेता हैं; कितने ही वर्मा और सक्सेना उच्च सरकारी पदाधिकारी हैं। इन विभिन्न प्रकार के लोगों का चरित्र-चित्रण करते हुए मैं नये नामों का आविष्कार कहां से करता? मैंने वही नाम प्रयुक्त किये हैं, जो प्रचलित हैं। पाठकों से प्रार्थना है, कि वे यह ढूंढने का प्रयत्न न करें कि इस पुस्तक में आए हुए विविध नाम किन व्यक्तियों के प्रति निर्देश करते हैं, क्योंकि ये सब नाम कल्पित हैं। इनसे व्यक्ति-सामान्य का बोध होता है, व्यक्ति-विशेष का नहीं।

इस प्रसंग में मैं यह भी लिख देना चाहता हूं, कि यह कथानक सन् १९४८ की स्थिति को दृष्टि में रखकर लिखा गया है। उस समय भारत को स्वराज्य प्राप्त किये अधिक समय नहीं हुआ था। अतः अनेक सरकारी कर्मचारियों व देश के धनी-मानी लोगों की मनोवृत्ति में अधिक

परिलक्षित नहीं आया था। अब स्थिति बदल रही है, और इस परिवर्तन को मैं भी अनुभव करता हूं। अतः सम्भव है, कि अनेक पाठक इस कथानक में वर्णित कतिपय घटनाओं व चरित्र-चित्रण को सामयिक न समझें। पर उन्हें यह न भूलना चाहिये, कि यह कथानक सन् १९४८ से सम्बन्ध रखता है, जबकि ब्रिटिश लोगों को भारत से विदा हुए एक साल ही हुआ था।

इतिहास और राजनीति-शास्त्र पर मैं अनेक पुस्तकें लिख चुका हूं। अब तक हिन्दी-संसार मुझे एक ऐतिहासिक के रूप में ही जानता है। कथानक या उपन्यास के ढंग पर रचना करने का यह मेरा पहला अवसर है। पर मुझे आशा है, कि पाठक मेरी इस कृति को पसन्द करेंगे। यदि मेरी यह आशा पूर्ण हुई, तो मैं साहित्यिक क्षेत्र में अपनी कतिपय अन्य रचनाएं भी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करूंगा।

—सत्यकेतु विद्यालंकार

# विषय-सूची

चन्द्रसिंह को

जो हृदय मंदिर में 'अधिष्ठातृ देवता'

के समान था।

# होटल के मालिक की आत्मकथा

## (१)

## मैनेजर साहब के दरबार में

सन् १९४७ का साल था और नवम्बर का महीना। मुझे बेकार हुए दो साल के लगभग हो चुके थे। महायुद्ध की समाप्ति के साथ मेरे रोजगार और आमदनी का भी अन्त हो गया था। युद्ध कितनी भयंकर बात है, उससे कितने धन और जन का विनाश होता है। लाखों स्त्रियां विधवा हो जाती हैं, लाखों बच्चे अनाथ हो जाते हैं। पर पूंजीपतियों और व्यापारियों के लिये युद्ध एक वरदान के समान होता है। बात की बात में माल की कीमत चौगुनी व दसगुनी हो जाती है। बढ़ती हुई कीमतों के समय में व्यापारी खुलकर खेलता है, हजारों-लाखों के वारे-न्यारे करता है, और देखते-देखते लखपति व करोड़पति बन जाता है। केवल पूंजीपतियों के लिये ही नहीं, श्रमिकों व पढ़े-लिखे लोगों के लिये भी युद्ध सुवर्णीय अवसर होता है। बेरोजगार व बेकार लोगों को इससे काम मिलता है। मामूली पढ़े-लिखे लोग फौज में भरती होकर कैप्टिन, मेजर व कर्नल-जैसे ऊंचे पदों पर पहुंच जाते हैं। अब वह युग बीत गया, जब सेना में ऊंचा पद पाने के लिये सैनिक शिक्षा की आवश्यकता होती थी। सैनिक दफ्तरों के बाबू भी अब लेफ्टिनेन्ट होते हैं, रसद का इन्तजाम करनेवाले भी अब मेजर होते हैं। महायुद्ध मेरे लिये भी वरदान के समान था। लड़ाई शुरू होते ही मैं मानव-सभ्यता और प्रजातन्त्र के उच्च आदर्शों की रक्षा करने के उच्च उद्देश्य से सेना में भरती हो गया था। शिक्षा मैंने अच्छी ऊंची पाई थी। भारत की एक यूनिवर्सिटी से

एम० ए० पास करके कुछ साल के लिये मैं विलायत भी हो आया था। भारत में लण्डन की डिग्री की बहुत कीमत है। इसलिये लण्डन स्कूल आफ इकनोमिक्स में भरती होकर मैंने वहां से बी० एस-सी० की डिग्री प्राप्त कर ली थी, और इस कोशिश में था, कि किसी कालिज में अर्थशास्त्र के अध्यापक पद पर नियुक्त हो जाऊं। इसी बीच में महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। अब २५० रु० मासिक की प्रोफेसरी की मुझे क्या आवश्यकता थी? सेना के रसद-विभाग में मुझे एक अच्छी नौकरी मिल गई। अंग्रेजी अदब-कायदों से मैं भली भांति परिचित था। लण्डन रहने से मेरी बोलचाल में भी अंग्रेजियत प्रविष्ट हो गई थी। भारतीयों में शिक्षा का सबसे ऊंचा मानदण्ड यही है, कि वे अंग्रेजी कितनी अच्छी बोल सकते हैं। इस मानदण्ड के अनुसार मैं उच्च शिक्षित था। इस दशा में मुझे उन्नति करते क्या देर लगती? शीघ्र ही मैं कैप्टिन से मेजर और मेजर से लेफ्टिनेन्ट कर्नल बन गया। वेतन और सम्मान दोनों ही मुझे प्रचुर परिमाण में प्राप्त थे। ऊपर की आमदनी भी कम न थी। रसद के ठेके मेरे हाथ से दिये जाते थे। भारतीय ठेकेदार अफसरों को खुश करने में बहुत चतुर होते हैं। मुझे भी खुश करने में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी थी। युद्ध के पांच साल बड़े मजे में व्यतीत हुए। मैंने खूब रुपया कमाया और दिल खोलकर खर्च किया।

युद्ध की समाप्ति पर सरकार को मेरी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रही। हम सब लोग सेना में स्वयंसेवक के रूप में सम्मिलित हुए थे। हिटलर और मुसोलिनी सदृश 'सभ्यता के शत्रुओं' और 'लोकतन्त्रवाद के विरोधियों' से मानव-समाज की रक्षा करने के पुनीत उद्देश्य से ही हमने 'अस्त्र' धारण किया था। अब शत्रु का संहार हो चुका था और हम लोग सैनिक सेवा से विमुक्त हो अपने घर आ बैठे थे। युद्ध के समय मैंने जो कुछ बहुत रुपया बचाया था, वह बेकारी के दिनों में खर्च हो गया था। अब मेरा यही काम था, कि रोज अखबारों के वाण्टेड (आवश्यकता) के कालमों को

छानबीन करें, और रोज आवेदन-पत्र रजिस्ट्री द्वारा भेजते रहें । कितनी ही जगहों पर आवेदन-पत्र भेजे, बड़े-बड़े ब्रिटिश अफसरों के प्रमाण-पत्रों के आधार पर मुझे भरोसा था, कि मुझे कहीं न कहीं अच्छी नौकरी अवश्य मिल जायगी । पर सब तरफ से निराशा हुई । मेरी ही तरह कितने ही अन्य भी उच्च-शिक्षा-प्राप्त लोग इन दिनों बेकार थे । युद्ध के बाद सर्वत्र जो बेकारी बढ़ रही थी, मैं भी उसकी लपेट में आ गया था, और अपनी किस्मत को दोष देने के अतिरिक्त अब कोई उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता था । पर प्रयत्न करना मनुष्य के हाथ में है, और फल देना भगवान् के हाथ । इसीलिये मैं प्रतिदिन तीन-चार दैनिक अखबार खरीदता था, और उनके विज्ञापनों का अवलोकन करने में कितना ही समय व्यतीत कर देता था ।

दस नवम्बर की बात है, जब कि स्टेट्समैन में निम्नलिखित विज्ञापन पढ़कर मुझमें आशा का संचार हुआ—"आवश्यकता है, एक किरायेदार व ठेकेदार की, जो रामनगर के होटल मॉडर्न को ठेके पर लेकर आधुनिक यूरोपियन शैली पर उसका संचालन करे । विस्तृत विवरण के लिये मैनेजर, विजयनगर रियासत को पत्र लिखें ।"

रामनगर हिमालय का एक प्रसिद्ध पार्वत्य स्थान है, जहां ग्रीष्म ऋतु में हजारों यात्री स्वास्थ्य-लाभ करने और गरमी से बचने के लिये जाते हैं । कुछ महीनों के लिये यह इन्द्रपुरी को भी मात करने लगता है । मैं रामनगर व होटल मॉडर्न से भली भांति परिचित था । महायुद्ध के दिनों में कई बार वहां ठहर भी चुका था । उन दिनों आमदनी की कोई कमी न थी । अंग्रेज और अमेरिकन सैनिकों को भारत के मैदान की गरमी से बचकर स्वास्थ्य-लाभ करने के लिये विशेष छुट्टी मिलती थी, और पहाड़ के खर्च का भत्ता भी । यह [illegible] सैनिक अफसरों को भी प्राप्त थी, और इसका [illegible] बार रामनगर गया था और वहां होटल मॉडर्न में [illegible] विशाल होटल [illegible] था ।

होटल मॉडर्न किराये पर मिलता है, यह जानकर मेरे विचार में आया, कि क्यों न मैं भी इसके लिये एक आवेदन-पत्र भेज दूं। यदि नौकरी नहीं मिलती, तो कोई कारोबार ही सही। बेकारी से तो बेगार भी अच्छी होती है। लण्डन स्कूल आफ इकनोमिक्स की उच्च शिक्षा यदि किसी काम नहीं आती, तो वह अनुभव तो काम आयगा, जो विलायत में व सैनिक सेवा में प्राप्त किया था। मैंने विजयनगर रियासत के मैनेजर साहब के नाम पत्र लिख दिया। अधिक प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं हुई। चार दिन बाद उनका उत्तर मिला, जिसमें होटल मॉडर्न का विस्तृत विवरण देने के साथ-साथ यह भी लिखा हुआ था, कि तीस नवम्बर को आप आगरा आकर विजयनगर हाउस में मिलें। यह पत्र पाकर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैं उस दिन की कल्पना करने लगा, जब कि रामनगर का प्रसिद्ध होटल मॉडर्न मेरे हाथों में होगा--उसके दर्जनों बैरे, खानसामे और अन्य कर्मचारी मेरे अधीन होंगे। दो साल की बेरोजगारी के बाद फिर मुझे काम मिलेगा, और काम भी ऐसा जिसमें सब प्रकार का सुख, सम्मान व वैभव मुझे प्राप्त होगा। जिस होटल में बड़े-बड़े राजा, महाराजा, नवाब, सरकारी अफसर व विदेशी यात्री आराम के साथ रहते हैं, अच्छे से अच्छा भोजन प्राप्त करते हैं, और भोग-विलास में मस्त रहते हैं, वह मेरे अधीन होगा। मैं भी आराम का वही जीवन बिताऊंगा। बड़े-बड़े लोगों से परिचय का अवसर मिलेगा। यदि होटल में मुनाफा न भी हुआ, तो ये सब बातें भी क्या कम हैं?

समय बीतते देर नहीं लगती। आखिर, ३० नवम्बर भी आ ही गया। मैं आगरा पहुंच गया। शहर के बाहर विजयनगर-हाउस की शानदार और विशाल इमारत थी, एक सुन्दर पार्क से घिरी हुई, जिसमें अनेकों फव्वारे छूट रहे थे। बीच-बीच में अनेक मूर्तियां भी खड़ी थीं, पत्थर और धातु की बनी हुई। स्त्री-पुरुषों की ऐसी नग्न प्रतिमाएं पेरिस में तो बहुत देखी थीं, पर भारत में भी ऐसी मूर्तियां हैं, यह मुझे ज्ञात न था। बाद में

मालूम हुआ, कि विजयनगर के वर्तमान नवाब साहब के दादा कई बार यूरोप हो आये थे। पेरिस की मूर्ति-कला से वे बहुत अनुराग रखते थे। फ्रांस की एक फर्म को खास आर्डर देकर ये मूर्तियां उन्होंने अपने रंगमहल के लिये बनवाई थीं।

३० नवम्बर को ठीक दस बजे मैं विजयनगर-हाउस पहुंच गया। अपना रोब रखने के लिये मैंने टैक्सी किराये पर की थी, यद्यपि आगरा के जिस होटल में मैं ठहरा हुआ था, वह विजयनगर-हाउस से केवल दो फर्लांग की दूरी पर था। टैक्सी में होने के कारण चौकीदार ने मुझे द्वार पर नहीं रोका, और मेरी मोटर-गाड़ी सीधी मैनेजर साहब के दफ्तर के सामने तक पहुंच गई। मैनेजर साहब की बैठक को मैंने अभी दफ्तर कहा है। पर यह शब्द उसकी शान के अनुरूप नहीं है। उसे दरबार कहना अधिक उप-युक्त होगा। विजयनगर की विशाल व वैभवशाली रियासत के मैनेजर खां बहादुर असफाकुल्ला खां स्वयं एक बड़े [illegible] नवाब साहब तो अपना अधिकांश समय यूरोप और अरब में व्यतीत करते थे। भारत की गरमी और मच्छर-मक्खी से परिपूर्ण जलवायु से उन्हें अत्यन्त घृणा थी। वे कट्टर मुसल्मान थे, और काफिरों का यह देश उन्हें जरा भी पसन्द नहीं था। ऐश के लिये वे यूरोप जाते थे, और परलोक में सुख उठाने की अभिलाषा से अरब की यात्रा में अपना समय बिताते थे। विजयनगर की रियासत तो उनके लिये रुपया बटोरने का साधन-मात्र थी। खां बहादुर असफाकुल्ला खां साहब के हाथ में रियासत का सब इन्तजाम सौंपकर नवाब साहब अपनी रैयत से बहुत दूर नीस, कान, वेनिस, मक्का और बगदाद में अपना समय बिताते थे। और खां बहादुर साहब? वे विजय-नगर के असली नवाब थे। हजार से ऊपर गांवों की यह रियासत अनेक तहसीलों में विभक्त थी। शासन, शांति और व्यवस्था कायम रखने की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार पर थी। अंग्रेजों के भारत छोड़ जाने के बाद यह जिम्मेदारी कांग्रेस सरकार के सिर पर आ गई थी। खां बहादुर साहब

का तो यह काम था, कि रैयत से लगान वसूल करें, सरकार को खुश रखें, नवाब साहब के खर्चों में कमी न होने दें, और जो रुपया बचे, उसमें स्वयं एक छोटे नवाब के समान ऐश और रोब का जीवन व्यतीत करें। सरकारी अफसरों से खां बहादुर साहब का बड़ा मेल-जोल था। पहले वे अंग्रेजी अफसरों को खुश करते थे, और खुद साहब बहादुर बनकर रहते थे। अब उन्होंने अंग्रेजी हैट को विदा कर गांधी-टोपी को सिर पर धारण कर लिया था। खद्दर की कुछ अचकनें व तंग पायजामे भी उन्होंने सिलवा लिये थे। १५ अगस्त, १९४७ के दिन जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तो उन्होंने इस अवसर पर एक बड़ी पार्टी भी दी थी, जिसमें अनेक कांग्रेसी नेता और उत्तर-प्रदेश के कुछ मन्त्री भी शामिल हुए थे। अनेक वर्षों तक जेल में कष्ट उठानेवाले कांग्रेसी नेताओं ने खां बहादुर साहब की देश-भक्ति और राष्ट्रीय भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। इसमें सन्देह नहीं, कि विजयनगर रियासत के मैनेजर साहब समय के रुख को खूब पहचानते थे, और उन्होंने रियासत के कर्मचारियों को यह आदेश दे दिया था, कि अब से उनके नाम के साथ 'खां बहादुर' की उपाधि न लगाई जाए। हम भी अब श्री अशफाकुल्ला साहब को खां बहादुर न लिखकर केवल मैनेजर साहब लिखेंगे।

मैनेजर साहब का दरबार लगा हुआ था। बीच में एक ऊंची व शानदार कुर्सी पर मैनेजर साहब विराजमान थे। उनके साथ कुछ नीची कुर्सियों पर उनके दो सेक्रेटरी बैठे हुए थे। तीन चपड़ासी भड़कीली नवाबी जमाने की पोशाक पहने हुए सामने खड़े थे। आज मैनेजर साहब को यह फैसला करना था, कि रामनगर का होटल मॉडर्न किस व्यक्ति को ठेके पर दिया जाय। मेरे समान दो दर्जन से अधिक अन्य व्यक्तियों को भी आज मुलाकात के लिये बुलाया गया था। दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई तक से उम्मीदवार लोग आगरा आये थे। इन सबको देखकर मेरे होश-हवास गायब हो गये। मैंने तो समझा था, कि होटल मॉडर्न के लिये मेरा चुनाव

हो चुका है, और मामला तय करने के लिये मुझे बुलाया गया है। पर अपने इतने प्रतिस्पर्धियों को देखकर मेरा सिर चक्कर खाने लगा, और मेरी सब उमंगों पर पानी पड़ गया। पर मैंने हिम्मत नहीं हारी, और मैनेजर साहब से मुलाकात की अपनी बारी की इन्तजार करने लगा। एक-एक करके सब उम्मीदवारों को बुलाया जा रहा था। लगभग दो घण्टे की लम्बी प्रतीक्षा के बाद मेरी बारी आई। मालूम नहीं, और लोगों से मैनेजर साहब की क्या बातचीत हुई थी। पर मुझसे उन्होंने होटल-सम्बन्धी अनुभव के विषय में पूछा। मुझे होटल का कोई भी अनुभव नहीं था। हां, लण्डन, पेरिस आदि के बड़े-बड़े होटलों में मैं ठहर अवश्य चुका था। रामनगर के होटल मॉडर्न में भी रह चुका था। यूरोप में होटल के प्रबन्धकों से क्या कुछ आशा की जाती है, इस सम्बन्ध में मैंने मैनेजर साहब को बहुत कुछ बताया। मैंने यह भी कहा, कि भारत में होटल-व्यवसाय अभी बिलकुल प्रारम्भिक दशा में है। इस क्षेत्र में उन्नति की बहुत गुंजाइश है। यह हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है, कि होटल-व्यवसाय को उसी दशा में पहुंचा दें, जिसमें कि वह स्विट्जरलैण्ड और फ्रांस में पाया जाता है। तभी हम विदेशी यात्रियों को भारत-यात्रा के लिये आकृष्ट कर सकेंगे। स्वाधीन भारत में जिस प्रकार व्यापार-व्यवसाय के अन्य क्षेत्रों में उन्नति आवश्यक है, वैसे ही होटल के क्षेत्र में भी उन्नति जरूरी है। बीसवीं सदी के पहले महायुद्ध के बाद फ्रांस की आर्थिक दशा बहुत खराब हो गई थी, उसे करोड़ों रुपया विदेशी कर्ज का अदा करना था। फ्रांस की सरकार ने विदेशी यात्रियों को पेरिस, नीस, कान आदि की ओर आकृष्ट किया। इन नगरों के उन्नत होटल-जीवन व अन्य सुविधाओं से आकृष्ट होकर लाखों अमेरिकन यात्री फ्रांस आने लगे, और इन विदेशी यात्रियों द्वारा करोड़ों रुपया फ्रांस ने कमाया। विदेशी कर्ज के भुगतान में फ्रेंच सरकार को इससे बहुत सहायता मिली। रामनगर सदृश पार्वत्य नगरों के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर लाखों विदेशी यात्री भारत आ सकते हैं। पर कठिनता यह है, कि हमारे देश के होटलों की दशा ऐसी

नहीं है, कि अमेरिकन व यूरोपियन यात्री उनमें आराम अनुभव कर सकें। मैं देख रहा था, कि मेरी बातों का असर मैनेजर साहब पर पड़ रहा है। मेरी बोलचाल, हावभाव आदि से भी वे प्रभावित हो रहे थे। मेरी अंग्रेजी 'भारतीय इंगलिश' से कुछ भिन्न थी, अंग्रेजों का 'एक्सेन्ट' मुझे आता था, कहीं-कहीं अंग्रेजी 'स्लेंग' का भी मैं प्रयोग करता था। मेरी उच्च संस्कृति के ये ऐसे प्रमाण थे, जो मैनेजर साहब पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते थे। मुलाकात के अन्त में उन्होंने कहा, मैं यह प्रस्तावित करूं, कि कितना वार्षिक किराया मैं देने के लिये तैयार हूं। मेरी 'आफर' पर वे अवश्य विचार करेंगे। मुलाकात के अन्त में जब वे अपनी कुर्सी से उठकर मुझसे हाथ मिलाने के लिये अग्रसर हुए, तो मुझमें आशा का संचार हुआ। मैंने अनुभव किया, कि सफलता का सेहरा मेरे ही सिर बंधेगा। बाहर जाते हुए चपड़ासियों ने मुझे झुककर सलाम किया। अंग्रेजी शासन की डेढ़ सदी भी हमारी रियासतों और ताल्लुकदारियों से मुसलिम तहज़ीब को नष्ट नहीं कर सकी थी। मैंने चपड़ासी के हाथ में पांच रुपये का नोट रख दिया। इसे प्राप्त कर नवाबी वेशधारी इन चपड़ासियों ने मुझे और भी झुककर सलाम किया।

किराये के बारे में मैं क्या 'आफर' दूं, यह समस्या सुगम नहीं थी। होटल मॉडर्न में १०० से ऊपर बेड-रूम थे। १५० के लगभग व्यक्ति उसमें एक साथ ठहर सकते थे। होटल के कारोबार से सर्वथा अपरिचित होते हुए भी मैंने साहस से काम लिया। दो साल की बेकारी ने मुझे परेशान कर रखा था। मैं उत्सुक था, कि मेरी 'आफर' इतनी आकर्षक हो, कि मैनेजर साहब उसे अस्वीकार न कर सकें। मैंने मित्रों से सलाह की, होटल मॉडर्न सबके लिये आकर्षण रखता था। मैनेजर साहब के सेक्रेटरियों से भी बातचीत की। उन्होंने इशारे से बताया, कि तीस हज़ार के लगभग की आफरें अन्य उम्मीदवारों से आ चुकी हैं। आखिर, मैंने इकतीस हज़ार की 'आफर' दे दी।

होटल मॉडर्न मुझे मिल गया। बातचीत और लिखा-पढ़ी के बाद जो शर्तें तय हुईं, वे निम्नलिखित थीं—

(१) मैं इकतीस हजार रुपया सालाना किराया दूंगा।

(२) होटल की इमारत, फर्निचर आदि की मरम्मत का सब खर्च मैं करूंगा।

(३) सब टैक्स मैं अदा करूंगा। रामनगर-जैसे पार्वत्य शहर में इन टैक्सों की मात्रा किराये की रकम के बीस फी सदी के लगभग पहुंच जाती थी।

(४) इकतीस हजार रुपया मैं जमानत के तौर पर रियासत के कोष में जमा कर दूंगा। यह रकम मुझे तब वापस मिलेगी, जब कि किरायेदारी का काल समाप्त होने पर मैं होटल व उसके फर्निचर आदि को सही-सलामत हालत में रियासत के सुपुर्द कर दूंगा। यह भी निश्चय हुआ, कि जमानत की यह रकम १५ दिसम्बर, १९४७ तक जमा कर दी जायगी, और सालाना किराया ३१ मई, १९४८ तक अदा कर दिया जायगा।

(५) होटल यूरोपियन ढंग से चलाना होगा।

(६) किरायेदारी का काल चार वर्ष होगा।

मैनेजर साहब के वकील ने बात की बात में एक इकरारनामा तैयार कर दिया। मैंने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। अब मैं होटल मॉडर्न का किरायेदार, ठेकेदार, प्रबन्धक—जो कुछ भी नाम दीजिये, बन चुका था।

पर जमानत के इकतीस हजार रुपयों का इन्तजाम करना सुगम बात न थी। मेरे पास तो चार-पांच हजार रुपये भी नकद न थे। अब प्रश्न यह था, कि इस भारी रकम का प्रबन्ध कैसे किया जाय। मेरे मित्रों में ठाकुर अमरसिंह एक बड़े रईस व जमींदार हैं। शाहजहांपुर जिले के देहात में उनका निवास है। शिक्षा तो उनकी केवल मिडल तक हुई है, पर वे अंग्रेजी अच्छी बोल लेते हैं। पहनने-ओढ़ने में भी वे पूरे अपटुडेट हैं। घर में रुपये की कमी

नहीं है। पिता की मृत्यु के बाद तीस साल की आयु में ही वे अपनी पैतृक सम्पत्ति के स्वामी बन गये थे। मेरा ध्यान उनकी ओर गया। मैं जानता था, इस संकट-काल में वे मेरी सहायता अवश्य करेंगे, कुछ मैत्री के कारण और कुछ होटल मॉडर्न के आकर्षण के कारण। ठाकुर अमरसिंह को साहबी ढंग से रहने का बड़ा शौक है, वे अंग्रेजी पोशाक पहनते हैं, अंग्रेजी सिगरेट पीते हैं, और अंग्रेजी शराब के अत्यन्त प्रेमी हैं। पर उनकी पत्नी पुराने ढंग की भारतीय महिला है, जो चौके-चूल्हे को धर्म समझती हैं, और घूंघट काढ़कर अपने पतिदेव से बात करती हैं। ठाकुर साहब को अपनी पत्नी से हार्दिक प्रेम है, पर वे उनके पुराने ढंग पर प्रायः झुंझलाते रहते हैं। उन्हें वास्तविक प्रसन्नता होती, यदि उनकी पत्नी भी फैशनेबल साड़ी पहनकर, पर्दे से बाहर निकलकर उनके साथ क्लब में टेनिस खेलने जातीं, होटल में डिनर खातीं और उनके मित्रों से हंस-हंसकर बातें करतीं। गांव में तो इन सबका कोई अवसर नहीं था, पर ठाकुर साहब की जमींदारी से लखनऊ ही कौन दूर था। ठाकुर साहब के पास इतना धन था, कि वे अपनी सारी गर्मियां रामनगर में बिता सकते थे। अपनी पत्नी से निराश होकर ठाकुर साहब ने वह मार्ग पकड़ा, जिसको भारत के बिगड़े हुए रईस प्रायः ग्रहण करते हैं। वे साल के कई महीने लखनऊ और रामनगर में बिताते थे। वहां उन्हें साथियों की कमी न रहती थी। अनेक भद्र महिलाओं से भी उन्होंने दोस्ती कर ली थी, और उनके साथ कभी-कभी वे बाल-रूम में जाकर नृत्य भी करते थे। मुझे निश्चय था, कि ठाकुर अमरसिंह अवश्य मेरी सहायता करेंगे। मैंने उन्हें पत्र लिख दिया। उसमें उन्हें लिखा, कि रामनगर के होटल मॉडर्न को मैंने प्राप्त कर लिया है, इकतीस हजार रुपये का दस दिन के अन्दर-अन्दर प्रबन्ध करना है। यदि वे यह प्रबन्ध कर सकें, तो मैं होटल मॉडर्न के कारोबार में उन्हें साझीदार बनाने के लिये तैयार हूं। होटल के दो कमरे उनके लिये सुरक्षित रहेंगे, वहां वे अपने मित्रों के साथ ठहर सकेंगे और होटल की सब सुविधाएं उन्हें बिना किसी खर्च के

प्राप्त रहेंगी, और होटल के मुनाफे में उनका एक तिहाई हिस्सा रहेगा। मेरा पत्र पाकर ठाकुर साहब उछल पड़े। वे गर्मियों में प्रायः रामनगर जाया करते थे और होटल मॉडर्न में ही ठहरते थे। वहां उन्हें बारह रुपया रोज रहने और खाने को देना पड़ता था। शराब, आमोद-प्रमोद आदि में जो खर्च होता था, वह अलग। सीजन भर में उनके हजारों रुपये उड़ जाते थे। उन्होंने सोचा, यदि चार साल तक होटल मॉडर्न में मुफ्त रह लिये, तो इकतीस हजार रुपये तो यूं ही वसूल हो जायंगे। रुपये की उनके पास कोई कमी न थी। नकद रुपया उन्होंने साथ लिया और अगले दिन आगरा आ पहुंचे। आते ही मेरी पीठ ठोंककर उन्होंने कहा—"यार, तुमने भी खूब हाथ मारा है, लो ये इकतीस हजार रुपये। बिजनेस की बात तुम जानो, मुझे तो होटल मॉडर्न में खुलकर खेलने दो। मेरे लिये यही नफा काफी है। हां, यह कोशिश करना, कि रकम डूबने न पावे।"

अब मुझे क्या चाहिये था? तुरन्त जाकर इकतीस हजार रुपये रियासत के खजाने में जमा करा दिये। मैनेजर साहब पहले ही मेरे रोब में थे, अब पूरी तरह से मेरा सिक्का मान गये। १५ दिसम्बर तक रुपया जमा कराना था, मैंने ८ दिसम्बर तक ही पूरी रकम जमा करा दी। अब केवल यह काम बाकी था, कि रियासतका कोई नुमायन्दा रामनगर जाकर होटल मॉडर्न मेरे सुपुर्द कर दे। २ जनवरी, १९४८ का दिन इस शुभ कार्य के लिये निश्चित किया गया, और मैं खुशी-खुशी अपने मकान को वापस लौट आया। अब मेरे पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे। ठाकुर अमरसिंह का मैं हृदय से आभारी था। उनकी सहायता के बिना मैं होटल मॉडर्न को प्राप्त नहीं कर सकता था।

(२)

## कानून के चक्कर में

मनुष्य सोचता कुछ है, और होता कुछ है। बड़ी उमंगों के साथ मैं २ जनवरी को रामनगर पहुंच गया। रियासत के नुमायन्दे श्री देवनाथ और श्री मुख्तार अहमद वहां पहले से ही मौजूद थे। मैं सीधा होटल मॉडर्न गया, मालिक के रूप में, क्योंकि अब वह चार साल के लिये मेरा था, और मैं जमानत के इकतीस हजार रुपये जमा भी करा चुका था। रियासत के नुमायन्दों से मेरा परिचय था। मुझे निश्चय था, कि वे बड़े उत्साह से मेरा स्वागत करेंगे। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब मैंने देखा कि दोनों सज्जन मुंह सुजाये बैठे हैं। मेरे आने पर वे उठकर खड़े भी नहीं हुए। उन्होंने मुझसे असबाब उतारने के लिये भी नहीं कहा। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया, कि काम नहीं बना। मजिस्ट्रेट साहब का हुकुम है, कि उनकी अनुमति के बिना होटल का चार्ज किसी को न दिया जाय। यह समाचार सुनकर मेरी क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना आप सहज में कर सकते हैं। मैंने रियासत के नुमायन्दों से अनुरोध किया, कि कम से कम वे मेरे ठहरने के लिये एक कमरा तो खोल दें। वे इसे भी कानून के खिलाफ समझते थे। पर कहने-सुनने पर इसके लिये तैयार हो गये। बातचीत के बाद मालूम हुआ, कि रामनगर में कोई भी मकान मजिस्ट्रेट साहब की आज्ञा के बिना किराये पर नहीं दिया जा सकता। जब कोई मकान खाली हो, तो मकान-मालिक का फर्ज है, कि वह मजिस्ट्रेट को सूचना दे। मकान किसे किराये पर दिया जाय, इसका फैसला करना मजिस्ट्रेट साहब के ही अधिकार में है। विजयनगर रियासत के मैनेजर साहब अपनी शक्ति और अधिकार के मद में इतने अधिक मस्त थे, कि उन्हें इस कानून का खयाल ही नहीं था। उन्होंने होटल मॉडर्न को किराये पर देने की जो कार्रवाई अब तक की थी,

वह सब गैरकानूनी थी। उनकी बेपरवाही व मदान्धता का शिकार मैं हुआ था, पर इस समय मैं कर ही क्या सकता था? मेरे इक्कीस हजार रुपये रियासत के कब्जे में थे। मेरे सम्मुख अब केवल यह मार्ग था, कि या तो रियासत पर मुकदमा करके अपना रुपया वापस लूं, और हरजाना वसूल करूं, और या कोशिश करके होटल मॉडर्न की किरायेदारी मजिस्ट्रेट साहब से अपने नाम पर करा लूं।

मैंने दूसरे मार्ग का आश्रय लिया। रियासत के साथ मुकदमे में उलझना खतरे से खाली न था, हरजाने के साथ अपना रुपया वापस लेने में सालों लग जाते। मैंने निश्चय किया, कि मजिस्ट्रेट साहब से जाकर मिलूंगा। रामनगर के सब डिविजनल मजिस्ट्रेट के पद पर श्रीरामनारायण सक्सेना विराजमान थे। सन् १९३८ में उन्होंने बी० ए० पास करके नायब तहसील-दारी की परीक्षा दी थी। सन् १९३९ में वे नायब तहसीलदार के प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हो गये थे। यदि अंग्रेजी राज होता, तो अब तक वे नायब ही बने रहते। पर १९४७ में स्वराज्य की स्थापना के बाद अंग्रेज अफसर भारत छोड़कर चले गये थे। बहुत से मुसलमान अफसरों ने भी भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने का विकल्प चुना था। भारत में अफसरों की बहुत कमी थी। नौजवान आई० सी० एस० अब गवर्नमेन्ट सेक्रेटरी और कमिश्नर के पदों पर नियुक्त कर दिये गये थे। प्रान्तीय सिविल सर्विस के डिप्टी कलेक्टर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट बना दिये गये थे, और कानूनगो व नायब तहसीलदारों का भी भाग्य खुल गया था। बात की बात में श्रीसक्सेना नायब से तहसीलदार और तहसीलदार से सब डिविजनल मजिस्ट्रेट के उच्च पद पर आरूढ़ कर दिये गये थे। पैंतीस साल की आयु का यह बी० ए० पास नौजवान इस समय एक पूरी डिविजन का भाग्य-विधाता था, और रामनगर-जैसे वैभवशाली और प्रसिद्ध नगर में शान्ति और व्यवस्था को स्थापित रखना उसी के सुपुर्द था। श्रीसक्सेना से मिलने के लिए मैं सायंकाल के समय उनके घर पर गया। मैं अपने मित्रों और [illegible] से

घिरे बैठे थे। राजशक्ति में एक चुम्बक होता है, जिसके कारण अनुचरों और पार्श्वचरों की कमी नहीं रहती। मैंने अपना कार्ड श्रीसक्सेना के पास भेजा। उन्होंने चपड़ासी से कहला दिया, मैं कल अदालत में उनकी खिदमत में हाजिर होऊं। पर मैं इतनी सुगमता से टलनेवाला नहीं था। दूसरी बार मैंने एक छोटा-सा पत्र उन्हें लिखा, जिसमें अपने नाम के साथ लेफ्टिनेन्ट कर्नल भी लिख दिया था। अब वे मेरी उपेक्षा नहीं कर सके। मुझे अन्दर बुला लिया गया। पर श्रीसक्सेना ने मुझे कुर्सी पर बैठने तक के लिये नहीं कहा। मजिस्ट्रेट साहब बैठे हुए थे, मैं उनके सम्मुख खड़ा था। उन्होंने पूछा—कहिये, क्या काम है? मैंने कहा—यदि आपको एतराज न हो, तो मैं भी बैठ जाऊं। इस प्रकार की बात सुनने की आदत श्रीसक्सेना को नहीं थी। वे रामनगर के हाकिम थे, और मैं मामूली रियाया। पर अभी नायब तहसीलदार से मजिस्ट्रेट बने उन्हें अधिक समय नहीं हुआ था। कर्नल पद का मेरा रोब भी कुछ काम कर रहा था, यद्यपि इस पद से मैं अब अवकाश पा चुका था। उन्होंने बड़ी नजाकत के साथ एक कुर्सी की ओर इशारा किया और मैं उस पर बैठ गया।

अब बातचीत शुरू हुई। मैंने अपनी कष्ट-गाथा और समस्या उनके सम्मुख निवेदन कर दी। यह मैं स्वीकार करूंगा, कि श्रीसक्सेना के हृदय में सहानुभूति थी और वे मेरे संकट को अनुभव करते थे। पर वे लाचार थे। होटल मॉडर्न की प्राप्ति के लिये रामनगर में भारी कशमकश चल रही थी, अनेक प्रतिष्ठित सज्जन उसके उम्मीदवार थे। इनमें से कुछ श्रीसक्सेना के निकट सम्बन्धी भी थे। एक सज्जन तो कलेक्टर साहब से सिफारिश भी ले आये थे। बड़े-बड़े आदमियों की सिफारिश लानेवाले तो सभी थे। एक सज्जन की पहुंच प्रान्त के मन्त्रिमण्डल तक भी थी। वे खुले आम कहते फिरते थे, कि यदि होटल मॉडर्न किसी और को मिला, तो वे एसेम्बली में प्रश्न करा देंगे, स्थानीय अफसरों से जवाब तलब करवायेंगे, किसकी

हिम्मत है, जो उनकी उपेक्षा कर होटल किसी और को दे दे। डिविजन का हाकिम भी इन सार्वजनिक 'नेताओं' के सम्मुख कितना असहाय था, यह मैंने इस समय अनुभव किया। इसी समय मुझे यह मालूम हुआ, कि होटल मॉडर्न का नियन्त्रित किराया केवल दस हजार रुपया वार्षिक है। पहला किरायेदार यही किराया देता था, और मजिस्ट्रेट महोदय द्वारा जिस किसी सज्जन को यह होटल मिलेगा, उसे केवल दस हजार रुपया किराया देना होगा। अब मुझे ज्ञात हुआ, कि दस हजार की जगह इकत्तीस हजार किराया देना स्वीकार कर मैं कितनी बड़ी बेवकूफी कर आया हूं। पर अब क्या हो सकता था? अब तो मेरे इकत्तीस हजार रुपये रियासत के कब्जे में थे। यदि मजिस्ट्रेट किसी अन्य को होटल दे देते हैं, तो रियासत के मैनेजर साहब की सम्मति में मुझे सरकार पर मुकदमा करना चाहिये। मेरा और रियासत का इकरारनामा हो चुका था। मैनेजर साहब के अनुसार मैं इस इकरारनामे की उपेक्षा नहीं कर सकता था। कानून क्या है, इसका फैसला तो मजिस्ट्रेट साहब के हाथ में नहीं था, मुझे इसके लिये सिविल कोर्ट में लड़ना चाहिये; हाई कोर्ट तक में अपील करनी चाहिये। मैं चक्की के दो पाटों के बीच में पिस रहा था। मजिस्ट्रेट साहब समझते थे, होटल मॉडर्न का किरायेदार उन्हें निश्चित करना है। मैनेजर साहब समझते थे, मैं इकरारनामे पर दस्तखत कर चुका हूं। अब मैं इकत्तीस हजार वार्षिक का देनदार हूं। यदि मैं यह रकम नहीं देता, तो अदालत में वे मुझ पर किराये के लिये दावा कर देंगे। कानून कितना हृदयहीन हो सकता है, और रियासत के मैनेजर साहब का दिल लोहे और पत्थर से बना होता है—यह मुझे अब प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात हुआ।

श्रीसक्सेना के आदेशानुसार मैंने एक आवेदन-पत्र उनकी सेवा में लिख दिया। यह आवेदन-पत्र भी होटल मॉडर्न की फाइल में शामिल कर लिया गया। वहां ऐसे दर्जनों आवेदन-पत्र पहले से मौजूद थे। अब श्री सक्सेना को यह निश्चय करना था, कि वे किसकी प्रार्थना को स्वीकार

करें और होटल मॉडर्न किसे किराये पर दें। रामनगर गढ़वाल जिले में है। मुझे मालूम हुआ, कि गढ़वाल जिले के कलेक्टर के पद पर इन दिनों श्री-इकबाल अहमद साहब विराजमान हैं। मैं इन सज्जन को पहले से जानता था। किसी समय ये मेरे अपने शहर में सिटी मजिस्ट्रेट रह चुके थे। घोर निराशा में मुझे आशा की एक किरण दिखाई दी। मैंने सोचा, शायद श्री इकबाल अहमद पुराने परिचय का कुछ खयाल करें। मैं उनसे मुलाकात करने को उतावला हो गया। मालूम हुआ, कि कलेक्टर साहब इन दिनों दौरे पर हैं, और गढ़वाल जिले के एक सुदूर जंगल में डेरा लगाये पड़े हैं। पर मैं तो उनसे मिलने के लिये पागल हो रहा था। पहले मोटर-बस पर, फिर घोड़े पर और फिर पैदल चलकर मैं उनके डेरे तक पहुंच ही गया। श्रीइकबाल अहमद को मेरा स्मरण था। मेरा कार्ड पाकर उन्होंने मुझे तुरन्त अपने डेरे में बुला लिया। उस समय उनके पास तहसील के कतिपय कांग्रेसी नेता बैठे हुए थे। मैं उनसे परिचित नहीं था, पर वे कांग्रेसी थे, यह मैं इसलिये कहता हूं, क्योंकि उन्होंने खद्दर के श्वेत वस्त्र पहने हुए थे और उनके सिरों पर गांधी-टोपी भी विराजमान थी। बाद में मालूम हुआ, कि उनमें से एक सज्जन तहसील कांग्रेस-कमेटी के अध्यक्ष थे। वे कांग्रेसी नेता बड़ी खुशामद के साथ कलेक्टर महोदय से बात कर रहे थे। वे बन्दूक के लायसेन्स की सिफारिश के सिलसिले में आये थे, और श्रीइकबाल अहमद से उर्दू में बात करने की कोशिश कर रहे थे। श्री इकबाल अहमद मुसलमान थे, और स्वराज्य के बाद पाकिस्तान जाने की अपेक्षा उन्होंने भारतीय सरकार की सेवा करना ही पसन्द किया था। उनकी भारत-भक्ति का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता था? मुसलमानों की भाषा उर्दू है, और हिन्दुओं की हिन्दी—यह बात अभी तक कांग्रेसी नेताओं के दिमाग से नहीं निकली थी। मुसलमानों को श्रीमान् की जगह पर जनाब कहना चाहिये, और उनसे उर्दू बोलनी चाहिये—यह विचार कांग्रेस के लोगों में बद्धमूल था। गढ़वाली सज्जनों का उर्दू बोलने का प्रयत्न सचमुच हास्या-

स्पष्ट प्रतीत होता था। बातचीत के सिलसिले में मैंने उन्हें यह भी कहते सुना, कि पंजाब में हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ जो अमानुषिक और नृशंस बरताव किया है, उसे उत्तर-प्रदेश के सब हिन्दू अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यदि वे साथ ही यह भी कहते, कि पश्चिमी पंजाब के मुसलमानों का हिन्दू स्त्रियों और बच्चों के साथ किया गया बरताव भी निन्दनीय था, तो मुझे कोई विप्रतिपत्ति न होती। पर एक मुसलमान अफसर को खुश करने के लिये पंजाबी हिन्दुओं की निन्दा करना मुझे अच्छा नहीं लगा। पर मैं तो अपने मतलब से इस जंगल में आया था, मुझे बीच में बोलने की क्या आवश्यकता थी ?

आदाब अर्ज करके कांग्रेसी सज्जन जब बिदा हो गये, तो मैंने कलेक्टर साहब के सम्मुख अपना संकट बयान किया। उन्होंने मेरी बात को सहानुभूति के साथ सुना। उन्होंने भी मुझसे एक आवेदन-पत्र लिखवा लिया, और लंच खाने के लिये दूसरे खेमे में चले गये। भोजन के समय मुझे भी कुछ खाने की आवश्यकता है, यह उनके ध्यान में नहीं आया। मैं इसकी आशा भी कैसे कर सकता था ? कलेक्टर साहब ने न वहां कोई सदाव्रत खोल रखा था, और न कोई रिस्तोरां। यदि वे इस ढंग से फरयादियों व गरज से मिलने आनेवालों के भोजन की व्यवस्था करने लगते, तो शायद उनका सारा वेतन इसी में खर्च हो जाता। चपड़ासियों से पूछने पर मालूम हुआ, कि यहां से कोई एक मील की दूरी पर एक छोटा-सा पड़ाव है, जहां खाने को कुछ मिल सकेगा। जनवरी का महीना था, अतः दोपहर के समय धूप में चलने में विशेष कष्ट नहीं हुआ। पड़ाव पहुंचकर चाय और सूखे बिस्कुटों से मैंने अपनी क्षुधा को शान्त किया। उस समय मुझे कलेक्टर साहब के उस विशाल कैम्प का ध्यान आ रहा था, जिसने जंगल में मंगल कर रखा था। वहां दर्जनों तम्बू गड़े थे। साहब के लिये मोटर खड़ी थी, और अहलकारों के लिये मोटर-बस। तम्बू ढोने के लिये ऊंट खड़े थे, और जंगल को साफ़ कर दूर-दूर तक मार्ग-सा बना दिया गया था, ताकि कलेक्टर

साहब इस जंगलप्राय प्रदेश में दौरा करते हुए अपने अहलकारों के साथ आराम से रह सकें। उस स्थान से समीपतम कसबा बीस मील की दूरी पर था। वहां से साहब के लिये प्रतिदिन ताजी सब्जी, अण्डे, मक्खन, दूध, मच्छी, मांस—सब आते थे और डबल रोटी पहुंचाने का काम उस चपड़ासी को दिया गया था, जो रोज उनकी डाक लेकर रामनगर से कैम्प आया करता था। अंग्रेज भारत से बिदा हो चुका था, पर उसके भारतीय उत्तराधिकारी अंग्रेजों से कम आराम से रहना अपनी शान के खिलाफ समझते थे।

अगले दिन मैं रामनगर लौट आया। इस बीच में वहां के अनेक सज्जनों से मेरा परिचय हो गया था। कुछ की मुझसे सहानुभूति भी थी। उन्होंने मुझे बताया, कि मुझे कमायूं कमिश्नरी के कमिश्नर साहब से मिलना चाहिये। ये सज्जन बंगाली थे, आई० सी० एस० के थे और नौजवान होते हुए भी इस समय रुहेलखण्ड और कमायूं—दो कमिश्नरियों के अधिपति थे। सौभाग्य से, ये उन दिनों रामनगर के पास ही एक शहर में दौरे पर आये हुए थे। मैंने सोचा, मुझे इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये। मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। पर उनका चपड़ासी बहुत उद्दण्ड व्यक्ति था, वह बड़े-बड़े अंग्रेज अफसरों का अर्दली रह चुका था। अफसरों के रोब को किस ढंग से कायम रखना चाहिये, यह बात वह भली भांति जानता था। जब मैंने उसे अपना कार्ड कमिश्नर साहब के पास ले जाने के लिये कहा, तो उसने अकड़कर जवाब दिया—साहब गुसल में है, अभी नहीं मिल सकेगा। मैं जानता था, दिन के बारह बजे साहब गुसल में नहीं हो सकता। मुझे यह भी मालूम था, कि अर्दली की अकड़ को दूर करने का क्या उपाय है। मैंने दो रुपये का नोट उसके हाथ में थमा दिया। इसे पाकर वह कुछ नरम पड़ा, और थोड़ी देर बाद यह कहकर कि साहब गुसल से आ गया है, मेरे कार्ड को उनके पास ले गया। साहब का नाम श्री पी० आर० चौधरी था। भारतीय होते हुए भी वे सौ फी सदी अंग्रेज थे। यदि किसी उपाय से उनको

सांवले रंग को श्वेत किया जा सकता, तो उन्हें कोई भी हिन्दुस्तानी न समझ सकता। कार्ड पाकर उन्होंने मुझे अन्दर बुला लिया। ऐसा प्रतीत होता था, कि श्रीचौधरी को दम मारने की भी फुरसत नहीं है। जनता का जो कोई आदमी उनसे मिलने आता है, वह उनके काम में विघ्न डालता है। उन्होंने मुझसे मेरा काम पूछा। मैंने संक्षेप से अपनी समस्या कह सुनाई। उन्होंने तुरन्त अपने स्टेनो को आदेश दिया, कि होटल मॉडर्न की फाइल रामनगर से मंगा ली जाय। इससे मुझे बहुत सन्तोष हुआ। मुझे विश्वास हो गया, कि अब मेरे साथ न्याय होगा, और मुझे रियासत के साथ मुकदमेबाजी में फंसने की आवश्यकता नहीं होगी। श्रीचौधरी ने पांच मिनट में मुझे विदा कर दिया। अंग्रेजी हुकूमत के युग के ट्रेनिंग-प्राप्त अफसर कितनी शीघ्रता से निर्णय करते हैं, यह मुझे श्रीचौधरी से मिलकर ज्ञात हुआ।

होटल मॉडर्न को प्राप्त करने के लिये जिस तत्परता से मैं लगा हुआ था, वह रामनगर के लोगों से छिपी नहीं रह सकी। अन्य उम्मीदवार इससे बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने श्रीसक्सेना और श्रीइकबाल अहमद के पास दौड़-धूप शुरू कर दी। कुछ लोग तो लखनऊ का भी चक्कर लगा आये। मन्त्रियों की सेवा में उन्होंने फरयाद की। श्रीचौधरी तक भी सिफारिशें पहुंचाई गईं, पर मेरा केस काफी मजबूत था। रियासत के मैनेजर महोदय के साथ जो इकरारनामा मैं कर चुका था, और इक्कीस हजार की जो भारी रकम मैंने उनके पास जमा करा दी थी, उसने मेरी सहायता की। श्रीचौधरी ने अनुभव किया, कि यदि अब होटल मॉडर्न किसी और को दिया जाता है, तो एक भारी कानूनी तूफान उठ खड़ा होगा। यह भी प्रश्न था, कि किरायों के नियन्त्रण का जो कानून साधारण इमारतों को किराये पर उठाने के लिये प्रयुक्त होता है, क्या वह होटल मॉडर्न पर भी लागू हो सकता है? रियासत के मैनेजर महोदय का कथन था, कि हम केवल होटल की इमारत को ही किराये पर नहीं दे रहे हैं, साथ ही हम

उसके साज-सामान, गुडविल और कारोबार को भी ठेके पर देते हैं। होटल एक कारखाने के समान है, जिसमें इमारत के अतिरिक्त मशीनरी आदि भी होती है। मालूम नहीं, श्रीचौधरी ने इस तर्क में कोई सार अनुभव किया या नहीं, पर एक कुशल शासक के रूप में उन्होंने यही हितकर समझा, कि होटल मॉडर्न मुझे किराये पर दे दिया जाय। इससे सांप भी मर जाता था, और लाठी भी नहीं टूटती थी। उनके आदेश पर रामनगर के मजिस्ट्रेट महोदय ने एक आज्ञा प्रकाशित की, जिसमें यह कहा गया कि होटल मॉडर्न के मालिक के साथ जो इकरारनामा मैंने किया था, उसे दृष्टि में रखते हुए मेरे आवेदन-पत्र को स्वीकृत किया जाता है, और सन् १९४८ के लिये मुझे उसका किरायेदार माना जाता है।

मेरा काम बन गया। होटल मॉडर्न मुझे प्राप्त हो गया। निराशा की जो घोर घटा चारों तरफ घिर आई थी, वह छिन्न-भिन्न हो गई, और चाहे एक साल के लिये ही क्यों न हो, होटल मॉडर्न मेरे स्वत्व में आ गया। रियासत के मैनेजर साहब को भी इसकी सूचना दे दी गई, और उनके वे ही दोनों नुमायन्दे श्रीदेवनाथ और श्रीमुख्तार अहमद मुझे होटल का चार्ज देने के लिये रामनगर पहुंच गये।

## ( ३ )

## होटल का प्रबन्ध

होटल मॉडर्न के सामान की लिस्ट बहुत बड़ी थी। मेज, कुर्सी, पलंग, आलमारी, सोफा व अन्य सब प्रकार के फर्निचर के अतिरिक्त उसमें गद्दे, चादर, तकिये, कम्बल, परदे, खाना पकाने के बरतन, परोसने के पात्र, क्रोकरी, कटलरी आदि सब सामान प्रचुर परिमाण में था। इन सबकी लिस्ट बनाने में दो सप्ताह के लगभग लग गये। [illegible]

के नुमायन्दे इस काम में जुटे रहते। श्रीदेवनाथ और श्रीमुख्तार अहमद रियासत के राजभक्त कर्मचारी थे। रियासत की नौकरी उन्होंने विरासत में प्राप्त की थी, उनके पुरखा अनेक पुस्तों से विजयनगर की सेवा में थे। नवाब को वे अपना असली मां-बाप समझते थे। महाकवि कालीदास की यह उक्ति उन पर पूरी तरह चरितार्थ होती थी—"स पिता पितरस्तेषां केवलं जन्महेतवः।" उनके मां-बाप तो उन्हें जन्म देने के निमित्तमात्र थे, उनके असली मां-बाप तो नवाब साहब थे, जिनकी कृपा से ये दोनों व इन्हीं के किसम के अन्य कितने ही अहलकार छोटे-मोटे जमींदार बन गये थे। श्री-देवनाथ विचारों की दृष्टि से आर्यसमाजी थे। वे भी यह स्वप्न लेते थे, कि कभी सारे विश्व में वैदिक धर्म का प्रचार हो जायगा। इस्लाम से उन्हें अनुराग नहीं था, उसे वे आर्य धर्म का कट्टर विरोधी समझते थे। पर आर्यसमाजी विचारों ने भी उनमें नवाब साहब के प्रति भक्ति को शिथिल नहीं किया था, क्योंकि उनका सब योगक्षेम नवाब साहब के कृपा-कटाक्ष पर ही निर्भर था। श्रीमुख्तार अहमद एक साल पहले तक मुसलिम लीग के सदस्य थे। पर जब पाकिस्तान बन गया, तो अपने मैनेजर साहब के अनुकरण में उन्होंने भी गांधी-टोपी पहननी प्रारम्भ कर दी थी। खद्दर की सफेद टोपी इस बात का प्रबल प्रमाण थी, कि श्रीमुख्तार अहमद कट्टर भारत-भक्त है, और कांग्रेस में शामिल हैं। अब उन्होंने हिन्दी पढ़ना भी शुरू कर दिया था, और उनके मुख से संस्कृत-मिश्रित हिन्दी बहुत भली मालूम होती थी। ताल्लुकेदारों की रियासतों में आम प्रजा पर चाहे कितने ही अत्याचार होते हों, उनकी दशा चाहे कितनी ही हीन हो, पर इसमें सन्देह नहीं, कि अहलकार अपनी दशा से बहुत सन्तुष्ट थे, और वे अपने राजा व नवाब के प्रति पूर्णतया अनुरक्त थे। जब श्रीदेवनाथ और मुख्तार अहमद विजयनगर के नवाब साहब के गुणगान करने लगते, तो उनकी आंखों में आंसू आ जाते। वे खूब बताते, कि नवाब साहब तो साक्षात् ऋषि, पीर या औलिया हैं। प्रजा का दुःख-दर्द उनसे नहीं देखा जाता, जब कोई

भिक्षुक उनके पास पहुंच जाता है, तो उसे वे निहाल कर देते हैं। उनके धर्मानुराग, प्रजावत्सलता और देश-प्रेम की प्रशंसा करते-करते वे कभी न अघाते थे। ये बातें सुनकर मैं अनुभव करता था, कि पुराने जमाने की रियासतें व जमींदारियां जिन लोगों की सहायता पर आश्रित हैं, उनका उनके प्रति अनुराग कितना ठोस व गम्भीर है।

अब होटल मॉडर्न मेरे हाथ में आ गया था। पहाड़ों के होटल सर्दियों में बन्द रहते हैं। हिमालय की चोटी पर स्थित बदरीनारायण और केदारनाथ के मन्दिरों के समान हिमालय के होटलों के पट भी गर्मी शुरू होने पर खुलते हैं। होटल मॉडर्न भी इन दिनों बन्द था, पर अब वह समय आ गया था, जब कि उसके खुलने की तैयारी की जानी चाहिये थी। होटल मोडर्न किराये पर उठ गया है, यह समाचार दूर-दूर तक पहुंच गया था। होटल के पुराने नौकरों को जब यह बात मालूम हुई, तो वे अपने नये मालिक से परिचय प्राप्त करने और अपनी नौकरी को पक्का करने के लिये रामनगर आने लगे। कूचड़, अण्डेवाले, मच्छीवाले, दूध, रोटी और मक्खनवाले—वे सब लोग जो होटल को सामान देते हैं, मसलदार कहाते हैं। उन्हें भी यह फिकर हुई, कि होटल के नये मालिक से परिचय प्राप्त कर अपने-अपने ठेकों को पक्का कर लें। होटल शुरू होने में अभी छः सप्ताह की देर थी, पर मेरे लिये काम की कमी न थी। खानसामे, बेयरे, स्टीवार्ड, भंगी, मसालची, मसलदार सब मेरे यहां चक्कर लगाते रहते थे, और उनके कारण मेरे दफ्तर में हमेशा एक दरबार सा-लगा रहता था।

होटल मॉडर्न का प्रबन्ध अब तक सदा गौरांग लोगों के हाथों में रहा था। इसका निर्माण एडवर्ड नामक एक अंग्रेज ने किया था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जब भारत के सिविल व सैनिक अंग्रेज अधिकारी गर्मियां बिताने के लिये रामनगर सदृश पार्वत्य स्थानों पर बड़ी संख्या में आया करते थे, तब एडवर्ड साहब ने उनकी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर इस होटल को बनाया था। एडवर्ड साहब ने सन् १९०४ तक

स्वयं इसका संचालन किया। उनके कोई सन्तान नहीं थी। जब वे बहुत वृद्ध हो गये, तो उन्होंने उसे मि० स्मिथ को बेच दिया। एक लाख रुपये में होटल को बेचकर एडवर्ड साहब विलायत चले गये और वहां जाकर आराम से रहने लगे। मि० स्मिथ ने सन् १९२८ तक स्वयं होटल मॉडर्न चलाया और फिर विजयनगर के नवाब साहब को दो लाख रुपये में उसे बेचकर स्वयं दक्षिणी अफ्रीका की राह ली। नवाब साहब ने पहले यूरोपियन मैनेजर रखकर होटल को चलाया, पर मैनेजर से उन्हें कभी नफा नहीं हुआ। १९३८ में उन्होंने एक स्विस महोदय को उसे ठेके पर दे दिया था। महायुद्ध के बाद १९४७ में जब भारत स्वतन्त्र हो गया, तो इन स्विस महोदय ने अनुभव किया, कि अब होटल में न कोई मुनाफा रहा है, और न ही काले लोगों को अपने यहां रखना कोई शान व गौरव की बात है। अंग्रेजों के साथ-साथ सन् ४७ में ये स्विस महोदय भी भारत छोड़कर चले गये। अब यह पहला अवसर था, जब कि एक काला साहब होटल मॉडर्न का मालिक होकर आया था।

यही कारण है, कि होटल मॉडर्न के पुराने कर्मचारी व मसलदार जब मुझसे मिलने आते, तो उनके मुख पर प्रश्न और सन्देह के चिन्ह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते थे। वे यह समझ ही नहीं सकते थे, कि कोई हिन्दुस्तानी भी होटल मॉडर्न का संचालन कर सकता है। इन कर्मचारियों में सबसे पुराना चन्दनसिंह था। जब उसकी आयु केवल दस साल की थी, वह होटल मॉडर्न में टेनिस-बाय के रूप में आया था। टेनिस-बाय से उन्नति करता-करता वह अब होटल के मुख्य खिदमतदार (हेड बेयरा) के पद पर पहुंच गया था। इस समय उसकी आयु चालीस साल से ऊपर थी। उसने होटल मॉडर्न का वह जमाना भी देखा था, जब कोई काला आदमी होटल के अन्दर प्रविष्ट भी नहीं हो सकता था। उसने वह युग भी देखा था, जब साहब और मेम साहब लोग सांझ से शुरू कर सुबह के तीन बजे तक होटल मॉडर्न के विशाल बाल-रूम (नाचघर) में नृत्य किया करते थे, और

कोई काला आदमी उनके नजदीक तक भी नहीं फटक सकता था। स्वयं हिन्दुस्तानी होते हुए भी चन्दनसिंह को हिन्दुस्तानी लोग जरा भी पसन्द नहीं थे। वह कहा करता था, काले आदमी क्या होटल मॉडर्न में ठहरेंगे और क्या इसकी कदर जानेंगे। एक हिन्दुस्तानी का ही अब होटल मॉडर्न का संचालक व मालिक बनकर आ जाना चन्दनसिंह के लिये अत्यन्त आश्चर्य की बात थी। पर मुझे यह स्वीकार करना चाहिये, कि चन्दनसिंह में तहजीब की कमी नहीं थी। बदले हुए जमाने से भी वह अपरिचित नहीं था। इसीलिए जब वह मुझे मिलता, बड़े अदब के साथ 'सलाम हजूर' कहता। उसकी आंखें हमेशा नीची रहतीं। हजूर के बिना एक वाक्य भी उसके मुख से नहीं निकल सकता था। यहां यह लिख देना जरूरी है, कि भारत में होटलों की भाषा अंग्रेजी है, और नौकरों की भाषा अंग्रेजी मिली हिन्दुस्तानी। हिन्दी का प्रवेश वहां सर्वथा निषिद्ध है। आप किसी हिन्दू नौकर के मुख से भी होटल में नमस्ते, जय रामजी की या प्रणाम नहीं सुन सकते। वे आपको या तो 'गुड मार्निंग सर' कहेंगे और या 'सलाम हजूर'। बड़े होटलों के नौकर अंग्रेजी समझ लेते हैं, और टूटी-फूटी अंग्रेजी में अपने भावों को व्यक्त भी कर लेते हैं। मेहमानों के साथ अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में बात करना होटल के मालिक व उच्च कर्मचारियों के लिए जुर्म है। अतः छोटे नौकर भी अंग्रेजी में प्रवीणता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। हां, मैं चन्दनसिंह की बात कह रहा था। उसका वेतन केवल ५० रु० मासिक था, पर उसने अपने गांव में एक पक्का मकान बना लिया था। उसके लड़के हाई स्कूल में पढ़ते थे और वह एक सफेदपोश के समान कपड़े पहनता था। उसका यह खर्च वेतन से नहीं चलता था, उसकी आमदनी का मुख्य आधार वे टिपें थीं, जो होटल के मेहमान उसे दिया करते थे। होटल में ठहरकर बेयरे को टिप न देना भारी असभ्यता है। चन्दनसिंह उन दिनों की बात अभिमान के साथ सुनाया करता था, जब साहब लोग होटल

से जाते हुए उसे कम से कम दस रुपये टिप के दिया करते थे। वह यह भी कहता था, कि अब हिन्दुस्तानी लोग क्या बेयरे को देंगे, उनके पास तो होटल का बिल चुकाने के लिये भी पैसा नहीं होता। अंग्रेज लोग सच्चे अर्थों में बादशाह थे, वे जब तक रहे, राजाओं की तरह से राज किया। जब यहां रहते हुए उकता गये, तो खुद राजपाट हिन्दुस्तानियों के हाथ में देकर स्वदेश को लौट गये। बादशाहत की ऐसी तबियत और किस कौम में मिलेगी ? मैंने आगरा में ही सुन लिया था, कि चन्दनसिंह होटल मॉडर्न की जान है। उसे होटल की एक-एक चीज का पूरी तरह ज्ञान है। होटल के पुराने यात्रियों को भी वह भली भांति पहचानता है। किस यात्री को कौन-सा कमरा पसन्द है, कौन चाय या भोजन किस समय लेता है–ये सब बातें उसे मालूम हैं। ऐसे उपयोगी नौकर के बिना मेरा काम कैसे चल सकता था ? मैंने वेतन बढ़ाकर ६० रु० मासिक पर उसे उसके पुराने पद पर अधिष्ठित कर दिया। इसमें सन्देह नहीं, कि चन्दनसिंह से मुझे होटल के प्रबन्ध में बहुत सहायता मिली। पर साथ ही मैं सदा यह अनुभव करता था, कि वह मुझे अपना स्वामी मानकर गौरव महसूस नहीं करता। अंग्रेजों के प्रति भक्ति उसके हृदय में इतनी दृढ़ थी, कि उसके मानसिक भाव छिपे नहीं रहते थे। बदली हुई परिस्थिति को उसने विवश होकर अवश्य स्वीकार कर लिया था, पर इससे उसके हृदय में प्रसन्नता नहीं थी।

होटल के अन्य कर्मचारियों के सम्बन्ध में मैं अधिक नहीं लिखूंगा। होटल के नौकर चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई हों या बौद्ध–उनकी [illegible] है। वेतन की वे परवा नहीं करते, उन्हें परवा [illegible] आप यदि किसी बड़े होटल में जाकर ठहरें, तो बेयरे के हाथ में कुछ रुपये रख दीजिये। यदि नकद रुपये न रखें, तो उसे यह आश्वासन दे दीजिये, कि चलते समय उसे खुश कर देंगे। फिर देखिये, आपको कितना आराम मिलता है। आप दस दोस्तों को बुलाकर चाय पिलाइये, अतिरिक्त भोजन लीजिये, एक की जगह चार बार [illegible] के

लिये गरम पानी लीजिये, आपके बिल में विशेष वृद्धि न होगी। होटल का मालिक बेचारा क्या-क्या देखे, काम तो बेयरों को करना है। सुना है, फ्रांस में होटल के बेयरों को कोई वेतन नहीं मिलता, टिपों के रूप में ही उन्हें इतनी आमदनी हो जाती है, कि वे बिना वेतन के होटल में कार्य करना स्वीकार कर लेते हैं। होटल मॉडर्न में बेयरों के वेतन की दर ३० रु० मासिक थी, भोजन के साथ नहीं, सूखे ३० रुपये। पर मैं ऐसे बेयरों को जानता हूं, जो अपने बच्चों को ग्लैक्सो का दूध पिलाते थे। यह सब टिप की महिमा थी। होटल में दो तरह के बेयरे होते हैं—रूम-बेयरे और टेबल पर काम करनेवाले बेयरे। मेरे यहां दोनों तरह के बेयरों की कुल संख्या दो दर्जन से ऊपर थी। हेड टेबल-बेयरा या बटलर के पद पर मैंने जान मुहम्मद को नियत किया था। जान मुहम्मद अत्यन्त मृदु स्वभाव का व्यक्ति था। उसके चेहरे पर नम्रता, दीनता और शालीनता टपकती रहती थी। वह बहुत ही बेउजर नौकर था। दिन हो या रात, सुबह हो या शाम—वह हर समय काम पर तैनात रहता था। होटल-जीवन का उसे बीसों साल का अनुभव था। वह अंग्रेजी बोल सकता था, अंग्रेजी में बिल भी बना लेता था। यह उसका सबसे बड़ा गुण था, क्योंकि होटल में ठहरे हुए साहब लोग चाहे वे गांधी-टोपी पहने हुए भारतीय ही क्यों न हों, हिन्दी या उर्दू में बात करना अपमानजनक समझते हैं। होटल में खानसामा सबसे महत्त्वपूर्ण कर्मचारी होता है। होटल की सफलता या विफलता उसी पर निर्भर करती है। खानसामा के चुनाव में मैंने बहुत सावधानी से काम लिया था। यहां यह भी लिख देना आवश्यक है, कि होटलों में लोग देसी भोजन को विशेष महत्त्व नहीं देते, खास तौर पर होटल मॉडर्न जैसे [illegible] होटल में। अव्वल तो देसी आदतों के लोगों को ऐसे होटलों में [illegible] नहीं चाहिये, यदि वे ठहरें भी, तो उन्हें भुजिया, कारी और चपाती से ही सन्तुष्ट रहने के लिये तैयार होना चाहिये। भोजन के सम्बन्ध में मैं आगे चलकर अधिक विस्तार से लिखूंगा। पर खानसामा का चुनाव करते हुए मुझे

यह देखना था, कि वह अंग्रेजी भोजन में विशेष प्रवीण हो, क्योंकि होटल साहब लोगों के लिये हैं । देसी खाना तो बाजार के ढाबों में मिल ही जाता है । उसके लिये यूरोपियन शैली पर चलाये जानेवाले होटल मॉडर्न जैसे होटल में ठहरने की क्या आवश्यकता है ? भारत में अंग्रेजी खाना बनाने-वाले कई प्रकार के खानसामे मिलते हैं । गवानीज, मग, शाहजहांपुरी और गढ़वाली मुसलमान इनमें प्रमुख हैं । गवानीज लोग पोर्तुगीज गोआ के निवासी हैं, और यूरोपियन लोगों के संसर्ग में रहने से वे यूरोपियन भोजन के निर्माण में विशेष कुशलता रखते हैं । धर्म से वे ईसाई हैं । रसोईघर की सफाई पर उनका बहुत ध्यान रहता है । गवानीज खानसामे के रसोईघर को जाकर देखिये, ऐसा प्रतीत होगा, मानो किसी अस्पताल का आपरेशन-थियेटर है । वे स्वयं भी बहुत सफाई से रहते हैं । मग रसोइये धर्म से बौद्ध होते हैं, उनका निवास-स्थान पूर्वी बंगाल है । बौद्ध होने के कारण गोमांस तक पकाने में उन्हें कोई एतराज नहीं होता । नाम, पहरावा और रहन-सहन में ये बंगाली हिन्दुओं के सदृश होते हैं । उत्तर-प्रदेश में शाहजहांपुर के मुसलमान अंग्रेजी भोजन बनाने में विशेष रूप से निपुण होते हैं । हिमालय के पार्वत्य नगर देर से अंग्रेजों की विलास-भूमि रहे हैं । उनके संसर्ग से टिहरी और गढ़वाल के पहाड़ी मुसलमान भी अंग्रेजी भोजन में अच्छे होशियार हो गये हैं । होटल मॉडर्न के रसोईघर को संभालने के लिये सब प्रकार के खानसामा उम्मीदवार थे । सोच-समझकर मैंने एक गवानीज खानसामा को चुना । इनका नाम द सूजा था । इनका वेतन २०० रु० मासिक निश्चित हुआ, भोजन और निवास-स्थान इससे अलग । इनके चार सहायक रखे गये, जिन्हें क्रमशः १५०, १००, ७५ और ६० रु० मासिक वेतन देना तय किया गया । इनमें से दो गवानीज और दो गढ़वाली हिन्दू थे । ये गढ़वाली हिन्दू अपने को आर्यसमाजी कहते थे, यज्ञोपवीत पहनते थे, और परस्पर नमस्ते करते थे । कमायूं और इसके साथ लगे हुए गढ़वाल के प्रदेश में आर्यसमाज का अच्छा प्रचार है । छोटी जाति के शिल्पकारों

(शूद्रों) को समाज ने वैदिक धर्म में दीक्षित करने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। ये आर्य ख़ानसामे गोमांस पकाने में कोई एतराज नहीं रखते थे, यद्यपि स्वयं उसे खाने को ये धर्म-विरुद्ध मानते थे। पांच खानसामों के अतिरिक्त होटल मॉडर्न में इतने ही मसालची भी थे। ये सब मसालची आर्यसमाजी थे। होटलों में मसालची बरतन मलनेवालों को कहते हैं।

होटल मॉडर्न के लिये एक दरजन भंगी भी भरती किये गये। भंगियों का जमादार धर्म से सिक्ख था और अपनी बिरादरी में एक बड़ा सन्त समझा जाता था। उसका लड़का एक अंग्रेज अफसर के यहां खानसामा का काम करता था। हम लोग अछूतोद्धार की बात तो बहुत करते हैं, पर अछूतों को ऊंचा नहीं उठा पाते। अंग्रेजों की दृष्टि में मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं था। भंगी-कुल में उत्पन्न हुए व्यक्ति को खानसामा बनाने में उन्हें कोई एतराज नहीं था। मैं एक ऐसी भारतीय महिला को भी जानता हूं, जिसने अपना भोजन पकाने के लिये एक भंगी को नियत कर रखा है। पर यह महिला पूरे तौर पर अंग्रेजी रंग में रंगी हुई हैं। यह एक स्कूल में मुख्य अध्यापिका थीं, और इनके विरुद्ध जनता को सबसे बड़ी शिकायत यही थी, कि इनका रहन-सहन पूर्णतया अंग्रेजी था।

होटल के कुछ अन्य कर्मचारियों का परिचय देना भी उपयोगी है, क्योंकि इस पुस्तक में बार-बार उनका उल्लेख होगा। मेरे दफ्तर का चपड़ासी रामसिंह था। ४॥ फीट की उंचाई का यह पतला सुकड़ा आदमी नैपाल का निवासी था। यह हिन्दी अच्छी जानता था और अंग्रेजी में भी कामलायक परिचय रखता था। जरूरत पड़ने पर यह खानसामा, बैरा आदि के सब काम कर सकता था। टेनिस में तो यह अत्यन्त प्रवीण था। होटल मॉडर्न में टेनिस खेलने के पांच कोर्ट थे। यह रामसिंह का ही काम था, कि उन्हें साहब लोगों के लिये तैयार करे और टेनिस का सब इन्तजाम करे। इतने गुण होते हुए भी रामसिंह का वेतन केवल ३० रु० मासिक था। पर वह इससे सन्तुष्ट था, क्योंकि टिपों से उसे अच्छी आमदनी हो

जाती थी। जब कोई साहब लोग होटल से जाने लगता था, तो उसके लिये रिक्शा, कुली आदि का इन्तजाम करना रामसिंह का ही काम था। जब साहब लोग रिक्शा पर बैठ जाते थे, तो रामसिंह उन्हें इस ढंग से सलाम करता था, कि उनके हाथ स्वयमेव अपनी जेब की ओर चले जाते थे। टेनिस से भी रामसिंह को अच्छी-खासी टिप मिल जाती थी।

यह भी आवश्यक था, कि मैं होटल मॉडर्न के लिये किसी अच्छे मैनेजर और हाउस-कीपर को नियुक्त करूं। यह सम्भव नहीं था, कि इतने बड़े होटल का प्रबन्ध मैं स्वयं कर सकता। इनके लिये मैंने स्टेट्समैन में विज्ञापन भेज दिया। थोड़े ही दिनों में मेरे पास आवेदन-पत्रों का ढेर लग गया। बहुसंख्यक आवेदन-पत्र एंग्लो-इण्डियन लड़कियों के थे, जिन्हें महायुद्ध में सैनिक सेवा और अफसरों के भोजनालयों के प्रबन्ध का अच्छा अनुभव था। कुछ आवेदन-पत्र भारतीयों के भी थे। उन पर तो विचार करना भी व्यर्थ था। यूरोपियन ढंग के होटल के लिये यूरोपियन मैनेजर ही चाहिये। हिन्दुस्तानी इस कार्य के लिये चाहे कितना ही कुशल क्यों न हो, पर होटल के मेहमानों पर उसका रोब नहीं पड़ता। मैं जानता था, कि अब होटल मॉडर्न में ९० फी सदी मेहमान हिन्दुस्तानी होंगे। एक हिन्दुस्तानी मैनेजर अपने देश-भाइयों की आवश्यकताओं को अधिक अच्छा समझ सकता है। पर कठिनता तो यह है, कि होटलों के बहुसंख्यक हिन्दुस्तानी मेहमान अंग्रेजियत पर जान देते हैं। होटलों की भाषा अंग्रेजी है, वहां का खाना अंग्रेजी है, वहां का रहन-सहन और रंग-ढंग अंग्रेजी है। खद्दरधारी हिन्दुस्तानी होटल में आकर छुरी-कांटे से भोजन खायगा, खाने का अंग्रेजी ढंग सीखेगा। पहले तो वह यह कोशिश करेगा, कि अंग्रेजी भोजन खाये। यदि वह शाकाहारी होगा, तो वह भोजन भी वह अंग्रेजी ढंग से पका हुआ मांगेगा। यदि उससे पेट न भरा, वह न खाया गया, तो वह चपाती व परौंठे का आर्डर देगा। पर चपाती को भी खायेगा छुरी से काटकर और ग्रास को कांटे से उठाकर। आधुनिक युग की यही संस्कृति है। भारतीय संस्कृति

वैदिक, बौद्ध, वैष्णव, मुसलिम और इंगलिश संस्कृतियों का सम्मिश्रण है। हमारी सभ्यता एक विशाल नद के समान है, जिसमें कितनी ही छोटी-बड़ी नदियां मिलती रही हैं। अंग्रेजों से उच्च श्रेणी के भारतीयों ने यदि और कुछ नहीं सीखा, तो उनका रहन-सहन और खाने-पीने का ढंग अवश्य सीख लिया है। इसीलिये जब वे किसी बड़े होटल में आकर ठहरते हैं, तो वहां सौ फी सदी अंग्रेजियत की आशा करते है। इस दशा में यह आवश्यक है, कि होटल का मैनेजर यूरोपियन हो। यदि असली यूरोपियन न मिले या मंहगा हो, तो एंग्लो-इण्डियन से भी काम चल सकता है, बशर्ते कि वह गौरांग हो। सैकड़ों आवेदन-पत्रों में से मैंने एक को चुन लिया। यह एक महिला का था, जिसका नाम था, मिसेज विन्सेन्ट। उनकी आयु तीस साल की थी, रंग-रूप ठीक था और उनकी फोटो से ज्ञात होता था, कि वे सुन्दरी व स्मार्ट भी हैं। १५० रु० मासिक पर मैंने उन्हें मैनेजर के पद पर नियुक्त कर दिया, भोजन और निवास तथा होटल-जीवन के अन्य सब आराम इसके अतिरिक्त थे। मेरे हेड बेयरे चन्दनसिंह ने जब यह सुना, तो उसने सन्तोष की सांस ली। उसे अब भरोसा होने लगा, कि होटल चल निकलेगा और मेहमानों को शिकायत का मौका न होगा। होटल मॉडर्न जैसे विशाल होटल के लिये एक हाउसकीपर रखना भी आवश्यक होता है। कमरों की सफाई का निरीक्षण करना, प्रत्येक पलंग पर चादर, तकिया, कम्बल लगवाना, बाथरूम (स्नान-घर) में तौलिया, साबुन आदि रखवाना हाउस-कीपर का काम होता है। बड़े होटलों में मेहमानों को अपना बिस्तर खोलने की आवश्यकता नहीं होती। वह उन्हें तैयार मिलता है। हाउस-कीपर के पद पर भी मैंने एक पारसी महिला को नियुक्त कर लिया, जिनका नाम मिस रुस्तमजी था। रंग-रूप और रहन-सहन में ये सौ फी सदी यूरो-पियन थीं। इनकी नियुक्ति से भी होटल के नौकरों और मसलहारों को पूरा सन्तोष हुआ। हिसाब-किताब व पत्र-व्यवहार के लिये श्रीमुंशीराम को नियत कर लिया गया था। ये देसी बाबू थे, और अपने काम का अच्छा

अनुभव रखते थे। होटल के बाबू के लिये अंग्रेजियत की विशेष आवश्यकता नहीं होती। हां, उसे अंग्रेजी बोलने का अच्छा अभ्यास होना चाहिये। वह धोती या पाजामा पहनकर भी होटल के दफ्तर में बैठ सकता है। होटलों की दुनिया में साहब और बाबू दो भिन्न नसल के प्राणी होते हैं। बाबू वही अच्छा समझा जाता है, जो साहबी रंग-ढंग से दूर हो। बिल बनाना, रुपये का हिसाब-किताब रखना, चिट्ठियों को टाइप करना और मसलदारों के हिसाब निबटाना बाबू का काम होता है। श्रीमुंशीराम अपने कार्य में चतुर थे, कई होटलों का उन्हें अनुभव था। खुले गले का कोट और मोटी धोती पहनकर रहते थे। मेहमान लोग उन्हें बाबू कहकर पुकारते थे, मैं भी उन्हें बाबू कहकर ही बुलाता था। इनका वेतन ८० रु० मासिक था। नौकरों के क्वार्टरों में इनके लिये भी एक कमरा सुरक्षित था, जहां ये अपने बीबी-बच्चों के साथ निवास करते थे। भोजन इन्हें होटल की तरफ से नहीं मिलता था। पर बाद में मुझे मालूम हुआ, कि इनकी असली आमदनी ३०० रु० मासिक से भी अधिक थी। मसलदारों से ये अपनी दस्तूरी वसूल करते थे। बूचड़, दूधवाला, अण्डेवाला आदि मसलदारों के बिलों को पास करना इन्हीं का काम था। इन बिलों की मात्रा महीने में कई हजार तक पहुंच जाती थी। इस दशा में यदि बाबू साहब बिलों को पास करते हुए मसलदारों से कुछ वसूल कर लें, तो उसमें अनौचित्य की क्या बात थी?

यहां मैं यह भी बता दूं, कि केवल बाबूजी ही मसलदारों से अपनी दस्तूरी वसूल नहीं करते थे। होटलों में यह कायदा होता है, कि बूचड़, अण्डेवाले और मच्छीवाले खानसामा को दस्तूरी दें। दूध, डबल रोटी, मक्खन, जैम और चटनी की दस्तूरी बटलर को मिलती है। दस्तूरी की मात्रा प्रायः एक आना रुपया होती है। होटल मॉडर्न में मांस-मच्छी और अण्डे के बिल प्रायः चार हजार रुपया मासिक होते थे। इस प्रकार खाना-सामाजी को २५० रु० मासिक के लगभग दस्तूरी मिलती थी। यह रकम सब खानसामों में उनके वेतन के अनुपात से बांट दी जाती थी। इसी प्रकार

बटलर की दस्तूरी ३०० रु० मासिक के लगभग पहुंच जाती थी। यह रकम भी सब टेबल-बेयरों में उनके वेतन के अनुपात में बंटती थी। मसलदार लोग यह दस्तूरी खुशी से देते हैं, क्योंकि इसके कारण उनके माल में शिकायत की गुंजाइश नहीं रहती। वे अच्छा या बुरा, जैसा भी माल रसोई या पैन्ट्री में दे दें, खानसामा व बटलर उसकी शिकायत नहीं करते। यह लाभ क्या मसलदारों के लिये कम है? यह दस्तूरी तो उस हालत में है, जबकि खानसामा और बटलर सौ फी सदी ईमानदार हों। पर यदि वे बेईमानी की आमदनी का यत्न करें, तो उसके लिये भी उन्हें सुवर्णावसर होता है। बूचड़ ने तीस सेर गोश्त दिया, खानसामा ने एक मन लिखा दिया। अण्डेवाले ने बीस दर्जन अण्डे दिये, खानसामा ने पच्चीस दर्जन लिखवा दिये। अधिक लिखवाये माल की कीमत को मसलदार और खानसामा ने आधा-आधा बांट लिया। यह तो सम्भव ही नहीं है, कि होटल का कोई मालिक सब चीजों को अपने आप खरीदे। उसे इतना अधिक काम रहता है, कि बहुत-सी बातें उसे दूसरों के हाथ में छोड़नी ही पड़ती है। मान लीजिये, किसी होटल का मालिक बड़ा कर्मठ है, उसकी पत्नी, भाई पुत्र आदि सब काम में हाथ बंटाते हैं। वे यह नियम करते हैं, कि सब माल खुद खरीदेंगे, खुद अपने सामने तुलवायेंगे। पर इस हालत में भी खानसामा और बटलर बड़ी सुगमता से बेईमानी कर सकते हैं। आपने खुद अपने सामने तुलवाकर एक मन गोश्त खरीदा। पर आप हर समय तो उसके सामने नहीं बैठे रह सकते। यदि खानसामा चाहे, तो उसमें से दस सेर गोश्त बेच देगा। जहां आप रसोई-घर से बाहर गये, खुद बूचड़ आकर दस सेर गोश्त सस्ते दाम पर खानसामा से खरीद लेगा। दूसरे बंगलों के खानसामा लोग आपके होटल के खानसामा से मुलाकात करने के बहाने आपकी रसोई में या खानसामा के क्वार्टर में आवेंगे, और आधे-पौने दाम पर गोश्त, अण्डे आदि खरीद ले जायंगे। अपने मालिक से वे पूरी कीमत लेंगे। आपका रसोई-घर छोटे खानसामों के लिये दूकान का काम करेगा। बताइये, किसी

होटल का मालिक इस समस्या का क्या हल कर सकता है ? वह खुद खान-सामा बेयरा आदि का काम नहीं कर सकता, न चौबीस घण्टे रसोई-घर पैन्ट्री डाइनिंग रूम आदि में सर्वत्र उपस्थित रह सकता है। आप कहेंगे, खान-सामा से पूरे एक मन गोश्त का हिसाब क्योंकर नहीं लिया जा सकता ? ठीक है, खानसामा आपको पूरे एक मन का हिसाब दे देगा। वह आपको बतायगा, इतना गोश्त कारी में खर्च हुआ, इतना कटलेट में, इतना पाई में और इतना हाजरी में। आप किस ढंग से यह तय करेंगे, कि खानसामा या बटलर विविध खाद्य पदार्थों के खर्च का जो हिसाब दे रहा है, वह सही नहीं है। अनुभवी से अनुभवी और कर्मठ से कर्मठ होटल-मालिक को अपने खानसामा और बटलर की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है। यदि वे ईमान-दार हैं, आपका सौभाग्य है। यदि वे बेईमानी करते हैं, आप असहाय हैं। आपने खानसामा से बकझक की, वह खाना बिगाड़ देगा। सूप में नमक ज्यादा डाल देगा, गोश्त कच्चा रख देगा। डाइनिंग-हाल में शोर मच जायगा, साहब लोगों की भयंकर कोप-दृष्टि से आप परेशान हो जायंगे। आपके अपने घर में कभी खाना खराब हो जाय, आप चुपचाप उसे खा लेते हैं। पर होटल में ? वहां आप मैनेजर और मालिक की गरदन नापने को तैयार हो जाते हैं। बात की बात में होटल बदनाम हो जाता है। मेहमान लोग दूसरे होटल में चले जाने की धमकी देने लगते हैं। होटल का मालिक खानसामा को नाराज नहीं कर सकता। उसे नाराज करने का मतलब है आत्महत्या, अपने होटल का दिवाला।

मैं स्वीकार करूंगा, कि मेरे खानसामा और बटलर बेईमान नहीं थे। अपनी दस्तूरी वे वसूल करते थे। उनकी यह आमदनी चोरबाजार की नहीं थी। मसलदारों को उनके बिल की रकम तभी दी जाती थी, जब पहले खानसामा और बटलर उनसे अपनी दस्तूरी वसूल कर लेते थे। इससे उन्हें बहुत सन्तोष था। प्रत्येक कारीगर नैतिकता के सम्बन्ध में अपना एक निश्चित आदर्श रखता है। श्रमियों और कारीगरों में नैतिकता की

भावना सरमायेदारों और धनियों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। पढ़े-लिखे सम्पन्न लोग जितनी सुगमता से प्रलोभन में आ जाते है, कारीगर लोग उतनी जल्दी लालच के शिकार नहीं होते। मेरे खानसामा और बटलर भी कारीगर थे। अपना काम करते हुए उन्हें बीसों वर्ष बीत चुके थे। यदि बेईमानी की राह पकड़ते, तो अब तक वे मध्यश्रेणी के सम्पन्न लोग बन जाते। पर उन्हें अपने फन व शिल्प का अभिमान था, उसकी पवित्रता व नैतिकता को कायम रखने के लिये वे दृढ़-निश्चय थे। मैंने उन पर विश्वास किया, उनके कार्य में निरर्थक हस्तक्षेप नहीं किया और उन्होंने भी ईमानदारी व लगन से मेरा काम किया। मैं यह नहीं कहता, कि वे पूरे सत्यवादी व धर्मात्मा थे। अपने दोस्तों व मेहमानों की खातिरदारी में वे कोई कसर न उठा रखते थे। उन्हें वे वह खाना देते, जो होटल के गाहक लोगों को भी नसीब नहीं होता था। मसलदार लोग भी उन्हें खुश करने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। यदि कभी खानसामाजी बूचड़ से नाराज हो जावें, तो गरीब बूचड़ की कुशल नहीं थी। खानसामा सीधा मुझे आकर कहता—हुजूर, यह बूचड़ बूढ़ी भेड़ों का गोश्त देता है। इसलिये यदि खाने की शिकायत हो, तो मैं जिम्मेदार नहीं। यह शिकायत आने पर मेरे पास इसके सिवा और कोई उपाय नहीं था, कि मैं उस बूचड़ को हटाकर किसी ऐसे बूचड़ का इन्तजाम करूं, जिसके गोश्त से खानसामा को सन्तोष हो। बटलर साहब दूधवाले के दूध में पानी की शिकायत कर या मक्खन में मिलावट की बात कहकर उसके भाग्य का क्षण भर में निबटारा करा सकते थे। दूध चाहे कितना ही अच्छा हो, पर बटलरजी उसमें पानी मिलाकर ऐसा दूध चाय के साथ रख सकते थे, जिसे प्याले में चाहे कितना ही डाला जाय, चाय में सफेदी आने ही न पायगी। इस हालत में मसलदार लोग भली भांति समझते थे, कि उनके असली भाग्य-विधाता खानसामा और बटलर हैं। वे उन्हें खुश रखने के लिये उसी तरह प्रयत्नशील रहते थे, जैसे कि ठेकेदार लोग सरकारी अफसरों को खुश रखते हैं।

होटल का सारा स्टाफ मैंने भरती कर लिया था। अब मैं उस दिन की प्रतीक्षा में था, जब कि गर्मियां शुरू होंगी और साहब लोग देश की गर्मी से बचने के लिये रामनगर जैसे पार्वत्य स्थानों पर आना प्रारम्भ करेंगे। होटल मॉडर्न का विज्ञापन अंग्रेजी के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो रहा था। हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के पत्र होटलों के लिये अन्यथासिद्ध होते हैं। स्वराज्य के बाद भी पढ़े-लिखे भारतीयों की भाषा अंग्रेजी ही थी, और मेरे विज्ञापन भी अंग्रेजी पत्रों में ही प्रकाशित हो रहे थे। रोज की डाक से दर्जनों चिट्ठियां आती थीं--होटल के विवरण के लिये, रेट जानने के लिये या कमरा रिजर्व कराने के लिये।

## (४)

## होटल मॉडर्न का परिचय

इस पुस्तक के अनेक पाठक आधुनिक युग के विशाल होटलों से अपरिचित होंगे। वस्तुतः होटल भारत के लिये एक नई चीज है। अंग्रेजी राज से पहले इस देश में होटलों का सर्वथा अभाव था। लोग जब यात्रा पर निकलते थे, तो देहात में गांवों की चौपाल में ठहरते थे, और शहरों में धर्मशालाओं में। मुसलिम शासन के समय में अरब और ईरान के नमूने की सरायें इस देश में कायम हुई, पर हिन्दुओं ने उन्हें नहीं अपनाया। अतिथि-सत्कार भारतीय संस्कृति की एक अनुपम विशेषता है, और हिन्दू गृहस्थ इस बात में अपना सौभाग्य समझता है, कि कोई अतिथि अपने चरण-रज से उसके गृह को पवित्र करे और उसके यहां भोजन पावे। यूरोप में आतिथ्य का प्रायः अभाव है। सगे-सम्बन्धी भी वहां आतिथ्य ग्रहण नहीं कर पाते। लोग होटलों में ठहरते हैं, और अपनी जेब के अनुसार भोजन, कमरा व अन्य आराम क्रय करते हैं। शुरू में भारत में जो होटल कायम हुए, वे अंग्रेजों

के लिये थे। धीरे-धीरे हिन्दुस्तानियों ने भी अंग्रेजी सभ्यता को अपनाया और होटलों में रहना व खाना शुरू किया। अब वह समय आ चुका है, जब उच्चशिक्षित लोग धर्मशालाओं में ठहरना अपनी हैसियत से नीची बात समझते हैं, और होटल-निवास में गौरव अनुभव करते हैं। शहरों में छोटे-छोटे होटल तो इस ढंग के भी खुल गये है, जहां मध्य श्रेणी के हिन्दुस्तानी लोग भी ठहरते हैं। पर यहां मैं उन बड़े होटलों की बात लिख रहा हूं, जो साहब लोगों के लिये हैं, चाहे वे साहब लोग गौरांग हों या कृष्णांग। साहब लोगों की सभ्यता और संस्कृति अलग है, और वह सर्वसाधारण भारतीय जनता की संस्कृति से बहुत भिन्न है।

होटल मोडर्न का कुछ परिचय पहले दिया जा चुका है। इसमें कुल मिलाकर एक सौ बेड-रूम हैं। बेड-रूम पलंग-कमरे को कहते हैं, जो सोने के काम आता है। अंग्रेजी ढंग के होटलों में यह आवश्यक है, कि बेड-रूम के साथ ही बाथ रूम (स्नान-घर) भी हो। प्रत्येक बेड-रूम के साथ लगा हुआ बाथ-रूम होता है, जो टट्टी और स्नान-घर दोनों के ही काम आता है। बाथ-रूम के एक किनारे पर कमोड रखा होता है, और दूसरे किनारे पर पानी का नल। साहब लोग नल के नीचे बैठकर स्नान नहीं करते। अतः यह जरूरी नहीं होता, कि बाथ-रूम में पानी का नल अवश्य रहे। साहब लोगों के स्नान के लिये एक टब रखा जाता है, जिसमें आधी ऊंचाई तक पानी भर दिया जाता है। साथ ही एक बाल्टी में अलग भी पानी रख दिया जाता है। साहब लोग टब में बैठकर स्नान करते हैं, उसी में बैठकर साबुन मलते हैं, और बाद में बालटी का स्वच्छ पानी अपने ऊपर डाल लेते हैं। स्नान का पानी गरम हो या ठण्डा, यह ऋतु और साहब लोग की रुचि पर निर्भर करता है। पर साहब लोग गर्मियों में भी गरम पानी से स्नान करना पसन्द करते हैं, विशेषतया पार्वत्य नगरों में। कुछ बेड-रूमों के साथ बाथ-रूम के अतिरिक्त ड्रेसिंग-रूम भी रहता है, जिसमें ड्रेसिंग-टेबल (शृंगार व प्रसाधन की मेज), कपड़ों की आलमारी आदि

रखी होती है। साहब लोग स्नान (जिसे होटल की भाषा में गुसल कहते हैं) के बाद ड्रेसिंग-रूम में जाकर कपड़े पहनते हैं, शृंगार करते हैं, और भली भांति अपना प्रसाधन कर फिर बेड-रूम में आते हैं। कुछ बेड-रूमों के आगे प्राइवेट सिटिंग-रूम (बैठक कमरा) भी होता है। इस ढंग के कमरों (जिन्हें होटल की भाषा में 'सूट' कहते हैं) का किराया कुछ अधिक होता है, और वे प्रायः पति-पत्नी या परिवारों के निवास के लिये दिये जाते हैं। होटल मोडर्न में कुल मिलाकर सौ बेड-रूम थे। बाथ-रूम तो इन सबके साथ थे ही। लगभग एक चौथाई बेड-रूम ऐसे थे, जिनके साथ ड्रेसिंग-रूम और सिटिंग-रूम भी थे। प्रत्येक कमरा उपयुक्त फर्निचर से सुसज्जित था। हमारे कतिपय पाठकों को यह जानने की भी उत्सुकता होगी, कि साहब लोगों के कमरों में किस ढंग का फर्निचर रहता है। सिटिंग-रूम में एक सोफा-सेट का होना आवश्यक है। सोफा-सेट में दो गद्देदार आरामकुर्सियां होती हैं, और एक बड़ा गद्देदार सोफा, जिस पर दो या तीन व्यक्ति एक साथ आराम से बैठ सकते हैं। बीच में एक छोटी गोल मेज रहती है, जिस पर शोभा के लिये फूलों का गुलदस्ता फूलदान में रखा रहता है। कमरे में एक बड़ी दरी और बीच में एक कालीन का रहना जरूरी है। कमरे के कोनों में अनेक छोटे बड़े स्टूल (तिपाइयां) रखे रहते हैं, जिन पर शोभा या शृंगार की अनेक प्रकार की वस्तुएं सजाई जाती हैं। सोफा व आरामकुर्सियों के बगल में छोटे-छोटे पेग (तिपाई) टेबल रखे रहते हैं, जिन पर शराब पीने के गिलास या चाय पीने के प्याले रखे जाते हैं। कमरे के दरवाजे पर बढ़िया रेशमी परदे लटके होते हैं, और खिड़कियों पर बारीक जाली के छोटे-छोटे परदे। होटल की हैसियत के अनुसार ये परदे व जालियां भी अधिक बढ़िया व शानदार होती हैं। यह भी जरूरी है, कि सिटिंग-रूम में कुछ सुन्दर चित्र भी लटक रहे हों। ये चित्र विलायती होने चाहियें। राम, कृष्ण, शिवाजी आदि के चित्रों से होटल के मालिक का फूहड़पन प्रगट होगा। अतः यह ध्यान रखना चाहिये,

कि विलायती दृश्यों व अंग्रेजी रुचि के चित्रों का संग्रह किया जाय और उन्हीं से होटल के सिटिंग-रूमों को सजाया जाय। बेड-रूम में पलंग के अतिरिक्त एक या दो आदमकद आयने, टी-टेबल (चाय पीने की छोटी मेज), दो आरामकुर्सी, दो-तीन साधारण कुर्सियां, दो आलमारियां, एक चेस्टर ड्रावर और इसी तरह की कुछ अन्य चीजें होनी हैं। एक आलमारी ऐसी होती है, जिसमें वस्त्र लटकाये जा सकें, और दूसरी खानेदार, जिसमें तह किये हुए वस्त्र रखे जावें। पलंग स्प्रिंगवाला हो, तो अच्छा है। अन्यथा नीवार के पलंग से भी काम चल सकता है। पलंग पर एक मोटा गद्दा, उस पर श्वेत चादर, तकिये, कम्बल आदि सब होने चाहियें। कम्बलों पर बेड-कावर (पलंगपोश) का होना भी जरूरी है। कमरे में दरी और एक छोटा कालीन भी बिछा रहता है। परदे और जालियां तो होती ही हैं। बिजली की बत्ती का बटन पलंग के ठीक ऊपर होना चाहिये, ताकि साहब लोगों को बत्ती जलाने या बुझाने के लिये बिस्तर छोड़कर उठने की जरूरत न हो। बेड-रूम में एक चेम्बरपाट भी रखा रहता है, ताकि रात के समय लघुशंका के लिये बाथ-रूम तक भी जाने की जरूरत न हो। लघुशंका चेम्बरपाट में की जाती है, और सुबह जमादार उसे उठाकर ले जाता है। ड्रेसिंग-रूम और बाथ-रूम के फर्निचर का उल्लेख मैं पहले कर चुका हूं। अनेक होटलों में फर्निचर इससे भी अधिक होता है, पर मने यहां उस फर्निचर का जिक्र किया है, जो होटल मोडर्न के कमरों में था। पलंग, मेज, कुर्सी आदि सब वहां अच्छे बढ़िया किसम के थे, और साहब लोग उनसे बहुत सन्तोष अनुभव करते थे।

बड़े होटलों में कुछ कमरे सार्वजनिक रूप से उपयोग करने के लिये होते हैं। इन्हें पब्लिक रूम कहा जाता है। इनमें डाइनिंग हॉल, ड्राइंग-रूम, लौंज, बाल-रूम और बार-रूम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। होटल मोडर्न के डाइनिंग हॉल (भोजन-भवन) में २२५ के लगभग स्त्री-पुरुष एक साथ भोजन कर सकते थे, जमीन पर बैठकर नहीं, अपितु मेज-कुर्सियों

पर बैठकर। खाना खाने की मेज (डाइनिंग-टेबल) सब साइजों की थीं, ऐसी भी जिन पर एक या दो व्यक्ति खाना खाते थे, और इतनी बड़ी भी, जिनके चारों तरफ आठ या दस कुर्सियां लगाई जा सकती थीं। मेजों को बड़ी तरतीब से लगाया जाता था। सब पर श्वेत चादर बिछी रहती थी, और उस पर सुन्दर ताजे फूलों के गुलदस्ते रखे रहते थे। साहब लोग साधारण भारतीयों के समान थाली-कटोरी में भोजन नहीं करते। उनके लिये श्वेत चाइना मिट्टी की तश्तरियां प्रयुक्त होती हैं। टेबल के बीच में फूलदान के साथ नमक, काली मिर्च, मसाला, सिरका आदि के लिये छोटी-छोटी शीशियां रखी रहती हैं, जिनसे आवश्यकतानुसार इनको लिया जा सके। एक बोतल में टमाटो सॉस (टमाटर की चटनी) और एक प्याले में जैम (मुरब्बा) भी रहता है। ये सब वस्तुएं स्थिर रूप से टेबल पर रखी रहती हैं। भोजन के समय पर छुरी, कांटे, चम्मच आदि सजा दिये जाते हैं। साहब लोग खाना खाते हुए उंगलियों का उपयोग नहीं करते। वे छुरी से गोश्त, सब्जी आदि को काटते हैं, कांटे से ग्रास को उठाते हैं, और चम्मच से द्रव या अवलेह्य वस्तु को मुह में ले जाते हैं। चम्मच और कांटे अलग-अलग साइजों के होते हैं। एक समय के भोजन में तीन-चार किसम के चम्मच, छुरी व कांटे प्रयोग में लाये जाते हैं। जो चम्मच सूप पीने का होता है, वह पुडिंग खाने के काम में नहीं लाया जाता। जिस छुरी से गोश्त या सब्जी खाई जाती है, मछली खाने की छुरी उससे भिन्न होती है। चाय काफी आदि के लिये भिन्न आकार व शकल के चम्मच प्रयोग में लाये जाते हैं। यही बात तश्तरियों (प्लेटों) के बारे में भी है। किसी भी अच्छे होटल में छुरी, चम्मच आदि का बड़ा सुन्दर प्रदर्शन होता है।

अब साहब लोगों के भोजन के बारे में भी कुछ बातें मालूम कर लीजिये। वे दो दफे चाय और तीन दफे भोजन करते हैं। सुबह जब वे बिस्तर में ही होते हैं, बेयरा उनकी सेवा में चाय लेकर हाजिर होता है। इस चाय को

छोटी हाजरी कहते हैं। एक ट्रे (थाली) में टी-पाट (चायदानी), मिल्क जग (दूध का बरतन), सुगर-पाट (चीनी का बरतन), एक पिर्च प्याला और दो चम्मच रखे जाते है, साथ ही दो व चार बिस्कुट या दो बटर टोस्ट (डबल रोटी के सेके हुए टुकड़े मक्खन के साथ)। यह छोटी हाजरी प्रातः छः बजे के लगभग दी जाती है। प्रायः साहब लोग इसे कुल्ला करने से भी पहले खाते हैं, शौच-स्नान आदि का तो प्रश्न ही नहीं होता। फिर नौ बजे के लगभग साहब लोग ब्रेकफस्ट या प्रातराश खाते है। होटल की भाषा में इसे बड़ी हाजरी कहते हैं। इसके लिये साहब लोग डाइनिंग हॉल में पधारते हैं। होटल का स्टीवर्ड डाइनिंग हॉल में पधारने पर उनका स्वागत करता है, और उन्हें उस मेज पर बिठाता है, जो उनके लिये सुर-क्षित रहती है। बड़ी हाजरी में निम्नलिखित वस्तुएं होती है—दो अण्डे, आप जिस शकल में चाहें उन्हें ले सकते हैं, आमलेट, फ्राइड एग, बायल्ड एग आदि कितने ही प्रकार हे, जिनमें साहब लोग अण्डे लेते हैं। अण्डों के अतिरिक्त एक बरतन पॉरिज का दिया जाता है। पॉरिज अनेक प्रकार के होते हैं। उबला हुआ गेहूँ का दलिया, सूजी या सूखा पॉरिज (कार्न फ्लेक आदि) दूध के साथ दिये जाते हैं। दूध जग में भरकर टेबल पर रख दिया जाता है, और साहब लोग अपनी रुचि के अनुसार जितना चाहें, उसे पॉरिज के साथ ले सकते हैं। चीनी भी वे अपनी रुचि के अनुसार उसमें मिलाते हैं। साहब लोग देसी दलिये व सूजी को पसन्द नहीं करते। उन्हें टिन में बन्द विलायती पॉरिज पसन्द होती है। बीसियों किसम के विलायती पॉरिज आते हैं, यथा क्वेकर ओट्स आदि। ओट ज्वार को कहते हैं। यदि आप बाजार से रुपये का चार सेर के हिसाब से ज्वार खरीदकर उसे पका-कर साहब लोगों के सामने रख दें, तो उसे वे आपके सिर पर पटक देंगे। पर तीन रुपये सेर के हिसाब से मिलनेवाले क्वेकर ओट्स जब आप उन्हें दें, तब वे सन्तोष अनुभव करेंगे। इसी तरह कार्न फ्लेक (भुनी हुई मक्का) आदि के विलायती व महंगे पॉरिज उन्हें दिये जाते हैं। हाजरी के समय

इतना खाकर भी साहब लोग सन्तुष्ट नहीं होते। उन्हें गोश्त की भी एक डिश चाहिये। प्रायः लिवर (कलेजी), मच्छी आदि हाजरी में दी जाती है। कम से कम दो टोस्ट (मक्खन और जैम के साथ) और चाय का होना भी हाजरी के लिये आवश्यक है। अन्त में कुछ फल भी उन्हें दिये जाने चाहियें।

नौ-दस बजे हाजरी खाकर साहब लोग फारिग होते हैं। एक बजे लंच का समय हो जाता है। लंच में सबसे पहले सूप (गोश्त का शोरवा) दिया जाता है। फिर गोश्त और सब्जी के दो बरतन होते हैं। हिन्दुस्तानी भोजन के समान सब चीजें एक साथ नहीं परोस दी जातीं। पहले सूप लाया जाता है, उसके लिये प्लेट एक विशेष आकार की होती है, और उसका चम्मच भी अलग होता है। जब आप सूप पी लेते हैं, तो अगला बरतन आता है। अन्त में पुडिंग दिया जाता है। पुडिंग मीठा होता है, और उसे अनेक प्रकार से बनाया जाता है। पुडिंग के बाद काफी और फिर कुछ अखरोट, चोकलेट आदि दिये जाते हैं। चार बजे के लगभग फिर चाय का समय हो जाता है, जिसमें चाय के साथ केक पेस्ट्री आदि दी जाती हैं। रात को आठ बजे डिनर का समय होता है, जिसमें लंच के समान ही सूप, गोश्त सब्जी के दो बरतन, पुडिंग, काफी और डेस्सर्ट (खाने की कोई हलकी चीज, जैसे हम लोग पान-सुपारी खाते हैं) दिये जाते हैं। बड़े होटलों में यह जरूरी है, कि प्रत्येक टेबल पर भोजन के विविध पदार्थों की सूची रख दी जाय। इस सूची को 'मेनू' कहते हैं। मेनू देखकर साहब लोगों को यह ज्ञात हो जाता है, कि आज भोजन में क्या कुछ बना है, और वे अपनी रुचि के अनुसार किसी वस्तु को कम या अधिक ले सकते हैं। अंग्रेजी भोजन के सम्बन्ध में आप इस पुस्तक में आगे चलकर प्रसंगवश अधिक परिचय प्राप्त करेंगे।

होटल मॉडर्न का ड्राइंग-रूम या लौंज भी अत्यन्त विशाल था। उसमें बहुत-से सोफे व गद्देदार कुर्सियां पड़ी हुई थीं। प्रत्येक कुर्सी के साथ

एक-एक छोटी मेज भी रखी थी, जिस पर रखकर सोडा, शराब आदि पी जा सकती थी। हॉल के एक कोने में पियानो भी रखा था। जिन साहब लोगों को गाने-बजाने का शौक हो, वे इसे प्रयोग में ला सकते थे। दूसरी तरफ एक कोने में एक छोटी-सी लायब्रेरी भी थी, जहां अंग्रेजी के बहुत-से उपन्यास संगृहीत थे। एक टेबल पर दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्र भी रखे रहते थे, जो प्रायः हलकी रुचि के लोगों के लिये उपयुक्त थे। ड्राइङ्ग रूम के साथ ही होटल का बार-रूम था, जहां तरह-तरह की शराबें अच्छी-बड़ी मात्रा में संगृहीत थीं। साहब लोग यहां आकर शराब खरीदते थे और इसी कमरे में बैठकर या साथ लगे ड्राइंग रूम में जाकर उसका पान करते थे।

होटल मॉडर्न के सार्वजनिक भवनों में बालरूम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। यह साहब लोगों के नाच के काम में आता था। यूरोपियन लोगों के जीवन में नृत्य का बहुत महत्त्व है। स्त्री-पुरुष वहां एक साथ नाचते हैं। सामने स्टेज पर आर्केस्ट्रा (वाद्य-संगीत) बजता रहता है, और साहब-मेमसाहब उसकी ताल के साथ-साथ थिरककर नाचते हैं। आर्केस्ट्रा में पांच सात नौ या ग्यारह वादक होते हैं। एक नाच समाप्त होने के बाद साहब लोग अपनी-अपनी कुर्सी-मेज पर बैठ जाते हैं, और नाच की थकान मिटाने के लिये शराब का पान करते हैं। १९४७ से पूर्व होटल मॉडर्न का यह बालरूम सायंकाल के समय सदा गुलजार रहता था। उसमें बैठने की जगह भी मुश्किल से मिलती थी। अंग्रेजों के भारत छोड़ जाने के बाद यह हॉल अब उजड़ गया था।

बालरूम के साथ ही लगा हुआ बिलियर्ड-रूम था, जिसमें बिलियर्ड खेलने के लिये विशाल टेबल पड़ी हुई थी। इसी के साथ समीप के अन्य भवनों में अन्य कई प्रकार की खेलों की सामग्री संगृहीत थी। इन भवनों में आकर साहब लोग तरह-तरह के आमोद-प्रमोद कर सकते थे। होटल

मॉडर्न के विशाल सहन में पांच टेनिस-कोर्ट भी बने थे, जिनमें सायंकाल के समय अच्छी रौनक हो जाती थी ।

होटल मॉडर्न के इस परिचय से आप शायद थक गये होंगे । पर इसे यहां लिखना इसलिये उपयोगी समझा गया, क्योंकि इस पुस्तक के अनेक पाठक शायद आधुनिक युग के विशाल होटलों से सर्वथा अपरिचित होंगे । ज्यों-ज्यों इस पुस्तक को आप पढ़ते जायंगे, होटल-जीवन का चित्र आपके सम्मुख अधिक-अधिक स्पष्ट होता जायगा ।

## (५)

## होटल के पहले यात्री

मार्च की पन्द्रह तारीख थी और दिन के बारह बजे का समय । मैं होटल मॉडर्न के शानदार आफिस में बैठा हुआ डाक देख रहा था । आसमान बादलों से घिरा हुआ था, और रह-रहकर वर्षा पड़ रही थी । ठण्ड के मारे हाथों को जेब से निकालना कठिन था । इसी समय पांच रिक्शाएं घड़घड़ाती हुई दफ्तर के सामने आ खड़ी हुई । आज के दिन किसी भी यात्री के आने की सम्भावना नहीं थी । होटल के पट अभी नहीं खुले थे । पर गाहक का और मौत का क्या ठिकाना ? पहले से रिजर्व कराये बिना या किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार किये बिना कुछ यात्री होटल में आ पधारे थे । होटल के सब कर्मचारी नियुक्त किये जा चुके थे । पर इस समय वहां कोई भी मौजूद नहीं था । किसी यात्री के आगमन की सम्भावना न होने से सब अपने-अपने कमरों या क्वार्टरों में आराम कर रहे थे, या बाजार घूमने गये हुए थे । मैंने खुद उठकर मेहमानों का स्वागत किया । पर होटल का हेड बेयरा नन्दनसिंह सदा चौकन्ना रहता था । रिक्शाओं की आवाज सुनते ही वह क्षण भर में दफ्तर पहुंच गया और अपने काम में जुट गया । कमरे सब तैयार थे, तीन अच्छे कमरे मेहमानों के लिये खोल दिये गये और होटल

मॉडर्न का काम शुरु हो गया। होटल के ये पहले मेहमान एक बड़ी रियासत के राजा साहब थे। रियासत का असली नाम मैं नहीं लिखूंगा। आप समझ लीजिये, कि ये त्रिपुरी के राजा साहब थे, जो अपनी महारानी, दो कुमार, एक कुमारी और दो सेक्रेटरियों के साथ रामनगर की यात्रा के लिये आये थे। साथ में जो नौकर-चाकर थे, उनका जिक्र करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि होटलों के जीवन में जनसाधारण का कोई स्थान नहीं होता।

राजा साहब सफर के कारण थकान अनुभव कर रहे थे। थकान का इलाज होटल मॉडर्न की बार में विद्यमान था। उन्होंने सबसे पहले बार-लिस्ट लाने का हुकुम दिया। जिस कार्ड पर शराबों की सूची व कीमतें लिखी रहती हैं, उसे बार-लिस्ट कहते हैं। बार-लिस्ट राजा साहब की खिदमत में हाजिर कर दी गई। राजा और रानी दोनों ने जी भरकर शराब पी। बात की बात में स्काच ह्विस्की की एक बोतल समाप्त हो गई। राजा साहब तबियत से रंगीले थे। उन्होंने मुझसे भी अनुरोध किया, कि मैं भी शराब पीने में उनका साथ दूं। मैं शराब से परहेज रखता हूं। पर अपने होटलके प्रथम मेहमान के अनुरोध को कैसे टालता? यह बात सभ्यता के भी विरुद्ध होती। मैं भी राजा साहब की मण्डली में बैठ गया और बेयरे को इशारे से कह दिया, कि मेरे गिलास में केवल चौथाई पेग ही डाले। शराब का एक पेग एक छटांक के लगभग होता है। चौथाई पेग शराब में एक बोतल सोडे को मिलाकर मैंने राजा साहब के आतिथ्य को स्वीकार किया। जब तक मैंने इस एक गिलास को पीया, राजा और रानी साहिबा पांच-पांच पेग गले से नीचे उतार चुके थे। अभी होटल में अन्य कोई यात्री नहीं था, और मुझे इस बात की चिन्ता थी, कि राजा और रानी साहब कहीं इकलापन अनुभव न करें। इसलिये मैं इस बात के लिये उत्सुक था, कि जहां तक हो सके, उनके साथ रहूं और उनके अकेलेपन को दूर करूं। यह काम मेरे लिये कष्टप्रद नहीं था, क्योंकि राजा साहब बड़े खुशमिजाज

और जिन्दादिल थे। रानी साहिबा इन गुणों में राजा साहब से भी दस कदम आगे थीं। शीघ्र ही मेरा उनसे अच्छा परिचय हो गया। बातचीत के सिलसिले में मालूम हुआ, कि रानी साहिबा विश्वपुर की राजकुमारी हैं। विश्वपुर रियासत के महाराजकुमार उदयसिंह से लण्डन में मेरा परिचय हुआ था। इस परिचय को यदि मैं मैत्री कहूं, तो भी अनुचित न होगा। विदेश में छोटे-बड़े का उतना भेद नहीं होता, और स्वदेश के लोगों में घनिष्ठता सुगमता से हो जाता है। मैंने रानी साहिबा से कहा—हैं, क्या आप कुमार उदयसिंहजी की बहन हैं? मेरे प्रश्न को सुनकर राजा साहब खिल-खिलाकर हंस पड़े। वे बोले—अरे, इन्हें अपने भाइयों का क्या पता, ये किस-किसको पहचानें? इनके दर्जनों भाई हैं और दर्जनों बहनें। जानते हो, विश्वपुर के महाराज की कितनी महारानियां हैं? वहां तो महाराजा साहब भी अपनी सन्तान को नहीं पहचान पावेंगे। ये भला किस-किसको जान सकती हैं?

राजा साहब चाहते थे, कि अपने कुमारों और कुमारी को रामनगर के किसी अच्छे स्कूल में दाखिल करा दें। उनकी अपनी रियासत में स्कूलों की कमी नहीं थी। पर राजा साहब की इच्छा थी, कि उनके कुमार यूरोपियन ढंग के किसी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करें। रामनगर में इस ढंग के एक दर्जन के लगभग स्कूल थे। अंग्रेजी राज के जमाने में उनमें भारतीय बच्चों को बड़ी कठिनता से दाखिला मिलता था। ये स्कूल भारत के अंग्रेज निवासियों की सुविधा के लिये खोले गये थे। इनका वातावरण सौ फी सदी यूरोपियन था। इसीलिये इनमें यह भी नियम था, कि हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की संख्या दस फी सदी से अधिक न होने पावे। इनमें पढ़नेवाले हिन्दुस्तानी विद्यार्थी भी सौ फी सदी अंग्रेज बन जाते थे। उच्च श्रेणी के भारतीय इस बात के लिये प्रयत्नशील रहते थे, कि अपने बच्चों के लिये इनमें स्थान सुरक्षित करा लें। इसीलिये जब बच्चे अभी तीन-चार साल की आयु के होते थे, तभी उनका नाम इन स्कूलों की वेटिंग लिस्ट (उम्मीदवारों

की सूची) में लिखवा दिया जाता था। अब स्थिति बदल गई थी। अंग्रेजों के भारत छोड़कर चले जाने के बाद इन स्कूलों के लिये गौरांग विद्यार्थियों को पर्याप्त संख्या में प्राप्त कर सकना सुगम नहीं रहा था। इसलिये अनेक स्कूल बन्द हो गये थे। जो अभी चालू थे, उनमें भी यूरोपियन विद्यार्थी बहुत कम संख्या में थे। गौरांग विद्यार्थियों में भी अधिक संख्या एंग्लो-इण्डियन बच्चों की थी। इस दशा में हिन्दुस्तानी बच्चों के लिये इन स्कूलों में प्रवेश पाना कठिन नहीं रहा था। राजा साहब मार्च की सर्दी में जो रामनगर आये थे, उसमें उनका उद्देश्य यही था, कि वे स्वयं इन स्कूलों को देखें, और किसी स्कूल को चुनकर अपने बच्चों को उसमें प्रविष्ट करा दें। वे सबसे पहले 'कन्वेन्ट आफ सेक्रेड हार्ट' में गये। वहां उन्हें यह देखकर बहुत निराशा हुई, कि इस स्कूल की मुख्याध्यापिका एक इण्डियन क्रिश्चियन महिला थीं। मैं इन महिला से परिचित था। इस स्कूल की इंगलिश प्रिंसिपल अंग्रेजों के भारत-त्याग के साथ खुद भी विलायत चली गई थीं। कन्वेन्ट का संचालन जिस चर्च द्वारा होता था, उसके प्रमुख पदों पर भी अब भारतीय ईसाई नियुक्त हो गये थे। जब इस स्कूल के प्रिंसिपल पद पर नई नियुक्ति का प्रश्न आया, तो उन्होंने मिस मुकर्जी को निर्वाचित किया। मिस मुकर्जी धर्म से ईसाई थीं, और एम० ए०, बी० टी० पास थीं। इंगलैण्ड से भी उन्होंने शिक्षा-सम्बन्धी एक उच्च डिग्री प्राप्त की थी। पर राजा साहब को उनसे बहुत निराशा हुई। वे मुझसे कहते थे, मिस मुकर्जी कितनी ही सभ्य, शिक्षित और सुसंस्कृत क्यों न हों, असली यूरोपियन तो नहीं हैं। अब स्कूल का वह पुराना स्टेण्डर्ड कैसे रह सकता है ? मिस मुकर्जी की एक गल्ती यह थी, कि वे साड़ी पहनकर रहती थीं। बंगाली होने के कारण शायद उन्हें राष्ट्रीय संस्कृति से कुछ प्रेम था। यदि वे अंग्रेजी पोशाक पहनकर रहतीं, तो राजा साहब को उनसे इतना असन्तोष न होता। वे उन्हें एंग्लो-इण्डियन समझकर कुछ सन्तोष अनुभव कर सकते थे।

कन्वेन्ट आफ सेक्रेड हार्ट तो राजा साहब को पसन्द नहीं आया। उन्होंने अन्य स्कूलों को भी जाकर देखा। सेण्ट फ्रांसिस स्कूल की प्रिंसिपल अंग्रेज महिला थीं, उनके स्टाफ में भी गौरांग अध्यापकों व अध्यापिकाओं की बहुसंख्या थी। पर पूछने पर मालूम हुआ, कि उसमें साठ फी सदी से अधिक भारतीय विद्यार्थी हैं, तीस फी सदी एंग्लो-इण्डियन हैं, और यूरोपियन विद्यार्थियों की संख्या दस फी सदी से भी कम है। यह बात राजा साहब को अच्छी नहीं लगी। उनका कहना था, कि इतने हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों के बीच में अंग्रेजी वातावरण कैसे रह सकेगा, कुमारों की भाषा का 'एक्सेन्ट' बिगड़ जायगा। उन्हें इस बात से भी बहुत असन्तोष हुआ, कि सेण्ट फ्रांसिस स्कूल के भोजनालय में अब कारी राइस और चपाती भी बनने लगी है। बदली हुई परिस्थितियों में यह आवश्यक था, पर राजा साहब तो ऐसे स्कूल में अपने बच्चों को प्रविष्ट कराना चाहते थे, जहां भारतीयता का नामोनिशान भी न हो।

आखिर, उन्हें अपना मनचाहा स्कूल मिल गया। होटल मोडर्न में पहले एक हाउसकीपर थीं, जिनका नाम मिसेज ग्रान्ट था। ये शुद्ध इंगलिश थीं। इनकी शिक्षा जूनियर केम्ब्रिज तक हुई थी। तीस साल की आयु में ही ये विधवा हो गई थीं, और दस साल तक होटल मोडर्न में हाउसकीपर का काम करती रही थीं। अब दो साल से ये बेकार थीं। विलायत लौटने के लिये इनके पास रुपया नहीं था, और वहां जाकर ये करती भी क्या? इन्हें यह सूझा, कि क्यों न अपना एक प्राइवेट स्कूल खोल लिया जाय। रामनगर में इन्होंने एक सुन्दर बंगला किराये पर ले लिया, और अपनी एक मित्र मिस विलियम के सहयोग से इंगलिश प्रेपरेटरी स्कूल की स्थापना कर ली। एक अत्यन्त सुन्दर 'प्रोस्पेक्टस' छपवा लिया गया, और अंग्रेजी अखबारों में स्कूल का विज्ञापन भेज दिया गया। कानपुर की मिलों में इन्जीनियर के पद पर अनेक यूरोपियन लोग अब भी विद्यमान थे। उत्तर-प्रदेश और बिहार की चीनी-मिलें प्रायः देहातों में स्थित

हैं, उनके यूरोपियन इन्जीनियरों और केमिस्टों को अपने बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करने में बहुत कठिनाई रहती थी। मिसेज ग्रान्ट ने अपने स्कूल के प्राम्पेक्टस में यह बात स्पष्ट रूप से लिख दी थी, कि यह स्कूल विशेष-रूप से यूरोपियन बच्चों के लिये है, और इसमें केवल उच्च श्रेणी के भारतीय बच्चे ही प्रविष्ट किये जावेंगे और उनकी संख्या भी दस फी सदी से अधिक न होगी। यूरोपियनों के लिये इससे अधिक आकर्षण की बात और क्या हो सकती थी? बारह यूरोपियन बच्चे इंगलिश प्रेपरेन्टी स्कूल में भरती हो चुके थे। राजा साहब को यह स्कूल बहुत पसन्द आया। वहां की सफाई, सुघराई और बच्चों की 'स्मार्टनेस' देखकर वे खुश हो गये। मिसेज ग्रान्ट को उच्च श्रेणी के होटल की हाउसकीपरी का अच्छा अनुभव था। इस स्कूल में उनका यह अनुभव काम आ रहा था। राजा साहब ने अपने दोनों कुमारों और कुमारी को उसमें प्रविष्ट करा दिया। स्कूल की फीस २०० रु० मासिक थी। शुरू में फर्निचर, ड्रेस आदि के लिये ५०० रु० प्रति विद्यार्थी देना होता था। तीन बच्चों के लिये १५०० रु० प्रवेश फीस और ६०० रु० एक मास की अग्रिम फीस लेकर राजा साहब के बच्चों को स्कूल में प्रविष्ट कर लिया गया।

त्रिपुरी रियासत के राजा साहब होटल मोडर्न में आकर उतरे हैं, यह बात सारे रामनगर में सूखे जंगल में आग के समान फैल गई। सौदागरों को ऐसे अवसर कम मिलते हैं। पहाड़ी नगरों के सौदागर ऐसे अवसरों की ही प्रतीक्षा में रहते है। होटल मोडर्न के समीप ही पण्डित पुष्कर-नाथ किचलू की दूकान थी। पण्डितजी काश्मीरी थे, और काश्मीरी माल बेचते थे। उनका काम फेरी करके माल को बेचना था। दूकान तो नाम को थी, जो उनके निवास के भी काम आती थी। अपनी दूकान का नाम उन्होंने 'काश्मीर एम्पोरियम' रखा हुआ था। सुबह होते ही पण्डित किचलू एक कुली की पीठ पर अपनी भारी गठरी रखवाकर होटल मोडर्न आ पहुंचे। झुककर उन्होंने मुझे सलाम किया। उन्हें मालूम हो चुका था, कि

राजा साहब और रानी साहिबा से मेरा अच्छा परिचय है। वे चाहते थे, कि मैं रानी साहिबा से उनकी मुलाकात करा दूं। मैंने बेयरे के हाथ 'काश्मीर एम्पोरियम' का सुन्दर छपा हुआ कार्ड रानी साहिबा के पास भेज दिया। उस दिन राजा और रानी बहुत प्रसन्न थे। उनके बच्चे एक असली यूरोपियन स्कूल में दाखिल हो चुके थे, और उन्हें अब पूरा विश्वास था, कि कुमारी और कुमार उपयुक्त शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। पण्डितजी को तुरन्त बुला लिया गया और उन्होंने गठरी खोलकर बड़ी तहजीब से अपना माल दिखाना शुरू किया। सरकार, यह धुस्सा असली पशमीने का है। काश्मीर में आजकल पशमीने का भाव १०० रु० पौण्ड है, यह धुस्सा वहां ५०० रु० से कम में नहीं मिल सकता। मुझे तो जल्दी अपना माल बेचकर घर लौटना है, घर से खबर आई है, कि मेरी पत्नी बीमार है। काश्मीर में इन दिनों गड़बड़ चल रही है। न जाने रास्ते में कितना खर्च हो जाय। हजूर को यह धुस्सा ४००रु० में दे दूंगा। यह रेशम असली काश्मीरी है, दाम तो इसका २५ रु० गज है। पर सरकार की खिदमत में २० रु० गज पर हाजिर है। हजूर, यह लकड़ी का काम देखिये। चिनार के पत्ते की शकल पर क्या खूबसूरत तश्तरी बनाई है। दो घण्टे तक पण्डित पुष्करनाथ अपना माल दिखाते रहे। पण्डितजी पांच फीट कद के दुबले-पतले आदमी थे। उनकी वाणी में शहद घुला हुआ था। रानी साहिबा उनकी बातचीत से बहुत प्रसन्न हुईं। जब वे लौटकर दफ्तर आये, तो उनके हाथ में २१२५ रु० का चैक था। पण्डितजी ने मुझे धन्यवाद दिया। अपनी खुशी के आवेश को रोक सकने में असमर्थ होकर उन्होंने स्वयं ही मुझे बता दिया, कि आज सुबह किसी भाग्यवान् का मुंह देखकर उठा था, पूरे एक हजार रुपये मुनाफा कमाया है।

राजा साहब को कुत्तों का बहुत शौक था। पहाड़ी नगर कुत्तों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। अनेक मेम साहब वहां कुत्तों को पालने तथा उनको बेचने का ही धन्धा करती हैं। [illegible] तों के लिये भारत के

मैदानों की गरम आबोहवा अनुकूल नहीं पड़ती, अतः पहाड़ों पर उनका रोजगार अच्छी आमदनी देता है। राजा साहब ने एक दिन मुझे कहा, क्या यहां किसी के पास गोल्डन रिट्रीवर नसल के कुत्ते मिल सकेंगे ? मैंने मालूम करके पता देने का वचन दिया। उन दिनों होटल का तो कोई विशेष काम था नहीं, राजा साहब और उनके परिवार के अतिरिक्त अन्य कोई मेहमान होटल में नहीं था। इस दशा में राजा साहब को हर प्रकार से खुश रखना आवश्यक था। मैंने अपने एक भंगी को भेजकर सब जगह मालूम किया, कि कहीं गोल्डन रिट्रीवर कुत्ते मिल सकेंगे। इस नसल के कुत्ते बड़े कीमती व दुर्लभ होते हैं। बहादुरी और भयंकरता में वे अल्सेशियन कुत्तों का मुकाबला करते हैं, पर अपने मालिक के लिये वे अत्यन्त नम्र और विलीन होते हैं। छोटे से छोटा बच्चा भी उनके साथ खेल सकता है। अन्य रंगों के इस नसल के कुत्ते तो सुगमता से मिल जाते हैं, पर असली सुनहरे रंग के कुत्ते वस्तुतः दुर्लभ होते हैं। खोज करने पर मालूम हुआ, कि एक स्विस महिला के पास इस जाति के दो कुत्ते हैं, जिनकी आयु केवल एक साल की है। ये स्विस महिला एक भारतीय सज्जन से विवाहित थीं, जिनका नाम श्रीरमेशकुमार वर्मा था। मि० वर्मा दिल्ली के एक सरकारी दफ्तर में किसी उच्च पर पद काम करते थे, और मिसेज वर्मा दिल्ली की गर्मी से बचने के लिये रामनगर रहती थीं। उनसे कई बार मेरी मुलाकात भी हो चुकी थी। मैंने मिसेज वर्मा से कहा—राजा साहब इन कुत्तों की अच्छी कीमत दे देंगे। वे १५०० रु० में दोनों कुत्तों को बेचने के लिये तैयार हो गईं। मैंने उनसे अनुरोध किया, कि राजा साहब की हैसियत और उनसे प्राप्त होनेवाली कीमत को निगाह में रखकर वे खुद कुत्तों को अपने साथ होटल मोडर्न में ले आवें। वे इसके लिये तैयार हो गईं। मैंने राजा साहब से कह दिया, कि मिसेज वर्मा स्वयं अपने कुत्तों को लेकर अगले दिन सुबह होटल आवेंगी। पर कुत्ते बेचना मिसेज वर्मा का पेशा तो था नहीं। खुद आने में उन्हें संकोच हुआ। यूरोपियन रक्त की मर्यादा को वे सुगमता से

नहीं भुला सकती थीं। उन्होंने अपने जमादार को कुत्ते लेकर होटल भेज दिया। राजा साहब ने कुत्तों को पसन्द किया। पर यदि एक यूरोपियन महिला उन्हें लेकर आती, तो उनकी कीमत दूसरी होती। अब एक जमादार उन्हें लेकर आया था, फटे और मैले कपड़े पहने हुए। अब उनकी कीमत १५०० रु० नहीं हो सकती थी। ठीक भी है, आप बाजार के पहाड़ी रेस्तोरां में चाय पीते हैं। दो आना प्याला देते हैं। वही चाय जब होटल मॉडर्न में पीते हैं, तो दो प्याले चाय की कीमत बारह आना देते हैं। स्थान और बेचनेवाले के भेद से वस्तु की कीमत भी बदल जाती है। राजा साहब ने प्रश्न किया—इन कुत्तों को कौन पालता है? जमादार ने विनय के साथ उत्तर दिया—सरकार, आपका गुलाम। बेचारे कुत्तों का पानी उतर गया। यदि एक स्विस महिला उन्हें स्वयं लेकर आतीं, राजा साहब से कहतीं—उन्होंने स्वयं उनका पालन किया है, खुद उन्हें ट्रेन किया है, तो निःसन्देह उनकी कीमत १५०० रु० थी। पर अब? राजा साहब की निगाह में उनकी कोई भी कीमत नहीं थी। बेचारा जमादार कुत्तों को वापस लौटा ले गया, सौदा नहीं पट सका।

राजा साहब आठ दिन होटल मॉडर्न में रहे। एक दर्जन से अधिक स्काच ह्विस्की की बोतलें खाली हो गईं। मेरे बाबू ने खूब डटकर बिल बनाया। बारह रुपया प्रति व्यक्ति प्रति दिन का रेट लगाया गया। ह्विस्की का बिल ४।) प्रति पेग के हिसाब से बनाया गया। नौकरों के निवास का (भोजन के बिना) आठ आना प्रति नौकर प्रति दिन चार्ज किया गया। बड़े होटल नौकरों को खाना नहीं देते। खानसामा लोग नौकरों का खाना पकाने में अपना अपमान समझते हैं। उनका शिल्प साहब लोगों के लिये है, नौकरों के लिये नहीं। साहब लोगों के नौकर बाजार जाकर खाना खाते हैं। वहां की हिन्दुस्तानी दूकानें उनके लिये भोजन तैयार करती हैं। बिल राजा साहब की सेवा में भेज दिया गया। राजा साहब खुद रुपया नहीं छूते। सेक्रेटरी ऑफिस में आकर बिल की रकम अदा कर गया।

जब राजा साहब होटल से बिदा होने लगे, तो बेयरों और जमादारों ने उन्हें सलाम किया। सेक्रेटरी ने दस-दस के पांच नोट हेड बेयरे के हाथ में थमा दिये। इस रकम को नौकरों ने अपने वेतन के अनुपात से बांट लिया।

अब होटल मॉडर्न के पट खुल चुके थे। रामनगर के स्कूलों में बच्चों का दाखला मार्च के महीने में होता है। उच्च श्रेणि के भारतीय अपने बच्चों को यूरोपियन स्कूलों में प्रविष्ट कराने के लिये दूर-दूर से रामनगर आ रहे थे। इनमें से कुछ होटल मॉडर्न में भी आकर ठहरे। इनमें एक मि० इन्जीनियर थे। ये पारसी थे और बम्बई के निवासी। बम्बई में ये शराब की दूकान करते थे और बड़े समृद्ध व्यापारी थे। ये हर साल मार्च में रामनगर आते थे और अपने बच्चों को कन्वेन्ट आफ सेक्रेड हार्ट में दाखिल कराके बम्बई लौट जाते थे। ये सदा होटल मोडर्न में ठहरते थे। अब भी ये होटल मॉडर्न में आये, पर यह जानकर उन्हें घोर निराशा हुई, कि अब यह होटल एक हिन्दुस्तानी के हाथ में है। होटल वही था, उसके कमरे फर्निचर आदि सब वही थे। उसकी मैनेजर भी एक इंगलिश महिला थी। पर मि० इन्जीनियर को अब सर्वत्र गन्दगी नजर आती थी। वे कहते थे, कमरे बिलकुल मैले है, फर्निचर खराब है, भोजन ठीक नहीं है। मैं हैरान था, होटल मॉडर्न में क्या अन्तर आ गया है? पुराना यूरोपियन मालिक जिस ढंग से होटल को छोड़ गया था, वह अब भी ठीक वैसा ही था। जिस कमरे में मि० इन्जीनियर ठहरे थे, उसमें अन्य कोई हिन्दुस्तानी पहले नहीं ठहरा था। फिर वह एकदम इतना गन्दा कैसे हो गया? मैंने अपने हेड खानसामा द सूजा को बुलाकर पूछा—क्या भोजन ठीक नहीं बना था? द सूजा बम्बई के ताज होटल में भी काम कर चुका था, न्यू देहली के इम्पीरियल होटल का तो वह हेड खानसामा रह चुका था। उसने मुझे बताया—भोजन बिलकुल ठीक बना है, और साहब लोगों के सर्वथा अनुरूप है। पर मि० इन्जीनियर की आंखों में यह बात कांटे की तरह चुभ रही थी, कि वे एक ऐसे होटल

में ठहरे हुए हैं, जिसका मालिक हिन्दुस्तानी है। इसीलिये उन्हें वहां की सब चीजें मैली और गन्दी दिखाई देती थीं। चार दिन होटल मॉडर्न में ठहरकर मि० इन्जीनियर बम्बई वापस लौट गये, और मेरे दिल में यह विचार घूमने लगा, कि हिन्दुस्तानी अपने देशभाई को ही कितना हीन समझता है। भारत स्वतन्त्र हो चुका है, पर भारतीयों में गुलामी की भावना अभी नष्ट नहीं हुई। यूरोपियन उच्च हैं, और भारतीय हीन—यह भावना हमारे देशवासियों में इतना घर कर गई है, कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद भी वह नष्ट नहीं हो सकी।

यूरोपियन स्कूलों में बच्चे दाखिल कराने के लिये जो सज्जन इस समय रामनगर आये, उनमें से एक श्रीकिशोरीरमण गर्ग भी थे। मेरठ जिले की एक सुप्रसिद्ध मण्डी में उनकी आढ़त की बड़ी दूकान थी। लड़ाई के दिनों में सट्टे द्वारा उन्होंने अच्छी मोटी रकम पैदा कर ली थी। अब उन्हें भी यह धुन सवार थी, कि अपने दो बच्चों को किसी यूरोपियन स्कूल में दाखिल कराके उन्हें साहब बना दिया जाय। वे पतलून के साथ बन्द गले का कोट और सिर पर गांधी-टोपी पहनते थे। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति का यह सुन्दर मिश्रण था। भारत के समृद्ध व्यापारी प्रायः इसी ढंग की पोशाक पहनते हैं। वे अपनी पत्नी, एक मुनीम और दो बच्चों के साथ रामनगर आये थे। रुपया उनकी जेब से उछला पड़ता था। मोटर टर्मिनस पर आकर उन्होंने कुलियों से पूछा, यहां का सबसे बढ़िया होटल कौन-सा है? कुलियों ने होटल मॉडर्न बताया। श्रीगर्ग रिक्शाओं पर सामान लदवा और स्वयं अलग रिक्शा पर बैठकर होटल मॉडर्न पधार गये। रुपये की कमी न थी, पर अपनी आदत से लाचार थे। आफिस आकर उन्होंने भाव-ताव शुरू किया। उन्हें क्या मालूम था, कि आधुनिक ढंग के बड़े होटलों में रेट के लिये मोल-भाव करना सभ्यता के विरुद्ध है। बाबू ने उन्हें टेरिफ कार्ड दे दिया। पर इससे वे कब सन्तुष्ट होनेवाले थे। बोले—भाई, इस कार्ड को रहने दो, हमें बताओ क्या रेट होगा? उन्हें बारह रुपया प्रति व्यक्ति का

रेट बता दिया गया। वे बोले—राम-राम, बारह रुपया रोज, यह तो बहुत है। हम तो दाल-रोटी खानेवाले हैं, तीन रुपये रोज से ज्यादा क्या खावेंगे? भाई, हमसे तो कमरे का रेट तय कर लो, जो कुछ भोजन खावेंगे, उसका पैसा अलग से दे देंगे। होटल मॉडर्न के लिये इससे बढ़कर कुफ्र क्या हो सकता था? पर मैं तो किसी भी मेहमान को ठहराने से इनकार नहीं कर सकता था। दस हजार की जगह इकतीस हजार किराया देने का इकरार मैं कर चुका था। यदि इस ढंग से घर आई हुई लक्ष्मी को ठुकराने लगता, तो किराये की रकम कैसे पूरी करता? सारा होटल खाली पड़ा था, यूरोपियन मैनेजर की चढ़ी हुई भ्रुकुटि की परवा न कर मैंने सेठजी के साथ दस रुपये प्रतिदिन पर दो कमरे तय कर लिये। सेठजी को समझा दिया गया, कि इस किराये में कमरे के अतिरिक्त कोई चीज शामिल नहीं होगी। गुसल का पानी, चाय, भोजन जो कुछ वे लेंगे, सबका दाम अलग देना होगा। सेठजी दो दिन होटल में रहे। सेन्ट फ्रांसिस स्कूल में उन्होंने अपने बच्चों को दाखिल करा दिया। जब वे चलने लगे, तो बाबजी ने बिल उनके सम्मुख पेश किया। किराये के केवल बीस रुपये थे, पर चाय, भोजन, गुसल आदि का खर्च अस्सी रुपये के लगभग पड़ गया था, वह भी केवल तीन प्राणियों के लिये। गरम पानी की एक बाल्टी का दाम आठ आने, चाय बारह आने, दाल की प्लेट छः आने, सब्जी आठ आने, चावल बारह आने और पुडिंग एक रुपया—इस हिसाब से जब बिल सेठजी के सम्मुख पेश किया गया, तो वे आश्चर्यचकित रह गये। कहने लगे—भाई, हमारे शहर में तो चाय का प्याला छः पैसे में मिलता है, दाल-रोटी, चावल, सब्जी के बारह आने लगते हैं। उन्हें समझाया गया, यह होटल मोडर्न है, यहां सर्विस की कीमत है, माल की नहीं। अगर आपको बारह आने में पूरा भोजन करना था, तो बाजार में जाकर लकड़ी की नंगी मेज और लोहे की कुर्सी पर बैठना चाहिये था। यहां का तो यही रेट है। सेठजी हिसाब में बड़े कुशल थे। तुरन्त बोले—भाई, यह तो सोलह रुपये रोज का रेट पड़ गया। पर अब क्या हो सकता

था, सेठजी ने मन मारकर बिल की रकम अदा की और होटल मॉडर्न को कोसते हुए विदा हुए। मैंने भी सोचा, सेठजी अपने बच्चों को सौ फी सदी अंग्रेज बनाना चाहते हैं, उनकी फीस १५० रु० मासिक खुशी से देंगे। अपने शहर में तो वे आठ आने मासिक फीस देकर बच्चों को स्कूल में भरती करा सकते थे। जब आधुनिकता का भूत उनके सिर पर सवार है, तो खुद भी तो आधुनिकता के खर्च उठाने को तैयार होना चाहिये।

इसी समय एक अन्य सज्जन होटल मॉडर्न में ठहरने के लिये आये। ये अंग्रेज थे, और होटल के रजिस्टर में इन्होंने अपना नाम कैप्टिन कुक लिखा था। बड़े हंसमुख और जिन्दादिल आदमी थे। दिन-रात शराब के नशे में धुत रहते। भोजन की तारीफ करते-करते इनका मुंह नहीं थकता था। कहते—बम्बई, दिल्ली सब जगह बड़े से बड़े होटलों में ठहर चुका हूं, पर इतना अच्छा भोजन कहीं नहीं मिला। लड़ाई के दौरान में सन् १९४४ में भारत आया था। घर छोड़े चार साल हो गये, अब असली अंग्रेजी खाना खाया है। कैप्टिन कुक की बातें सुनकर मैं अपने होटल की सफलता पर अभिमान अनुभव करता था, और सोचता था कि मि० इन्जीनियर जैसे हिन्दुस्तानी चाहे मेरे प्रबन्ध के विषय में कुछ कहें, पर कैप्टिन कुक तो असली अंग्रेज है। जब वह मेरे प्रबन्ध और भोजन की इतनी प्रशंसा करता है, तो मुझे मि० इन्जीनियर जैसे बिगड़े हुए लोगों की क्या परवा है। कैप्टिन कुक दस दिन होटल मॉडर्न में ठहरे। घण्टों आफिस में आकर बैठते, होटल की यूरोपियन मैनेजर और हाउसकीपर से दिल खोलकर हंसी-मजाक करते। बाबू को भी वे मि० राम कहकर बुलाते। बेयरे जमादार सब उनके व्यवहार से प्रसन्न थे। चलते समय उन्होंने बिल मांगा, और तुरन्त एक चेक इम्पीरियल बैंक कलकत्ता का काट दिया। बेयरे के हाथ में दस रुपये का नोट रखा, नौकरों ने उन्हें झुककर 'सलाम हजूर' किया। हम सब खुश थे, कि एक असली साहब लोग भी होटल में आकर ठहरा है। अगले दिन चेक को बैंक में भेज दिया गया, पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना

नहीं रहा, जब आठ दिन बाद चेक बैंक से वापस लौट आया। इम्पीरियल बैंक, कलकत्ता की एक स्लिप साथ थी, जिसमें लिखा था, 'चेक काटने-वाले का कोई हिसाब बैंक में नहीं है।' उसी दिन सायंकाल रामनगर के शराब के सबसे बड़े व्यापारी जनाब रहमत खां भी मेरे आफिस में आ उपस्थित हुए। उनका चेहरा उतरा हुआ था। मैंने पूछा—खैर तो है ? उन्होंने एक चेक मेरे सामने रख दिया, जो कैप्टिन कुक का था। मेरे चेक की तरह श्री रहमत खां का चेक भी इम्पीरियल बैंक कलकत्ता ने वापस कर दिया था। रहमत खां साहब ने बताया, कैप्टिन कुक ने उनसे स्काच ह्विस्की की छः बोतलें खरीदी थीं। उनकी कीमत १२० रु० होती थी। उन्होंने कहा—होटलवालों का भी बिल देना है, १३० रु० के करीब होगा। उनके नाम अलग चेक क्या काटूंगा, आप १३० रु० दे दें, मैं आपको २५० रु० का चेक दिये देता हूं। महायुद्ध के जमाने में रहमत खां साहब ने कितने ही यूरोपियन अफसरों को हजारों-लाखों रुपये की शराब बेची थी। अंग्रेजों की ईमानदारी के वे कायल थे। अफसर लोग हजारों की शराब खरीद डालते थे और उसकी कीमत चेक से अदा कर देते थे। कैप्टिन कुक भी वैसे ही फौजी अफसर थे, उतने ही हंसमुख, उतने ही जिन्दादिल, असली अंग्रेज। श्रीरहमत खां ने दोहरी चपत खाई थी, छः बोतल ह्विस्की के दाम डूब गये थे, और साथ ही १३० रुपये नकद भी। वे मुझसे कैप्टिन कुक का पता पूछते थे, क्योंकि होटल-रजिस्टर में सब यात्री अपना पूरा पता लिखते हैं। मैंने उन्हें रजिस्टर दिखा दिया। उसमें पता लिखा था, मार्फत इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया, कलकत्ता। मैंने रहमत खां साहब को बताया कि मेरा १५० रु० का चेक भी वापस आ गया है। यह सुनकर श्री रहमत खां ने अपना सिर धुन लिया। कैप्टिन कुक ने नकली पता लिखा था। उसी पते पर अब रहमत खां साहब ने नोटिस भेजा, पर नोटिस भी वापस आ गया। कैप्टिन कुक ने मुझे व रहमत खां साहब को खूब चूना लगाया था। पर अब हो ही क्या सकता था ?

( ६ )

# प्रतीक्षा के दिन

मार्च के महीने में होटल मॉडर्न में अच्छी-खासी रौनक हो गई थी। यूरोपियन स्कूलों में बच्चे दाखिल कराने के लिये जो लोग आये थे, उनके कारण कुछ दिनों के लिये ऐसा प्रतीत होने लगा था, कि अब सीजन शुरू हो गया है। पर चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात। एप्रिल के शुरू में होटल मोडर्न फिर खाली हो गया। अब अंग्रेजी राज का युग तो था नहीं, जब इस देश में शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिये लाखों अंग्रेज अफसर और सैनिक इस देश में रहते थे। भगवान् की तरफ से इस 'असभ्य' और 'पिछड़े हुए' देश को 'सभ्य और उन्नत' बनाने का जो काम श्वेतांग प्रभुओं के सुपुर्द था, उसके लिये अंग्रेज मर्द तो गर्मी का कष्ट खुशी-खुशी उठाते थे, क्योंकि कर्तव्य के सम्मुख कष्ट की परवा करना कायरता होती है। पर मेम साहब लोग और बाबा लोग (अंग्रेजों के बच्चे हिन्दुस्तानी भाषा में बाबा लोग कहाते हैं) गर्मी शुरू होते ही दार्जिलिंग, शिमला, मसूरी, नैनीताल, रामनगर आदि पहाड़ी नगरों के लिये चल पड़ते थे, और कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, लखनऊ आदि की रौनक सात-आठ महीनों के लिये पहाड़ों में आ जाती थी। रामनगर के होटल भी मेम साहबों और बाबा लोगों से भर जाते थे। पर अब जमाना बदल चुका था। हिन्दुस्तानी अफसरों को वेतन तो प्रायः वही मिलते हैं, जो अंग्रेजों को मिलते थे। उनकी मेम लोग भी रहन-सहन और फैशन में अंग्रेज महिलाओं से दस कदम आगे रहने की कोशिश करती हैं, खास तौर पर सैनिक अफसरों की मेम साहब। भारत की नई राष्ट्रीय सेना इंगलिश सेना की सच्चे अर्थों में शागिर्द है। अंग्रेज सैनिक अफसर शराब पीते थे, क्लबों में डान्स करते थे। फिर हिन्दुस्तानी सैनिक अफसर शराब क्यों न पीवें, क्लबों में क्यों न डान्स करें? उनकी देवियां अंग्रेज मेम साहबों से क्यों पीछे रहें? पर हिन्दुस्तानी अफसरों

को अपनी लड़कियों के विवाह में तो खर्च करना ही है, बिना दहेज के वे अपनी लड़कियों का विवाह कैसे कर सकते हैं ? अंग्रेजी संस्कृति के बाह्य कलेवर को हमारे अफसरों ने अपना लिया है, पर सदियों के संस्कार और व्यवहार को वे एकदम कैसे छोड़ सकते हैं ? यही कारण है, कि हिन्दुस्तानी सैनिक अफसर अपने परिवारों को पहाड़ों पर भेजने का खर्च बर्दास्त नहीं कर सकते। एप्रिल शुरू हो जाने पर भी पहाड़ी नगर खाली पड़े थे। रामनगर का होटल मॉडर्न ऐसा प्रतीत होता था, मानो भूतों का डेरा हो। होटल की मैनेजर, हाउसकीपर, खानसामे, बटलर, बेयरे सब खाली बैठे थे। इनके वेतन का खर्च मेरे सिर पर था। मैं होटल के विशाल द्वार की ओर इस प्रकार टकटकी लगाये बैठा रहता था, जैसे चातक स्वाती नक्षत्र की एक बूंद के लिये आकाश की ओर टकटकी लगाये बैठा रहता है। वर्षा की एक बूंद उसके गले में पड़कर मोती बन जाती है। कोई नया यात्री मेरे होटल के द्वार में भी प्रवेश कर जाय, तो मेरा भी उद्धार हो। आखिर, मेरी तपस्या भी फल लाई। सात दिन की निरन्तर प्रतीक्षा के बाद कुछ यात्री होटल मॉडर्न में भी पधार गये। ये सज्जन फौज के आफिसर थे, और अपनी नवविवाहिता पत्नियों के साथ हनीमून मनाने के लिये रामनगर आये थे। तीनों परिवारों के लिये होटल मॉडर्न के तीन बढ़िया सूट खोल दिये गये, और होटल का काम फिर शुरू हो गया। मैं और मेरे स्टाफ के सब आदमी इस बात के लिये उत्सुक थे, कि इन मेहमानों को अधिक से अधिक आराम दिया जाय। उनके लिये अच्छे से अच्छा भोजन बनता था, बेयरे लोग खिदमत के लिये दबे पांव कमरों के बाहर फिरते रहते थे। पर इन आफिसर दम्पतियों को तो अपने आप से ही फुरसत नहीं थी। दिन के दस बजे वे सोकर उठते, छोटी हाजरी की चाय कमरे से बाहर बेयरों की ट्रे में ठण्डी हो जाती। बड़ी हाजरी ये लोग ग्यारह बजे खाते, और दोपहर का लंच भी अपने कमरों में ही मंगवा लेते। नवविवाहित पति-पत्नी की अपनी ही दुनिया होती है, एकदम अन्तरंग। बहिरंग संसार से उनका कोई

सम्पर्क नहीं होता। शाम की चाय पीकर वे बाहर निकलते, अफसर लोग ठीक सैनिक वेश में और उनकी पत्नियां आधुनिक शृंगार करके। पर्म कराये हुए केश, पाउडर और रूज से पुते हुए चेहरे, लिपस्टिक से लाल किये हुए होंठ, नंगी बांहों के महीन जम्पर और ऊंची एड़ी के जूते। एकदम महीन साड़ी में उनकी शरीर-यष्टि की एक-एक रेखा स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। एप्रिल में रामनगर में अच्छी ठण्ड थी, पर इन युवतियों को शीत का जरा भी अनुभव नहीं होता था। घण्टे भर बाद ये लोग होटल लौट आते, और फिर अपने कमरों में बन्द हो जाते। डिनर इनके कमरों में ही सर्व किया जाता। दस दिन तक ये लोग होटल में रहे, न कभी ये दफ्तर में आये, न कभी किसी से मिले। चलते समय अपने कमरों में ही इन्होंने बिल मंगा लिये और बेयरा के हाथ में बिल की रकम रखकर चुपचाप बिदा हो गये।

इन्हीं दिनों एक और दम्पती होटल मॉडर्न में ठहरने के लिये आया। ये सज्जन बंगाली थे, और इण्डियन सिविल सर्विस में सुदीर्घ समय तक रहकर अब रिटायर्ड हो चुके थे। इन्होंने अपना जीवन अडीशनल मजिस्ट्रेट के रूप में शुरू किया था। उन्नति करते-करते ये कलेक्टर, कमिश्नर, रेवेन्यू बोर्ड के मेम्बर और फिर हाई कोर्ट के जज हो गये थे। नाम इनका श्रीकमलकान्त दे था। छोटे कद के पतले सुकड़े व्यक्ति थे, पर पूरे अंग्रेजी रंग में रंगे हुए। इन्हें इस बात का अवश्य खेद होगा, कि रंग इनका एकदम काला था। इन्होंने मुझसे कहा, रहने के लिये हमें दो कमरे चाहियें। यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। पर इनकी आवश्यकताओं का फैसला करनेवाला मैं तो नहीं था। इन्हें दो अलग-अलग कमरे निवास के लिये दे दिये गये। मिस्टर और मिसेज दे दो पृथक् कमरों में रहने लगे। मैंने उन्हें बहुत कम एक साथ देखा। ये घूमने भी साथ-साथ नहीं जाते थे, भोजन के लिये भी पृथक् टेबलों पर बैठते थे। नवविवाहित सैनिक अफसर भी अपनी पत्नियों के साथ इन्हीं दिनों होटल में ठहरे हुए थे। दोनों का अन्तर कितना

स्पष्ट था। सैनिक दम्पती जीवन के उषा काल में थे, जब कि सर्वत्र रोशनी, उल्लास और उमंग होती है। दे-दम्पती जीवन की सन्ध्या में पहुंच चुके थे, एकदम श्रान्त। कालरात्रि का घोर तिमिर उनके सम्मुख था। अब उन्हें अपने दाम्पत्य जीवन में न कोई उमंग अनुभव होती थी, और न कोई उल्लास। मैं सोचता था, क्या कभी इन युवक सैनिक अफसरों की भी यही दशा न हो जायगी ?

मिस्टर दे उस युग में इण्डियन सिविल सर्विस में प्रविष्ट हुए थे, जब कि इस लोकोत्तर सर्विस में भारतीयों की संख्या दस फी सदी भी नहीं थी। इनकी शिक्षा केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में हुई थी, और विलायत रहकर ही इन्होंने सिविल सर्विस की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। बंगला का इन्हें बहुत साधारण ज्ञान था। हिन्दी पढ़ना या बोलना तो इन्हें अपमान की बात प्रतीत होती थी। अपने नौकर से ये हिन्दुस्तानी में बात करने के लिये विवश थे, पर ठीक उस ढंग से बोलते थे, जैसे अंग्रेज लोग अपने नौकरों से बोलते हैं। 'हम नहीं जाने साकटा, हम बोलटा, हम हाजरी खाना नहीं मांगटा' ये मिस्टर दे की हिन्दुस्तानी के नमूने हैं। भारत में स्वराज्य स्थापित हो जाने से जो नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी, मिस्टर दे उससे कुछ परेशानी-सी अनुभव करते थे। बीसों साल की सर्विस में उन्होंने यह बात स्वयंसिद्ध समझ रखी थी, कि भारत पर अंग्रेजों का शासन एक ईश्वरी विधान है, और इस देश का हित इसी बात में है, कि वह अंग्रेजी सभ्यता और यूरोपियन संस्कृति को पूर्ण रूप से अपना ले। ब्रिटिश साम्राज्य में उसकी वही स्थिति रहे, जो कनाडा व आस्ट्रेलिया जैसे उपनिवेशों की है। मिस्टर दे इंगलैण्ड को 'होम' कहते थे, और हिन्दुस्तानियों को 'नेटिव'। उनकी एकमात्र आकांक्षा यह थी, कि उनके परिवार की शुमार भी एंग्लो-इण्डियन लोगों में होने लगे। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह एक यूरोपियन के साथ किया था, जिसके आसाम में चाय के अनेक बगीचे थे। मैं मिस दे (मिसेज डेवनपोर्ट) से भी परिचित हूं। उनका रंग साफ था,

वे अंग्रेजी लिबास में रहती थीं और अपने पति के कन्धे पर सहारा देकर चलती थीं। उनकी सन्तान देखने-भालने में यूरोपियन प्रतीत होती थी, और मिस्टर दे यह देखकर सन्तोष अनुभव कर सकते थे, कि कुछ सन्ततियों के बाद उनके वंशज भारतीय न रहकर यूरोपियन बन जायंगे। पर मैं यहां यह भी लिख दूं, कि वृद्धावस्था में मिस्टर दे के भारतीय संस्कार कुछ-कुछ जागृत होने लगे थे। श्रीमती एनी बीसेन्ट ने गीता का जो अंग्रेजी अनुवाद किया था, उसकी एक प्रति उनके पास मौजूद थी। वे कभी-कभी गीता के निष्काम कर्म के सिद्धान्त पर मुझसे विचार-विनिमय किया करते थे। वे मुझे बताते थे, कि इसी ढंग के विचार प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों और आधुनिक युग के जर्मन विचारकों के ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। मुझे मिस्टर दे की बातों में कोई रस नहीं आता था। भारतीय दर्शन से मुझे बहुत प्रेम है। संस्कृत का भी मुझे अच्छा ज्ञान है। गीता का मैंने भलीभांति अनुशीलन किया है। पर मिस्टर दे की बातचीत बहुत थकानेवाली हुआ करती थी। वृद्धावस्था में मनुष्य कुछ झक्की-सा हो जाता है। शायद इसीलिये भारत के प्राचीन ऋषियों ने यह व्यवस्था की थी, कि बुढ़ापे में मनुष्य घर-गृहस्थी का परित्याग कर शहरों से दूर जंगल में आश्रम बनाकर रहने लगें। वहां सभी वानप्रस्थी लोग एक साथ रहें। क्या अच्छा होता, यदि मिस्टर दे भी इसी प्रकार के किसी आरण्यक आश्रम में निवास करते। वहां उन्हें अपनी आयु के अपने ही सदृश व्यक्ति मिल जाते, जिन्हें उनकी शास्त्र-चर्चा में स्वाद आता, और मैं उनकी थकानेवाली बातचीत के कष्ट से बचा रहता। पर इन दिनों होटल खाली पड़ा था। अतः यह आवश्यक था, कि मैं अपने सम्मानित मेहमान को कोई शिकायत न होने दूं।

एप्रिल के महीने में होटल में मेहमान तो बहुत कम थे, पर मई-जून में कमरे रिजर्व कराने के लिये चिट्ठियों की कमी न थी। अनेक सज्जन रामनगर के स्थानीय मित्रों व परिचितों को स्वयं कमरा देखकर रेट तय करने के लिये पत्र लिख रहे थे। इन दिनों रामनगर के कोई न कोई

सज्जन प्राय: रोज ही होटल मॉडर्न पधारते थे, और अपने किसी मित्र के लिये कमरे की बातचीत किया करते थे। स्थानीय सरकारी अफसरों की संख्या इनमें अधिक होती थी। २३ एप्रिल की बात है, सायंकाल के सात बजे के लगभग एक साहब होटल मॉडर्न पधारे। उन्होंने आफिस आने का कष्ट नहीं किया, शायद यह उनकी हैसियत के खिलाफ था। कोई पचास गज दूर खड़े होकर उन्होंने अपने शानदार नौकर को मुझे बुलाने के लिये भेजा। मैं उस समय आफिस में ही था। इकतीस हजार किरायेवाले विशाल होटल के मालिक के लिये भी यह बात सम्मानास्पद नहीं थी, कि वह किसी साहब के बुलाने पर आफिस से उठकर चला जाय। मैंने अपने हेड बेयरा चन्दनसिंह को भेज दिया। बेयरे को देखकर साहब नाराज हो गये। उन्होंने कहा—हम मैनेजर साहब से मिलना चाहते हैं। अब होटल की यूरोपियन मैनेजर मिसेज विन्सेन्ट उनसे भेंट करने के लिये गईं। पर वे उनसे भी सन्तुष्ट नहीं हुए। आखिर, मुझे स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित होना पड़ा। मैं आश्चर्य में था, कि ये कौन-से ऐसे साहब हैं, जो मुझसे ही मिलने के लिये इतने उत्सुक हैं। वे कोई अठाईस साल के नवयुवक थे, पर चेहरे पर आभा या यौवन का नाम भी न था। उन्होंने कहा—मुझे अपने एक मित्र के लिये कमरा देखना है, पूरी सीजन के लिये जगह चाहिये, भोजन के बिना रेट तय करना है। साहब को कमरे दिखा दिये गये। दो कमरों के एक बढ़िया सूट को उन्होंने पसन्द किया। रेट पूछने पर मैंने उन्हें होटल का टैरिफ कार्ड दिखा दिया। इसके अनुसार इस सूट का सीजन भर का किराया एक हजार रुपया होना था। एक हजार की रकम सुनकर साहब की भौंहें तन गईं, आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। क्रोध में बोले—आप जानते हैं, आप किससे बात कर रहे हैं? मैं सचमुच इन सज्जन से अपरिचित था। उनके अर्दली ने मुझे चुपचाप सूचित किया, ये साहब रामनगर के हाउसिंग आफिसर हैं, और कोई दस दिन हुए, यहां इस पद पर नियुक्त होकर आये हैं। अब मैं सब मामला समझ गया। हाउसिंग आफिसर

स्वयं अपने निवास के लिये जगह चाहते थे। बी० ए०, एल०-एल० बी० पास ये युवक आफिसर प्रान्तीय सिविल सर्विस में नये-नये नियुक्त हुए थे, वेतन केवल २५० रु० मासिक था। पर इन्हें यह शौक सवार हुआ था, कि रामनगर के सर्वोत्कृष्ट होटल में आराम से रहें। रेन्ट-कन्ट्रोल आर्डर के अधीन मकानों को किराये पर देना, समुचित किराये निश्चित करना, किराये-सम्बन्धी विवादों को तय करना इन्हीं के सुपुर्द था। होटल मॉडर्न की जो मेरी किरायेदारी स्वीकृत हुई थी, वह इनके पूर्ववर्ती आफिसर द्वारा हुई थी, पर अब तो मैं भी इनके अधीन था। इतने बड़े सर्वशक्तिमान् आफिसर से एक हजार रुपये किराये की मांग करना कितनी बड़ी गुस्ताखी थी। मुझे चाहिये था, इन्हें कहता—हजूर, यह होटल आपका है, जो कमरे पसन्द करें, ले लें। जो किराया चाहें, दे दें। और जब ये पूरी सीजन भर रहकर १०० या १५० रु० मुझे देते, तो उन्हें हंसकर वापस लौटा देता और कहता—अरे आप तो अपने घर के आदमी हैं, आपसे किराये का क्या सवाल? दो-तीन बार आग्रह करने के बाद किराये की रकम को ये जेब में रखकर चले जाते। मेरा यही कर्तव्य था। पर इसके विपरीत, इनसे इतनी बड़ी रकम की मांग करके मैंने सचमुच अक्षम्य अपराध किया था। पर एक उच्च सैनिक अफसर रह चुकने के कारण मुझमें भी आत्मसम्मान का सर्वथा अभाव नहीं था। अभी मेरी मनोवृत्ति साधारण बिजनेसमैन के समान नहीं बनी थी। हाउसिंग आफिसर श्री आर० के० शर्मा से मेरा सौदा नहीं पटा और वे खिज के साथ होटल मॉडर्न से बिदा हो गये। यह मेरा सौभाग्य था, कि वे देर तक रामनगर में नहीं रहे। कुछ ही महीनों बाद उनकी बदली हो गई। मुझे बाद में ज्ञात हुआ, कि वे मुझसे सख्त नाराज थे। रामनगर के एक समृद्ध लैण्डलार्ड साहू जयकृष्ण ने उन्हें निवास के लिये अपनी एक छोटी कोठी पेश कर दी थी। इसका किराया आठ सौ रुपया था। पर मैंने सुना है, कि साहू साहब ने हाउसिंग आफिसर से न कभी किराया मांगा और न उन्होंने स्वयं किराया भेजने का कष्ट किया।

इन्हीं दिनों रामनगर के हेल्थ आफिसर साहब भी मेरे यहां तशरीफ लाये। इनका नाम डा० प्राणनाथ गुप्ता था। सर्विस करते हुए इन्हें तीस साल हो चुके थे और अब ये शीघ्र रिटायर्ड होनेवाले थे। बड़े हंसमुख और दिलदार सज्जन थे। शहर की सफाई के निरीक्षण के सिलसिले में वे पहले भी कई बार होटल मोडर्न पधार चुके थे। होटल में सफाई रहे, यह देखना उन्ही का काम था। पहली मुलाकात में ही उन्होंने मुझसे मित्रता स्थापित कर ली थी। वे कहते थे, अब तक होटल मॉडर्न में सफाई का स्टैण्डर्ड बहुत ऊंचा रहा है। उसके यूरोपियन मालिकों व मैनेजरों के खिलाफ 'एक्शन' लेने की उन्हें कभी आवश्यकता नहीं हुई। अब जमाना बदल गया है, न होटल का प्रबन्ध यूरोपियन लोगों के हाथ में है, और न उसमें ठहरने-वाले ही यूरोपियन होंगे। इस दशा में सफाई का स्टैण्डर्ड वह रह ही नहीं सकता, जो पहले था। अतः वे भी कुछ नरमी से काम लेंगे, पर मुझे इस बात का ध्यान रखना चाहिये, कि होटल का स्टैण्डर्ड अधिक न गिरने पावे। उनके सहानुभूति-पूर्ण उपदेश के लिये मैं कृतज्ञ था। मैंने उन्हें आश्वासन दिया था, कि मैं होटल की सफाई व स्टैण्डर्ड को कायम रखने के लिये कोई कसर न उठा रखूंगा। पर उन्हें मेरे आश्वासन से सन्तोष नहीं था। उन्हें अभी से होटल मोडर्न में गन्दगी नजर आने लगी थी। वे होटल की किचन, पेन्ट्री, डाइनिंग हॉल आदि का निरीक्षण करके स्पष्ट-स्पष्ट कहा करते थे—अब वह बात नहीं रह गई है, जो पहले थी।

डा० गुप्ता ने मुझसे कहा, मेरे एक मित्र का पत्र आया है, जो लखीम-पुर खीरीमें सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ पुलीस हैं। उन्हें एक बढ़िया-सा सूट चाहिये। उनकी पत्नी आर्थोडोक्स हैं। अतः वे चाहते हैं, कि खाने-पकाने का पृथक् इन्तजाम रखें। साहब तो कभी-कभी होटलसे खाना ले लिया करेंगे, पर मैं उन के लिये खाने के बिना केवल निवास का रेट तय कर लूं। डा० गुप्ता ने मुझसे यह भी कहा—रामनगर में कोठियों की कोई कमी नहीं है, कहीं भी अच्छी

कोठी मुनासिब किराये पर मिल सकती है। पर उनकी इच्छा है, कि उनके मित्र होटल मॉडर्न में ही ठहरें। किराये की भारी रकम देकर यह होटल मैंने लिया है, अतः अपने मित्र को मेरे पास ठहराकर वे मेरी सहायता करना चाहते हैं। होटल मॉडर्न के कमरों से डा० गुप्ता का अच्छा परिचय था। उन्होंने कहा—यदि २५ और २६ नम्बर के कमरे उनके मित्र के लिये रिजर्व कर दिये जावें, तो उनका काम चल जायगा। इनका किराया १५० रु० मासिक पर्याप्त होगा। आखिर, उनके मित्र ने केवल जून के महीने के लिये ही तो ठहरना है। एक महीने के लिये यदि मैंने कुछ कम किराया भी ले लिया, तो कोई विशेष हर्ज नहीं होगा। मैं डा० गुप्ता को कहना चाहता था, कि २५ और २६ नम्बर के कमरे होटल मॉडर्न के सर्वोत्तम कमरे हैं। जून का महीना ही ऐसा है, जब कि पहाड़ी नगरों के होटलों में यात्री आते हैं। होटल का मालिक इसी महीने में अपने किराये को वसूल करने की आशा रख सकता है। उस एक महीने में इन दो कमरों का किराया कम से कम ८०० रु० वसूल हो सकता है। पर डा० गुप्ता रामनगर के हेल्थ आफिसर थे, मेरा उनके साथ सीधा सम्बन्ध था। मैं उन्हें नाराज कैसे कर सकता था? २५-२६ नम्बर के कमरे लखीमपुर-खीरी के सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस साहब के लिये १५० रु० मासिक पर जून के महीने के लिये रिजर्व कर दिये गये। चलते-चलते डा० गुप्ता कह गये, कि उनके मित्र १५०रु० मासिक को अधिक नहीं समझेंगे। पर आजकल अफसरों को वेतन ही क्या मिलता है, मँहगाई के इस जमाने में उनका खर्च भी मुश्किल से चलता है। अतः यदि उन्हें यह किराया कुछ अधिक मालूम हो, तो मुझे प्रसन्नता-पूर्वक कुछ कम भी स्वीकार कर लेना चाहिये। इसकी कसर वे अन्य प्रकार से पूरी करा देंगे। मैं यह स्वीकार करूंगा, कि डा० गुप्ता ने किराये की कसर को अन्य प्रकार से पूरा करने का प्रयत्न भी किया। एक दिन भंगियों की एक भारी फौज होटल मॉडर्न में आ पहुंची। पूछने पर मालूम हुआ, कि सैनिटरी इन्स्पेक्टर साहब ने इन भंगियों को भेजा है,

और उन्हें हुकुम दिया है, कि होटल के विशाल मैदान को भलीभांति झाड़-पोंछकर साफ कर दें। दिन भर भंगी अपने काम पर लगे रहे। हिसाब लगाकर मैंने देखा, भंगियों ने बारह रुपये का काम किया है। इसमें सन्देह नहीं, कि हेल्थ आफिसर साहब के मित्र से ८०० रु० के स्थान पर १५० रु० किराया लेना स्वीकार कर मैंने जो नुकसान उठाया था, उसकी इस ढंग से कुछ न कुछ क्षति-पूर्ति अवश्य हो गई थी। हां, इस फ्री सर्विस के बदले में भंगियों ने उस दिन जो चाय आदि होटल मे प्राप्त की थी, उसका जिक्र करना समुचित नहीं होगा।

रामनगर के कतिपय अन्य आफिसर भी इन्हीं दिनों होटल मॉडर्न पधारे। इन्हें भी अपने मित्रों व उच्च आफिसरों के लिये स्थान की तलाश थी। नायब तहसीलदार साहब रेवेन्यू के महकमे के एक उच्च अधिकारी के लिये कमरों की तलाश में आये थे। नायब साहब २३ साल की आयु के नवयुवक थे, और अभी नये-नये अपने पद पर नियुक्त हुए थे। इनकी शिक्षा एम० ए० तक हुई थी। डा० गुप्ता के समान न ये व्यवहार-कुशल थे, और न मृदुभाषी। होटल का इनके पद के साथ सीधा सम्बन्ध भी कोई न था। ये जिन सज्जन के लिये स्थान रिजर्व कराने आये थे, वे उत्तर-प्रदेश के रेवेन्यू-बोर्ड के सदस्य थे। नायब साहब की इच्छा थी, कि मैं सात रुपया दैनिक पर उनके लिये भोजन के साथ एक अच्छा कमरा रिजर्व कर दूं। होटल मोडर्न का साधारण रेट बारह रुपया प्रतिदिन था। रेवेन्यूबोर्ड के मेम्बर साहब एक महीना रामनगर में रहेंगे, और उन्हें कभी-कभी सरकारी काम भी करना होगा। अतः उनका प्राइवेट असिस्टेन्ट भी साथ होगा। पी० ए० साहब के लिये भी कमरा चाहिये, पर बिना भोजन के। वे तो दो रुपया रोज से अधिक न दे सकेंगे; और मेम्बर साहब को भी ऐसा कमरा चाहिये, जिसमें एक प्राइवेट सिटिंग रूम भी हो। मैंने नायब साहब को समझाया, कि ऐसे कमरे या सूट का न्यूनतम किराया १८ रु० रोज से कम नहीं हो सकता। पर वे विवश थे, उन्हें तो यह पत्र आया था, कि सिटिंगरूम के

साथ एक कमरा उन्हें सात रुपये रोज पर ढूंढ़ना है । नायब साहब की इच्छा को पूर्ण कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं था । उन्होंने मुझ पर बहुत जोर दिया । संकेत से मुझे यह भी कहा, कि राज्य के उच्च आफिसरों को प्रसन्न रखने में ही मेरा लाभ है । पर मैं भी लाचार था । नायब साहब से मेरा सौदा नहीं पट सका । खिन्न और क्रुद्ध होकर वे होटल मोडर्न से बिदा हुए ।

मुझे नहीं मालूम, कि होटल मॉडर्न के पुराने यूरोपियन मालिकों से भी क्या इसी ढंग से रामनगर के स्थानीय आफिसर रियायत की आशा रखते थे ? पर १९४७ के १५ अगस्त तक भारत में अंग्रेजी राज था । अंग्रेज विदेशी थे और उनके भारतीय कर्मचारी भी एक विदेशी सरकार की नौकरशाही के अंग थे । उस समय सरकार व उसके अफसरों के अनुचित कार्यों की आलोचना करना, उनके विरुद्ध आवाज उठाना देश-भक्ति की बात थी । पर अब १९४८ ईस्वी में भारत में स्वराज्य स्थापित हो चुका था । पुरानी विदेशी नौकरशाही के भारतीय कर्मचारी अब कांग्रेसी सरकार की सेवा में थे । अब इन्हीं अफसरों को राष्ट्र का सेवक माना जाता था । अंग्रेजी शासन के जमाने में इन्होंने जनता पर कितने ही अत्याचार किये हों, विदेशी प्रभुओं को सन्तुष्ट करने के लिये इन्होंने कितनी ही अनुचित बातें की हों, पर अब तो ये राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को क्रिया में परिणत करने के लिये तत्पर थे । सरकारी सेवा करना इनके लिये एक महान् त्याग था । देश के सब नेता इनकी पीठ पर थे । अब इनके कार्यों की आलोचना करना देशद्रोह की बात थी । यदि ये त्यागी और देश-भक्त आफिसर होटल मोडर्न के मालिक से अठारह रुपये प्रतिदिन के कमरों को सात रुपये के रेट पर लेने की इच्छा करते, तो इसमें अनौचित्य की क्या बात थी ? इसमें सन्देह नहीं, कि रामनगर के अन्य होटलों में सात रुपये रोज पर स्थान मिल सकता था । पर उनमें ठहरना इन उच्च सरकारी आफिसरों की शान और सम्मान के अनुरूप नहीं था । पर मैं भी क्या करता,

३१,००० रुपया वार्षिक किराया देना स्वीकार कर मैंने कोई धर्मशाला तो खोली नहीं थी। अतः विवश होकर मुझे नायब तहसीलदार साहब की नाराजगी का शिकार होना ही पड़ा।

एप्रिल मास में जब होटल प्रायः खाली पड़ा था, मेरे पास काम की कमी न थी। बहुत से मुलाकाती इन दिनों मेरे पास आते रहते थे। रामनगर के आर्थिक जीवन में होटल मॉडर्न का स्थान बहुत ऊंचा था। उसका मालिक लोगों की दृष्टि में अत्यन्त सम्मानास्पद स्थान रखता था। रामनगर के लोग समझते थे, मैं एक अत्यन्त धनी और समृद्ध व्यक्ति हूं। इतनी बड़ी रकम किराये पर देकर मैंने होटल मॉडर्न को प्राप्त किया था। इसलिये यह स्वाभाविक था, कि लोग मेरा रोब मानें। धन में एक विशेष आकर्षण होता है। वह चुम्बक के समान लोगों को अपनी ओर खींचता है। समृद्ध आदमी के लिये मित्रों की कमी नहीं रहती। रामनगर के अनेक धनी-मानी सज्जन इन दिनों मुझसे मिलने आते, और मुझसे परिचित होकर अपने को धन्य समझते। अपने इन नये मित्रों में मैं श्रीहरिवंश श्रीवास्तव का विशेष रूप से उल्लेख करूंगा। रामनगर में इनकी अपनी बहुत सी-जायदाद थी, बिजली के सामान और रेडियो की इनकी एक बड़ी दूकान भी थी। जंगलात के ठेके भी ये लिया करते थे। जिस किसी काम में नफे की सम्भावना हो, उसे करने में इन्हें जरा भी संकोच नहीं होता था। अच्छी घनिष्ठता हो जाने के बाद इन्होंने एक दिन मुझसे प्रस्ताव किया, कि क्यों न होटल के सब खाद्य पदार्थों को मुहय्या करने का काम मैं किसी ठेकेदार को दे दूं। इन्होंने मुझे बताया, कि मसलदार लोग अकसर बदमाश होते हैं। न वे अच्छा माल देते हैं, और न समय पर ही माल पहुंचाते हैं। कीमत भी वे अधिक लेते हैं। मसलदारों से निबट सकना बड़े झंझट का काम है। मुझे होटल लाइन का जरा भी अनुभव नहीं है, इसलिये मेरे हित को दृष्टि में रखकर वे मुझे ये सलाह दे रहे हैं। यदि सब चीजों का ठेका एक हैसियत-वाले आदमी को दे दिया जाय, तो मैं सब परेशानियों से बच जाऊंगा।

श्रीवास्तव साहब से पिण्ड छुड़वा सकना आसान बात न थी। बाद में मुझे मालूम हुआ, वे अपने छोटे भाई को यह ठेका दिलाना चाहते थे। उन्होंने मुझसे इसीलिये मैत्री स्थापित की थी। पर वे मुझसे निराश हुए। निराश होकर वे मेरे विरोधी हो गये, और सारे शहर में मेरी निन्दा करते रहे।

इन्हीं दिनों डाक्टर हाईकोजोनी मुझसे मिलने के लिये आये। ये एंग्लो-इण्डियन थे और रामनगर के प्रमुख चिकित्सक थे। मुझसे परिचय पाकर इन्होंने बहुत प्रसन्नता प्रगट की। अगले दिन इन्होंने मुझे अपने घर चाय पर निमन्त्रित किया। मिसेज हाईकोजोनी से मेरा परिचय कराते हुए डाक्टर साहब ने कहा, कि अंग्रेजों के भारत से विदा हो जाने के बाद अब होटल मॉडर्न का कदरदां मिलना आसान नहीं रहा, पर मेरे जैसे कल्चर्ड और सुशिक्षित व्यक्ति के होते हुए अब यह भरोसा किया जा सकता है, कि होटल की पुरानी शान कायम रहेगी। मिसेज हाईकोजोनी मुझसे मिलकर बहुत खुश हुईं। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझे बताया, कि होटल मॉडर्न में जब कोई यात्री बीमार होता है, तो डा० हाईकोजोनी ही बुलाये जाते हैं। वहां ठहरनेवाले हाई क्लास लोग शहर के साधारण डाक्टरों से सन्तुष्ट नहीं होते। अब मुझे समझ में आया, कि श्रीमती और डाक्टर हाईकोजोनी मुझसे दोस्ती करने के लिये क्यों इतने उत्सुक थे। उनकी आजीविका का मुख्य साधन होटल मोडर्न के यात्री ही थे। रामनगर-जैसे शहर में भारत के कोने-कोने से यात्री आते थे। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर आदि से आये हुए इन उच्च श्रेणि के लोगों का डाक्टरों के बिना काम नहीं चल सकता था। रेल में इनकी आंख में कोयला पड़ जाय, तो उसे निकालने के लिये इन्हें डाक्टर की आवश्यकता थी। सिर में मामूली दर्द हो जाय, तो इन्हें हाई ब्लड प्रेशर का भय लगने लगता था। साधारण ज्वर आ जाय, तो टाइफाइड का भूत इनके सिर पर सवार हो जाता था। ये खुद तो जानते नहीं थे, कि रामनगर में सबसे अच्छा डाक्टर कौन-सा है। इसके लिये वे होटल के मालिक से

परामर्श करते थे। होटल का मालिक जिस किसी की सिफारिश कर दे, जिस किसी को बुलवा दे, उसके पौ बारह थे। होटल मॉडर्न के हाई क्लास यात्रियों का काम पांच रुपया फीस लेनेवाले साधारण एम० बी० बी० एस० डाक्टरों से नहीं चल सकता था। अतः मुझसे पहले के यूरोपियन मालिक व मैनेजर डा० हाईकोजोनी को अपने मेहमानों के लिये बुलाया करते थे। उनकी कम से कम फीस सोलह रुपया थी, रिक्शा के पांच रुपये वे अलग लेते थे। रात को बुलाना हो, तो फीस की मात्रा दुगनी हो जाती थी। यदि कोई केस सीरियस हो, तो डा० हाईकोजोनी थूक, खून, मूत्र आदि की परीक्षा करना आवश्यक समझते थे। इन परीक्षाओं की फीस अलग लगती थी। होटल मॉडर्न के यात्री चिकित्सा के खर्च में कमी करना अनुचित समझते थे। इस दशा में यदि डा० हाईकोजोनी की प्रेक्टिस खूब चलती हो, तो यह सर्वथा स्वाभाविक व उचित था। डाक्टर साहब को डर था, कि अब होटल मॉडर्न के एक हिन्दुस्तानी के हाथ में आ जाने से कहीं उनकी प्रेक्टिस में फरक न पड़ जाय। उन्होंने यह भी सुन लिया था, कि रामनगर के डा० अस्थाना का मेरे यहां आना जाना है। एक दिन-रात के समय मुझे दस्त आने शुरू हो गये थे, तब अपने बेयरा चन्दनसिंह के कहने पर मैंने डा० अस्थाना को बुलवाया था। मेरे बार-बार आग्रह करने पर भी डा० अस्थाना ने मुझसे फीस नहीं ली थी। यह खबर डा० हाईकोजोनी के कानों तक पहुंच गई थी, और वे मुझे अपने काबू में करने के लिये उधार खाये बैठे थे। इसी समय एक दिन रामनगर के सरकारी अस्पताल के बड़े डाक्टर साहब भी मेरे यहां तशरीफ लाये। मैं परेशान था, कि इतने डाक्टरों में से मैं किस-किससे मित्रता करूं। मैं भली भांति जानता था, कि इन सज्जनों का मुझसे परिचय बढ़ाने का क्या हेतु है। मेरी परेशानी का यही कारण था।

## (७)

# सीजन का प्रारम्भ

आखिर, एप्रिल का महीना समाप्त हुआ, और उसके साथ ही प्रतीक्षा के दिनों का भी अन्त हो गया। मई में यात्री लोग रामनगर आने शुरू हो गये और होटल मॉडर्न में भी रौनक दिखाई देने लगी। पहाड़ी नगरों में, जहां होटल का कारोबार गर्मियों के कुछ महीनों में ही चलता है, इन महीनों को 'सीजन' कहते है। मई से होटल का सीजन प्रारम्भ हो गया।

मई में पहाड़ी स्थानों पर बम्बई के लोग अधिक आते हैं। उत्तर-प्रदेश, दिल्ली व पंजाब के लोग इस महीने में पहाड़ पर बहुत नहीं आते। पंजाब में तो छुट्टियां ही अगस्त में शुरू होती हैं। उत्तर-प्रदेश में मई में छुट्टियां शुरू हो जाती हैं, गर्मी भी खूब पड़ने लगती है, पर लोग जून के शुरू या मई के अन्तिम सप्ताह से पहले रामनगर की तरफ चलने की आवश्यकता नहीं अनुभव करते। बम्बई में मई के अन्त में वर्षा शुरू हो जाती है, अतः वहां के लोग एप्रिल के अन्त या मई के शुरू में पहाड़ों पर आने लगते हैं। होटल मॉडर्न में भी जो यात्री मई में आये, वे सब पारसी या गुजराती थे। ये प्रधानतया बम्बई और अहमदाबाद से आये थे। पारसी लोगों का रहन-सहन पूरी तरह से यूरोपियन था। उनकी महिलाएं साड़ी पहनती थीं, पर लड़कियां व युवतियां अंग्रेजी पहनावे में रहती थीं। पारसी यात्री होटल मॉडर्न के कमरों से सन्तुष्ट थे, यद्यपि उन्हें यह शिकायत थी, कि बाथरूमों में अब तक कमोड रखे हुए हैं, फ्लश सिस्टम अभी जारी नहीं हुआ। उन्हें इस बात से भी असन्तोष था, कि गरम पानी के नल अब तक बाथरूमों में क्यों फिट नहीं किये गये। पर उनकी ये शिकायतें साधारण थीं। शीघ्र ही मुझे ज्ञात हुआ, कि इन हाई क्लास मेहमानों को भोजन के सम्बन्ध में अनेक शिकायतें हैं। एक दिन सुबह की चाय (छोटी हाजरी या बेड टी)

के साथ होटल में टोस्ट-मक्खन की जगह बिस्कुट दे दिये गये। यह परिवर्तन होटल की यूरोपियन मैनेजर के परामर्श के अनुसार किया गया था। मिसेज विन्सेन्ट ने सलाह दी थी, कि रोज टोस्ट-मक्खन देने की अपेक्षा यह अच्छा है, कि सप्ताह में एक-दो दिन चाय-बिस्कुट दे दिये जावें। पर हमारे पारसी मेहमान इससे बहुत असन्तुष्ट हुए। उनका खयाल था, कि यह परिवर्तन खर्च को बचाने के लिये किया गया है, और जब वे पूरे बारह रुपये रोज का रेट दे रहे हैं, तो इस प्रकार खर्च में बचत करना अत्यन्त अनुचित है। चाय के साथ देने के लिये जो बिस्कुट मंगाये गये थे, वे विलायती थे। चार रुपये पौण्ड या आठ रुपये सेर उनकी कीमत थी। असल में उन्हें देने से खर्च अधिक बैठता था। पर हमारे मेहमानों को तो यह फिक्र थी, कि बारह रुपये की पूरी कीमत वसूल की जाय। उस दिन होटल में शोर मच गया। अगले दिन से टोस्ट-मक्खन का क्रम फिर जारी कर दिया गया।

हमारे पारसी मेहमानों को होटल के लंच और डिनर से भी कई शिकायतें थीं। मिसेज कलेण्डर नामक एक महिला एक दिन दफ्तर में आईं, और कहने लगीं, कि होटल में गोश्त के साथ जो सब्जी दी जाती है, वह ठीक नहीं है। पिछले चार दिन का मेनू देखा गया। मालूम हुआ, कि इन दिनों में आलू के अतिरिक्त टमाटर, फ्रेन्च बीन, ब्रिन्जाल (बैंगन), मटर, पत्तागोभी, खीरा, गाजर, चुकुन्दर, भिण्डी और कद्दू की सब्जी दी गई थी। पर मिसेज कलेण्डर को इनसे सन्तोष नहीं था। उनका कहना था, कि बाजार में फूलगोभी भी बिकती है, वह क्यों नहीं दी जाती। मई मास के उत्तरार्ध में फूलगोभी सुलभ नहीं होती। रामनगर में उन दिनों फूलगोभी का भाव तीन रुपया सेर था। पर हमारे मेहमानों को कीमत से क्या वास्ता था। उनके लिये यही पर्याप्त था, कि फूलगोभी बाजार में उपलब्ध है, अतः वह उन्हें अवश्य दी जानी चाहिये। आखिर, उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये खानसामा को आर्डर दिया गया, कि वह गोभी खरीद लावे। रामनगर के सारे बाजार में घूमकर बड़ी कोशिश से वह पांच सेर गोभी

लाने में समर्थ हुआ। पर होटल के पचास मेहमानों के लिये पांच सेर गोभी से क्या हो सकता था? अगले दिन लंच के समय फिर चख-चख मची। अब हमारे मेहमानों को यह शिकायत थी, कि गोभी इतनी कम क्यों है? सरकार ने गोभी का तो राशन नहीं कर रखा है, वह तो यथेष्ट मात्रा में दी जानी चाहिये।

अपने मेहमानों की भोजन-सम्बन्धी शिकायतों का उल्लेख कर मैं पाठकों का समय नष्ट नहीं करूंगा। होटल का धन्धा ही इस प्रकार का है, जिसमें भोजन करनेवालों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट कर सकना असम्भव है। कोई तेज चाय पसन्द करता है, कोई हल्की। किसी को सब्जी-तरकारी में मसाला पसन्द है, कोई मसाले की गन्ध से भी नफरत करता है। भारत में भोजन का कोई एक स्टैण्डर्ड नहीं है। यहां सब प्रान्तों का भोजन अलग-अलग है। एक प्रान्त में भी विभिन्न जात-बिरादरियों के भोजन में विभिन्नता है। एक बिरादरी में भी प्रत्येक परिवार का टेस्ट अलग होता है, और परिवार के विविध सदस्य भी भोजन के मामले में अपनी-अपनी पृथक् रुचि रखते हैं। बीवी मिर्च-खटाई की शौकीन है, तो मियां फीका उबला हुआ भोजन पसन्द करता है। गृह-स्वामिनी का मुख्य कर्तव्य यह होता है, कि वह अपने पतिदेव और सन्तान की भिन्न-भिन्न रुचि को दृष्टि में रखकर विविध प्रकार का भोजन तैयार करावे। इस दशा में होटल के मालिक के लिये यह कैसे सम्भव है, कि वह ऐसा भोजन बनवा सके, जिसे सब मेहमान रुचिकर समझें। मेरे पास होटल के पारसी मेहमान बहुधा आकर कहा करते थे, कि आज सायंकाल डिनर में फलानी चीज बनवाई जाय, कल लंच में यह खाना बने और बड़ी हाजरी में उनके लिये एक नये किसम का पोरिज दिया जावे, जो उन्होंने पिछले साल यूरोप की यात्रा में ल्यूसर्न (स्विट्जरलैण्ड का एक नगर) के होटल सीसो में खाया था। वह पोरिज भारत में कहीं मिलता है या नहीं, या रामनगर-जैसे पहाड़ी नगर में प्राप्तव्य है या नहीं, इस प्रश्न पर विचार

करने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी। वे रामनगर आराम करने के लिये आये थे और होटल मॉडर्न में ठहरकर उन्होंने मुझ पर अपार कृपा की थी। दुर्लभ व सुस्वादु भोजन शरीर की श्रान्ति और मन की क्लान्ति को दूर करने का सर्वोत्तम साधन है, उनके सम्मुख केवल यही एक बात रहती थी।

भोजन के बारे में चाहे कितनी ही चख-चख क्यों न होती हो, पर मैं प्रसन्न था। होटल में रौनक दिखाई देने लगी थी। प्रतीक्षा के दिन समाप्त हो गये थे, और अब सीजन प्रारम्भ हो गया था। होटल के खानसामे, बेयरे, खिदमतदार, मसलदार सब प्रसन्न थे। जेठ की चमचमाती धूप और कड़ी गर्मी के बाद जब आषाढ़ में काली घटा घिरने लगती है, और ठण्डी फुहार से धरती में नया जीवन आने लगता है, तो किसान जिस प्रकार अपने उज्ज्वल भविष्य की कल्पना कर खुशी अनुभव करता है, वैसी ही खुशी मुझे भी हो रही थी। मुझे भली भांति ज्ञात था, कि मई समाप्त होने से पहले ही उत्तर-प्रदेश के रईस व अफसर रामनगर आने लगेंगे, होटल मॉडर्न में तिल रखने को जगह नहीं रहेगी और मेरा कारोबार खूब चमक उठेगा। जब लखनऊ, कानपुर और इलाहाबाद में तापमान ११० से ऊपर पहुंचने लगेगा, तो लोगों को रामनगर की याद आयगी और तब उन्हें होटल मोडर्न की कदर मालूम पड़ेगी। अब वह समय समीप आ गया था, और मेरी प्रसन्नता का कोई अन्त नहीं था।

## (८)

## श्रीगंगाशरण गोयल एम० एल० ए०

मई मास का अन्त होने से पहले ही उत्तर-प्रदेश के धनी-मानी सज्जन रामनगर आने लगे। इनमें जो सबसे अधिक धनी थे, जो बारह रुपये प्रति-दिन के हिसाब से अपने निवास और भोजन पर खर्च कर सकते थे, वे होटल

मोडर्न में आकर ठहरने लगे। इनमें से कुछ सज्जनों का परिचय देना मैं आवश्यक समझता हूं। वस्तुतः होटल एक किसम का चिड़ियाघर होता है, जिसमें भांति-भांति के इन्सान देखने को मिलते हैं। मानव-चरित्र का अध्ययन करनेवाले व्यक्ति के लिये होटल से बढ़कर कोई अन्य साधन नहीं हो सकता। मनोविज्ञान के क्रियात्मक अनुशीलन के लिये यदि होटल को प्रयोगशाला व लेबोरेटरी कहा जाय, तो भी अनुचित नहीं होगा।

२४ मई का दिन था और सुबह आठ बजे का समय। श्री चन्दूलाल शर्मा नामक एक सज्जन मेरे दफ्तर में आये, और बड़ी अकड़ के साथ मुझसे बात करने लगे। शर्माजी ने मोटे खद्दर का कुर्ता और पायजामा पहना हुआ था, और उनके सिर पर बगले के पर के समान श्वेत व उज्ज्वल गांधी-टोपी विराजमान थी। उन्होंने मुझसे पूछा—होटल का सबसे अच्छा कमरा कौन-सा है? मैंने बेयरा को आदेश दिया, कि शर्माजी को होटल के अच्छे कमरे दिखा दे। पर शर्माजी ने इसे अपने लिये अपमानजनक समझा। उनका खयाल था, कि उन-जैसे प्रतिष्ठित सज्जन को कमरे दिखाने के लिये मुझे स्वयं चलना चाहिये। अपना रोष प्रगट करने के प्रलोभन को वे नहीं रोक सके, पर मुझ पर दया करके उन्होंने बेयरे के साथ कमरे देखना स्वीकार कर लिया। उन्होंने २४ नं० का कमरा पसन्द किया, और उसे श्रीगंगाशरण गोयल एम० एल० ए० के नाम से रिजर्व करने के लिये कहा। बातचीत में मालूम हुआ, कि श्रीगोयल उत्तर-प्रदेश (१९४८ में उत्तर-प्रदेश का नाम संयुक्त प्रान्त था) की विधान-सभा (लेजिस्लेटिव एसेम्बली) के सदस्य हैं, और बदायूं जिले के निवासी हैं। वे २६ मई को रामनगर पधार रहे हैं, और दो मास के लगभग होटल मॉडर्न में ठहरना चाहते हैं। वे स्वयं तो मांस-मच्छी सब खा लेते हैं, पर उनकी पत्नी पुराने ढंग की हैं, और चौके-चूल्हे में विश्वास रखती हैं। श्रीचन्दूलाल शर्मा गोयल साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं, और अपने 'बॉस' के लिये निवास की समुचित व्यवस्था करने के लिये आये हैं। शर्माजी चाहते थे, कि एम० एल० ए० साहब

के लिये भोजन के बिना २८ नं० कमरा रिजर्व कर दिया जाय। रसोई पकाने का काम नौकरों के क्वार्टर में कर लिया जायगा। शर्माजी से सब बातें तय हो गई, १२) दैनिक कमरे का किराया तय हुआ और एक रुपया रोज नौकरों के दो क्वार्टरों का। लिखा-पढ़ी की जरूरत मैंने नहीं समझी, क्योंकि श्रीगंगाशरण गोयल उत्तर-प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य थे, और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी साहब की वेश-भूषा से मैंने अन्दाज कर लिया था, कि वे कांग्रेस पार्टी के होंगे। जिन देशभक्तों ने स्वराज्य के संघर्ष में अपने सर्वस्व को होम कर दिया हो, अनेक बार जेल जाकर जिन्होंने देश के लिये अपार कष्ट सहे हों, उनके वचन का अविश्वास करना मेरे लिये सर्वथा अनुचित था।

२६ मई को श्रीगोयल होटल मॉडर्न पधार गये। उनका होटल पधारना न केवल मेरे लिये, अपितु होटल के अन्य मेहमानों के लिये भी एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। एक बड़ी मोटरकार और एक स्टेशन-वैगन सुबह दस बजे मेरे दफ्तर के सम्मुख आकर रुक गये। मोटर की आवाज सुनकर होटल के खानसामे, बेयरे, जमादार व मेहमान सब बाहर निकल आये। मैदान के शहरों के निवासियों के लिये मोटर एक साधारण चीज है, होटलों में मोटरें आती-जाती ही रहती हैं। पर पहाड़ी नगरों के बाजारों व होटलों में मोटर के दर्शन सुलभ नहीं होते। रामनगर में यह नियम था, कि मोटर गाड़ियां शहर से बाहर रुक जावें। अंग्रेजी राज के जमाने में केवल गवर्नर साहब को यह अधिकार था, कि वे अपनी मोटर रामनगर में जहां चाहें, ले जा सकें। बड़े से बड़े राजा, महाराजा या नवाब भी अपनी मोटरें रामनगर के बाजार में नहीं ला सकते थे। स्वराज्य की स्थापना के बाद इस सम्बन्ध में कुछ ढील कर दी गई थी। पुलिस के सुपरिन्टन्डेन्ट साहब और म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन महोदय की अनुमति से कोई भी व्यक्ति अपनी मोटर-गाड़ी अब रामनगर में ला सकता था। पर यह अनुमति प्राप्त करना सुगम बात नहीं थी। प्रान्त के मिनिस्टरों, पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरियों और

उच्च सैनिक अफसरों को यह अनुमति अब आसानी से दे दी जाती थी। यह उचित भी था, क्योंकि देश की सेवा में अपने २४ घण्टे व्यतीत करनेवाले लोकनेताओं के पास समय की बहुत कमी रहती थी, और यदि वे रामनगर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये रिक्शा या डांडी पर निर्भर रहते, तो उनका कितना अमूल्य समय व्यर्थ में नष्ट हो जाता। पर धनी से धनी व्यक्ति के लिये भी अब तक रामनगर में मोटर चलाने की अनुमति प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं था। होटल मॉडर्न में जो लोग ठहरे हुए थे, धन प्रतिष्ठा व पद के लिहाज से वे बहुत उच्च श्रेणि के थे। उनमें कितने ही बम्बई और कानपुर के करोड़पति, रियासतों के राजा व अवध के ताल्लुकेदार थे। मुझे मालूम है, कि उन्होंने अपनी मोटरों को होटल मॉडर्न तक ले आने की अनुमति प्राप्त करने की भरपूर कोशिश की थी। पर उन्हें सफलता नहीं हुई। यही कारण है, कि जब उन्होंने श्रीगोयल एम० एल० ए० की मोटरकार और स्टेशन-वैगन को होटल में खड़े देखा, तो उनके आश्चर्य व रोष का ठिकाना नहीं रहा। वे मेरे पास आकर अपना रोष प्रकट करने लगे। पर इस विषय में मैं उनका समाधान किस प्रकार कर सकता था? श्रीगोयल एम० एल० ए० थे, प्रान्त के मन्त्रियों तक उनकी सीधी पहुंच थी, प्रान्त के लिये कानून बनाना उनके हाथ में था। वे कानून के गुलाम नहीं थे, अपितु कानून उनका गुलाम था। इस दशा में रामनगर की म्युनिसिपल कमेटी का चेयरमैन यह साहस कैसे कर सकता था, कि उनकी मोटर-गाड़ियों को शहर में स्वच्छन्द रूप से आने-जाने की अनुमति प्रदान करने से इनकार करता?

श्रीगोयल होटल मॉडर्न के २४ नं० के कमरे में ठहर गये। कमरा खूब बड़ा था, साथ में प्राइवेट सिटिंग रूम (बैठक) भी था। श्रीगोयल, श्रीमती गोयल और कुमार गोयल के लिये तीन पलंग भली भांति तैयार थे। होटल के खिदमतगार इन अत्यन्त प्रतिष्ठित अतिथियों को आराम देने के लिये तैनात थे। श्रीमती गोयल ने नौकरों के उस क्वार्टर को देखा,

जहां उन्हें रसोई बनानी थी। यह जगह उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं आई। कमरा ठीक था, पर उसके पड़ोस में होटल के नौकर निवास करते थे। श्रीमती गोयल को यह सह्य नहीं था, कि वे एक ऐसे स्थान पर रसोई की देख-रेख के लिये जावें, जहां निम्न वर्ग के नौकरों-चाकरों का आना जाना हो। उन्होंने इस बारे में मुझसे कोई बातचीत करने की आवश्यकता नहीं समझी। अपने रसोइये को हुकुम दे दिया, कि वह अंगीठी में आग तैयार करके २४ नं० कमरे के बरामदे में ले आवे। धधकती हुई दो अंगीठियां होटल के बरामदे में ले आई गई, और श्रीमती गोयल ने उन पर दाल-सब्जी चढ़वा दी। स्थूल शरीर ब्राह्मण रसोइया कुर्ता उतारकर कड़छी चलाने में व्यग्र हो गया। होटल मोडर्न के अन्य मेहमानों के लिये इससे बढ़कर तमाशे की क्या बात हो सकती थी? समीप के अन्य कमरों में कुछ यूरोपियन मेहमान भी ठहरे हुए थे। एक विदेशी दूतावास के कतिपय कर्मचारी भी नजदीक के कमरों में थे। वे सब श्रीमती गोयल की रसोई को देखने के लिये बाहर निकल आये। खिदमतगारों ने मुझसे आकर शिकायत की। होटल मॉडर्न सदृश उच्च कोटि के होटल के लिये इससे बढ़कर अनर्थ की बात और क्या हो सकती थी, कि उसके खुले बरामदे में जो सब मेहमानों के लिये रास्ते का भी काम देता था, इस ढंग से रसोई बनाई जाय? मैंने चाहा, कि मैं स्वयं जाकर श्रीगोयल एम० एल० ए० से भेंट करूं, उन्हें समझाऊं कि यह बरामदा रसोईघर के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, पर उन्होंने मुझसे स्वयं बात करना अपने लिये अपमानजनक समझा। वे व्यवस्थापिका सभा के सदस्य थे, उनका एक-एक क्षण अमूल्य था, उन्हें इतनी फुरसत कहां थी, कि वे मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति से बात करने के लिये समय निकाल सकते। प्राइवेट सेक्रेटरी शर्मा-जी से बात करके ही मुझे सन्तोष करना पड़ा। मुझे ज्ञात नहीं, कि यह मेरी बातचीत का असर था, या पड़ोस की यूरोपियन महिलाओं का भय था, जिससे दो दिन बाद श्रीगोयल की रसोई बरामदे से उठकर रूम नं०

२४ के ड्रेसिंग-रूम में चली गईं। पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं, कि बड़े होटलों में पलंग-कमरे (बेड-रूम) के साथ एक ड्रेसिंग-रूम भी रहता है, जिसमें शृंगार-मेज (ड्रेसिंग-टेबल) रखी रहती है, और आदमकद आयने लगे रहते हैं। इस कमरे का प्रयोजन यह होता है, कि मेहमान लोग यहां शृंगार की वस्तुओं को रख सकें, और अपने शारीरिक प्रसाधन, केश-विन्यास आदि के लिये इनका उपयोग कर सकें। श्रीमती गोयल ने इस कमरे को रसोई के लिये ठीक कर लिया। शृंगार-मेज पर तेल, पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक और रूज की जगह मिर्च, मसाले, नमक, बेसन, हल्दी आदि रख दिये गये, और तह किये हुए कपड़ों को रखने की जगह पर दाल, आटा, सब्जी आदि भर दी गई। एम० एल० ए० साहब को इस बात पर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी, कि ड्रेसिंग रूम को रसोई-घर बनाना होटल की व्यवस्था के विरुद्ध है। परम माननीय श्री श्रीप्रकाश-जी की इस उक्ति को उन्होंने अपने जीवन में क्रिया में परिणत करने का संकल्प किया हुआ था कि "हम अपने देश में अपने ही ढंग से रहना चाहते हैं।" होटल में किसे इतना साहस था, कि श्रीगंगाशरण गोयल एम० एल० ए० द्वारा की गई व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठा सके।

श्रीगोयल दो मास होटल मॉडर्न में रहे। उनकी मोटरकार और स्टेशन-वैगन उस जगह पर खड़े रहे, जहां बच्चे खेला करते थे। पहाड़ी नगरों के होटलों व कोठियों में खुले मैदान की बहुत कीमत होती है। ये मैदान बच्चों के खेलने के काम आते हैं। मैंने अनेक बार श्रीगोयल के प्राइवेट सेक्रेटरी शर्माजी से निवेदन किया, कि इन मोटर-गाड़ियों को होटल के खुले मैदान से हटाकर किसी गराज में भेज दिया जाय। शर्माजी स्वयं भी अनुभव करते थे, कि मोटर-गाड़ियों का बच्चों के खेलने की जगह पर रहना उचित नहीं है। होटल के अन्य मेहमान भी उनसे इसके लिये कहते थे। पर रामनगर में मोटर-गराज का किराया एक रुपया दैनिक था। गोयल साहब की दो गाड़ियों के लिये दो गराजों की आवश्यकता थी,

और इनके लिये उन्हें दो मास में १२० रु० खर्च करने पड़ते । श्रीगोयल के लिये १२० रु० की कीमत बच्चों की खेल-कूद की आवश्यकता से कहीं अधिक थी । वे स्वयं 'असूर्यम्पश्य' बनकर रहते थे, न वे किसी से मिलते-जुलते थे, न किसी से बात करते थे । मालूम नहीं, वे किन महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त रहते थे । दो मास के निवास में मुझे वे केवल दो या तीन बार दिखाई दिये । कीमती पशमीने की लम्बी अचकन और चुस्त पायजामा उनका पहरावा था । सिर पर श्वेत गांधीटोपी इस बात का निशान थी, कि वे कांग्रेस पार्टी के हैं, और महात्मा गांधी के उच्च सिद्धान्तों के अनुयायी हैं ।

मेरी इच्छा थी, कि श्रीगोयल से परिचय प्राप्त करूं । पर मुझे इसमें सफलता नहीं हुई । मेरे लिये श्रीगोयल 'असूर्यम्पश्य' ही बने रहे । पर उनके अनुचरों व पार्श्वचरों से उनके सम्बन्ध में अनेक बातें मालूम कर सकने में मैं समर्थ हुआ । बदायूं जिले के वे बहुत बड़े जमींदार थे । ग्यारह गांवों के वे मालिक थे । स्वराज्य-आन्दोलन में उन्होंने कभी कोई हिस्सा नहीं लिया, जेल की उन्होंने कभी शकल तक नहीं देखी । मांटेग्यू-चैम्सफार्ड सुधारों के अनुसार जब हमारे प्रान्त में व्यवस्थापिका सभा का निर्माण किया गया, तो उन्हें गवर्नर द्वारा उसका सदस्य मनोनीत कर लिया गया । वे अंग्रेजी सरकार के परम भक्त थे, हाकिमों की आवभगत करना व उन्हें डालियां भेजकर खुश रखना वे अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे । देश व सरकार की इन्हीं सेवाओं के कारण उन्हें व्यवस्थापिका सभा के लिये मनोनीत किया गया था । स्वराज्य-पार्टी का संगठन हो जाने के बाद जब कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का निर्णय किया, तो वे कांग्रेसी उम्मीदवार के मुकाबले व्यवस्थापिका सभा के लिये खड़े हुए और अपने रुपये के जोर पर चुनाव में सफल हुए । कांग्रेसी सरकार ने जब भूमि-सम्बन्धी सुधार के लिये कानून बनाने का उपक्रम किया, तो उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी, कि जो जमीन किसान की खेती में रहेगी, उस पर जमींदार का स्वत्व कायम

नहीं रह सकेगा। सीलिंग कानून के स्वीकृत होने से पहले ही उन्होंने हजारों बीघा जमीन से किसानों को बेदखल कर दिया था और उसे अपनी खुदकाश्त बना लिया था। इस समय श्रीगोयल के दो बड़े-बड़े फार्म थे, जिन पर वे ट्रैक्टरों द्वारा खेती कराते थे। फार्मों पर सिचाई के लिये उनके अपने ट्यूब वेल (यान्त्रिक शक्ति द्वारा पानी निकालनेवाले कुएं) भी थे। इन फार्मों से उन्हें हजारों रुपये मासिक की आमदनी थी। जिन गरीब किसानों को बेदखल कर इन फार्मों का निर्माण हुआ था, उनकी क्या दशा है, इस बात की श्रीगोयल को जरा भी चिन्ता नहीं थी। वे तो विदेश से ट्रैक्टर मंगाकर 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे। देश-सेवा और सामूहिक हित की पुनीत भावना से ही उन्होंने इन फार्मों का निर्माण किया था। 'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे' के सिद्धान्त के अनुसार यदि देशहित के लिये श्रीगोयल ने हजारों किसानों को बे-रोजगार कर दिया था, तो इसमें उनका क्या दोष था? देश की स्वराज्य-सरकार ने उनके फार्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। प्रान्त के गवर्नर (अंग्रेजी गवर्नर नहीं, अपितु कांग्रेस के एक प्रसिद्ध नेता, जो अब प्रान्त के गवर्नर पद पर अधिष्ठित थे) उनके फार्मों का अवलोकन कर चुके थे, और अपने एक भाषण में उन्होंने कहा था, कि देश में खाद्य पदार्थों की कमी और भुखमरी की समस्या तुरन्त हल हो सकती है, यदि सब सम्पन्न जमींदार श्रीगोयल को आदर्श बनाकर इस ढंग के मॉडर्न फार्मों के निर्माण में तत्पर हो जावें। मैंने किसी को यह कहते सुना था, कि बदायूं जिले के बहुत से किसान सुबह उठकर सूर्य भगवान् को नमस्कार करते हुए यह प्रार्थना करते हैं, कि श्रीगोयल के वंश का जड़ से उच्छेद हो जाय। पर भगवान् ने इन गरीबों की प्रार्थना को अभी तक तो सुना नहीं था। भगवान् के दरबार में भी गरीबों की आरजू पूंजीवाद के इस युग में सुनाई देती है, यह बात सन्दिग्ध है।

हां, मैं आपको श्रीगंगाशरण गोयल एम० एल० ए० साहब का

परिचय दे रहा था। १९४७ में जब अंग्रेज भारत से विदा हुए, और कांग्रेस ने देश के शासन की बागडोर को संभाला, तो श्रीगोयल कांग्रेस-पार्टी में शामिल हो गये। कांग्रेस-दल के प्रतिज्ञा-पत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर कर दिया, और गांधी-टोपी को सिर पर धारण कर लिया। कांग्रेसी क्षेत्र में उनके इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। बात की बात में उनकी शुमार देशभक्तों में की जाने लगी, और वे व्यवस्थापिका सभा की कांग्रेस-पार्टी के एक महत्वपूर्ण सदस्य बन गये। गांधीवादी लोगों ने कहा, यह महात्मा-जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त की भारी विजय है। खून की एक बूंद भी बहाये बिना भारत में स्वराज्य की स्थापना हुई है, और श्री गोयल-जैसे ब्रिटिश भक्त लोग कांग्रेस के उदात्त सिद्धान्तों से आकृष्ट हो-कर स्वयमेव देशभक्तों के दल में आ मिले हैं। महात्मा बुद्ध ने क्या ठीक कहा था—"अक्रोधेन जयेत् क्रोधं, असाधुं साधुना जयेत्।" गांधीजी के प्रभाव से कितने ही रायबहादुर अपने खिताबों को छोड़कर जेल जाने को तैयार हो गये थे, और अब स्वराज्य स्थापित हो जाने पर श्रीगोयल-जैसे जमींदार गांधी-टोपी पहनकर स्वयं कांग्रेस में शामिल हो गये थे। सत्य और अहिंसा की विजय का इससे अधिक शानदार उदाहरण और क्या हो सकता है? रूस के कम्युनिस्टों ने अपने विरोधियों को गोली से उड़ाया, पर भारत में कांग्रेस-दल ने श्रीगोयल-जैसे ब्रिटिश शासन के पिट्ठुओं के हृदय को जीतकर उन्हें अपने साथ शामिल कर लिया। अब श्रीगोयल उत्तर-प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा में कांग्रेस-दल के एक महत्वपूर्ण सदस्य थे, और अपनी धनशक्ति द्वारा उसकी सहायता में निरन्तर तत्पर रहते थे। १९५१ में जब स्वाधीन भारत का पहला आम चुनाव हुआ, तो श्री-गोयल कांग्रेस-पार्टी की ओर से पार्लियामेण्ट के लिये खड़े किये गये। उनके मुकाबले में खड़े होने का जिन लोगों ने साहस किया, उनकी जमानतें जब्त हुईं। जिस निर्वाचन-क्षेत्र से श्रीगोयल को कांग्रेस-टिकट मिला था, उसमें ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो कट्टर कांग्रेसी थे, स्वराज्य-आन्दोलन में

जो अनेक बार जेल जा चुके थे, स्वाधीनता-संग्राम में जिन्होंने घोर कष्ट उठाये थे, और जो विद्या सार्वजनिक सेवा व सदाचार की दृष्टि से भी सब प्रकार से योग्य थे। पर कांग्रेस ने इनके मुकाबले में श्रीगोयल को पार्लिया-मेण्ट के लिये अधिक उपयुक्त पाया। महाकवि तुलसीदास ने कहा था—"कोउ नृप होय हमें का हानी, चेरि छांड़ि नहिं होउब रानी।" इसी प्रकार यदि वे यह भी कह देते, तो उचित होता, कि ऐसे भी लोग हैं, जो हमेशा राजा रहेंगे, चाहे किसी का शासन हो, किसी के भी हाथ में राजशक्ति हो। अंग्रेजी राज्य में श्रीगोयल सरकारपरस्त थे, कांग्रेसी राज में वे राष्ट्र-भक्त देश-सेवक हो गये, और कौन जानता है, कि भविष्य में किसी अन्य राजनीतिक दल का प्रभुत्व हो जाने पर वे फिर अपना रंग नहीं बदल लेंगे। *प्रजातन्त्र गणराज्यों में अपनी ऊंची स्थिति बनाने के लिये जिन दो गुणों* (खुशामद और रुपये को पानी की तरह बहाना) का प्रतिपादन संघमुख्य कृष्ण के सम्मुख नारद मुनि ने किया था, वे श्रीगोयल में भली भांति विद्यमान थे, और इन गुणों का उपयोग कर वे अन्य राजनीतिक दलों को भी वशीभूत नहीं कर लेंगे, यह कैसे कहा जा सकता है। श्रीगोयल-जैसे महानुभावों ने तो राज्य द्वारा सम्मानित होना ही है, चाहे अंग्रेजी राज हो, चाहे कांग्रेस का शासन हो, और चाहे जनसंघ या सोशलिस्ट दल का प्रभुत्व हो।

श्रीगोयल के विषय में मैं अधिक नहीं लिखूंगा। दो मास तक वे होटल मॉडर्न में रहे, उनकी मोटर-गाड़ियां होटल के अन्य मेहमानों की आंखों में शूल की तरह चुभती रहीं। अन्य मेहमानों की मोटरें होटल मॉडर्न से दो मील दूर शहर से बाहर गराजों में खड़ी थीं। श्रीगोयल की मोटरें होटल की छाती पर खड़ी हुई अन्य मेहमानों को उनकी हीनता का बोध करा रही थीं। कुछ मेहमानों से मेरी बेतकल्लुफी थी, उन्हें मैं बाबा कबीर का यह दोहा सुनाकर तसल्ली देने का प्रयत्न किया करता था—

रूखा-सूखा खाइकै ठण्डा पानी पीव।

देख पराई चुपड़ी मन ललचावै जीव ॥

२२ जुलाई को श्रीगोयल के सेक्रेटरी शर्माजी ने मेरे दफ्तर में पधारने का कष्ट किया। यह मेरा अहोभाग्य था। उन्होंने मुझसे कहा, कि २४ जुलाई को एम० एल० ए० साहब रामनगर से वापस जा रहे हैं, कल सुबह तक उन्हें होटल का बिल दे दिया जाय, ताकि उसका पेमेन्ट किया जा सके। बिल बनने में क्या देर लगती थी? श्रीगोयल ने होटल से भोजन आदि कुछ नहीं लिया था। उन्हें केवल कमरे और दो क्वार्टरों का किराया देना था, जिसकी दर शर्माजी स्वयं १३ रुपये दैनिक के हिसाब से तय कर चुके थे। दो मास की रकम ७८० रु० बैठती थी। इसका बिल तुरन्त शर्माजी के सुपुर्द कर दिया गया। वे उसे लेकर चले गये। मुझे स्वप्न में भी खयाल नहीं था, कि इस बिल के चुकता करने में किसी भी प्रकार की आनाकानी हो सकती है। श्रीगोयल हमारे प्रान्त के अत्यन्त प्रतिष्ठित व धनी-मानी जमींदार थे, व्यवस्थापिका सभा के कांग्रेसी सदस्य थे, देश-भक्तों में उन्हें स्थान प्राप्त था और सत्य उनका आदर्श था। २४ जुलाई को वे होटल से नीचे उतरे और अपनी कार पर बैठकर रामनगर से बिदा हो गये। उनका असबाब स्टेशन-वैगन पर लद गया और नौकरों-चाकरों को लेकर यह शानदार मोटर-गाड़ी भी घड़घड़ाती हुई होटल से बाहर निकल गई। मैंने समझा, श्रीगोयल होटल के बिल की रकम किसी खिदमतगार को दे गये होंगे, और वह शीघ्र ही आफिस में आ जायगी। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता था, कि एम० एल० ए० साहब होटल का बिल दिये बिना ही चले गये हैं।

कुछ घण्टों बाद एक सज्जन मेरे आफिस में आये, ये श्रीगोयल की तरफ से मुझे होटल का बिल चुकाने आये थे। मैंने उनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया। मैंने अपने मन में सोचा, श्रीगोयल भी कितने खरे आदमी हैं। चलते समय उन्हें होटल के बिल का खयाल नहीं रहा। आखिर, उनके ऊपर कितनी भारी जिम्मेदारियां हैं। प्रान्त भर के लिये कानून बनाना

उन्हीं सदृश एम० एल० ए० साहबों का काम है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये उन्हें कितना व्यग्र रहना पड़ता है। इस दशा में यदि उन्हें मेरी रकम का ध्यान न रहा हो, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? पर उनकी सज्जनता तो देखिये, याद आते ही उन्होंने इन सज्जन को रुपया देकर मेरे पास भेज दिया। आखिर, बड़े लोग वस्तुतः बड़े ही होते हैं। मैं प्रतीक्षा करने लगा, कि अब सौ-सौ रुपये के आठ चमचमाते नोट मेरी टेबल पर रख दिये जायंगे, मैं बीस रुपये निकालकर वापस कर दूंगा, और एक आने के स्टाम्प पर रसीद लिखकर दे दूंगा। ये बीस रुपये श्रीगोयल का आदमी क्या वापस लेगा, इन्हें होटल के नौकरों को टिप के तौर पर दे देगा। होटल के बेयरे, खिदमतगार और जमादार भी मेहमानों से टिप पाने की आशा रखते हैं, और इसी आशा से रात की नींद की परवा न कर जी-जान से सबकी सेवा करते हैं। मैंने मेज की दराज से एक आने का रसीदी स्टाम्प निकाल लिया, और रसीद लिखने की तैयारी करने लगा। पर श्री-गोयल के आदमी को मेरे बिल पर एतराज था। उनका कहना था, कि एम० एल० ए० साहब ने होटल से भोजन तो लिया नहीं, वे कमरे में रहे मात्र हैं। होटल की १२) दैनिक रेट तो भोजन के साथ है। भोजन के बिना कमरे का किराया अधिक से अधिक ५) रोज होना चाहिये, और दो मास तक ठहरने पर किराये की दर १०० रु० मासिक से अधिक नहीं होनी चाहिये। श्रीगोयल ने उन्हें २०० रु० देकर भेजा है, और कहा है, कि होटल के बिल की चुकता रसीद लेकर यह रकम मेरे हवाले कर दी जाय। मैंने उन्हें समझाया, होटल का रेट १२ रु० दैनिक है, पर यह रेट एक व्यक्ति के लिये है, और इकले व्यक्ति को होटल में सिंगल रूम दिया जाता है, जिसमें केवल एक पलंग रहता है। श्रीगोयल ने ऐसा डबल रूम लिया था, जिसके साथ प्राइवेट सिटिंग रूम भी था, और जिसमें साधारणतया तीन व्यक्तियों के निवास की जगह थी। भोजन के साथ यदि यह कमरा लिया जाता, तो इसकी दर तीन आदमियों के लिये ३६ रु० दैनिक होती।

भोजन के बिना लेने पर भी इस कमरे की सामान्य दर १८ रु० दैनिक है, पर श्रीगोयल की सम्मानित राजनीतिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए उनसे १२ रु० रोज का किराया स्वीकार कर लिया गया था। शर्माजी सब बात खुद तय कर गये थे, और अब इस विषय में बहस करना सर्वथा व्यर्थ है। पर श्रीगोयल के आदमी अपनी बात पर अड़े रहे। उन्होंने साफ-साफ कह दिया, यदि मुझे २०० रु० स्वीकार हैं, तो रसीद देकर रुपये ले लूं, अन्यथा जो चाहे सो करूं। अब मेरी दशा की कल्पना कीजिये। श्रीगोयल रामनगर से बिदा हो चुके थे, उनके प्राइवेट सेक्रेटरी भी उनके साथ ही जा चुके थे। एम० एल० ए० साहब की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए मैंने किराये के बारे में कोई लिखा-पढ़ी नहीं की थी। अब मेरे पास क्या सबूत था, कि मैंने शर्माजी से १२ रु० दैनिक का रेट तय किया था। पर मने चुकता रसीद लिखकर २०० रु० लेने से इनकार कर दिया, और श्रीगोयल के आदमी अकड़ते हुए दफ्तर से उठकर चले गये। मैंने सोचा, जब मैं एम० एल० ए० साहब को सब बात स्पष्ट करके पत्र लिखूंगा, तब वे स्वयं न्याय करेंगे, और मेरे बिल का पूरा रुपया भेज देंगे। जिन सज्जनों के हाथ में ६॥ करोड़ की आबादी के इस विशाल प्रान्त के लिये कानून बनाने, शासक-वर्ग पर नियन्त्रण रखने और जनता के हित व कल्याण का कार्य सुपुर्द है, वे मेरे दृष्टिकोण को नहीं समझेंगे, यह बात मेरी कल्पना से भी बाहर थी।

मैंने एम० एल० ए० साहब को अनेक पत्र लिखे। पर उनका कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। मैंने समझा, श्रीगोयल बड़े आदमी हैं, उन्हें इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की फुरसत ही कहां है। शायद मेरे पत्र उनके हाथ में भी नहीं पहुंचते होंगे, सेक्रेटरी लोग उन्हें उनके सम्मुख पेश भी नहीं करते होंगे। आखिर, मैंने उन्हें एक रजिस्टर्ड एकनोलिजमेन्ट ड्यू (रसीदी) पत्र भेजा, जिसमें अत्यन्त अनुनय-विनय के साथ मैंने अपना दृष्टिकोण पेश करके उनसे प्रार्थना की थी, कि वे होटल

के बिल की मामूली-सी रकम को शीघ्र ही भेजने की कृपा करें। पर इस पत्र को भी वे पी गये, मुझे इसका भी कोई उत्तर नहीं मिला। मुझे मेरे मित्रों ने समझाया, कि घी सीधी उंगली से नहीं निकलता, मुझे चाहिये कि श्री-गोयल को बाकायदा नोटिस दूं। अन्त में मैंने भी यही उचित समझा, कि एम० एल० ए० साहब को वकील द्वारा नोटिस दे दिया जाय। एम० एल० ए० साहब के लिये यह सम्भव नहीं था, कि वकील के नोटिस की वे उपेक्षा कर सकते। बदायूं के उनके वकील ने मेरे नोटिस का जवाब दिया। उसमें उन्होंने लिखा, कि यह सरासर गलत है, कि शर्माजी ने १३ रु० रोज के हिसाब से किराया देना स्वीकार किया था। होटल मॉडर्न का भोजन सहित रेट १२ रु० दैनिक है, अतः जब भोजन के बिना कमरा लिया जाय, तो उसका किराया ५ रु० दैनिक से अधिक हो ही नहीं सकता। मैं श्री-गोयल की पोजीशन का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें 'ब्लैक मेल' करने का यत्न कर रहा हूं, और अगर मैं अपनी इस बेजा हरकत से बाज नहीं आया, तो वे मुझ पर 'ब्लैक मार्केट' रेट चार्ज करने का मुकदमा दायर कर देंगे। एम० एल० ए० साहब इस बात के लिये उत्सुक हैं, कि मामला आगे न बढ़े, अतः वे २०० रु० की बजाय ३०० रु० देने को तैयार हैं, यद्यपि इतना किराया देना वे किसी भी तरह न्याय्य व उचित नहीं समझते, पर अपनी हैसियत को निगाह में रखते हुए और मुझ सदृश होटलवाले से बेकार झगड़े में उलझना मुनासिब न समझते हुए ३०० रु० का चेक साथ भेज रहे हैं। अगर यह चेक मैंने बैंक भेज दिया, तो इसका मतलब यह होगा, कि यह रकम मुझे चुकती हिसाब में स्वीकार है। यदि यह स्वीकार न हो, तो इस चेक को वापस लौटा दिया जाय। अगर मैंने किराये की वसूली के लिये बाद में कोई झगड़ा किया, तो उससे श्रीगोयल का जो खर्च होगा या उन्हें जो नुकसान पहुंचेगा, उसके हरजाने के लिये मैं जिम्मेवार हूंगा।

मेरे वकील ने एम० एल० ए० साहब के वकील के जवाब पर गम्भी-रता-पूर्वक विचार किया। उन्होंने मुझे सलाह दी, कि तीनसौ रुपये स्वीकार

कर लेने में ही मेरा हित है। मेरे पास इस बात का कोई सबूत नहीं है, कि शर्माजी मुझसे १३ रु० रोज के हिसाब से किराया देना स्वीकृत कर गये थे। शर्माजी अदालत में सत्य बोलने की शपथ लेकर भी सच्ची बात कहेंगे, इसकी सम्भावना बहुत कम है। सच बोलने पर वे गोयल साहब की नौकरी में नहीं रह सकेंगे। अदालत में गवाही देते हुए सच बोलने की शपथ अवश्य ली जाती है, और वह भी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को सर्वत्र हाजिर-नाजिर मानकर। पर यह शपथ केवल एक जाब्ते की बात होती है। आखिर, मैंने भी यही तय किया, कि जहर का घूट पीकर ३०० रुपये स्वीकृत कर लूं। श्रीमान् गंगाशरण गोयल एम० एल० ए० करोड़पति आदमी है, लाखों रुपया वार्षिक उन्हें अपनी जमींदारी व फार्मों से आमदनी है, सूद भी उनका कारोबार है। सरकार, समाज और सार्वजनिक जीवन में सर्वत्र उनका मान है। पहाड़ के समान ठोस और गेंडे के समान शक्ति-सम्पन्न इस आदमी से मुकदमा करके मेरा ही नुकसान होता। तुलसी ने ठीक कहा था—"समरथ को नहिं दोस गुसाईं।" श्रीगोयल समर्थ थे, राज-शक्ति, धन-शक्ति सब उनके हाथ में थी। अदालत का यही फैसला होता, कि इतना प्रतिष्ठित व्यक्ति कैसे झूठ बोल सकता है? ऐसे धनी-मानी व्यक्ति को क्या गरज थी, कि ७८० रु० जैसी छोटी-सी रकम के लिये झगड़ा करना?

जब कभी मैं श्रीगोयल का स्मरण करता हूं, तो बदायूं जिले के हजारों गरीब किसानों के समान सूर्य भगवान् से यह प्रार्थना तो नहीं करता कि उनके वंश का उच्छेद हो जाय, पर यह अवश्य सोचता हूं, कि क्या कभी वह समय भी भारत में आयगा, जब इस प्रकार के मनुष्य समाज में प्रतिष्ठित न समझे जाकर उन चोरों व डाकुओं में गिने जाने लगेंगे, जो दूसरों के माल पर डाका डालकर अपना गुजारा करते हैं?

(९)

## नवाब जुल्फिकार अली खां

जिस दिन श्रीगंगाशरण गोयल्ल एम० एल० ए० होटल मॉडर्न में पधारे थे, उसी दिन (२६ मई) दोपहर बाद एक रिक्शा बड़ी तेजी के साथ आकर मेरे दफ्तर के आगे आ खड़ी हुई। एक सज्जन रिक्शा से उतर-कर सीधे दफ्तर में आये, और मुझे देखते ही खुशी से चिल्लाकर बोले—"हलो, तुम यहां कहां ?" जब मैं इन सज्जन को नहीं पहचान सका, तो उन्होंने फिर कहा—"अरे भाई, इतनी जल्दी भूल गये, क्या लण्डन की मुलाकात का तुम्हें जरा भी स्मरण नहीं रहा?" अब मुझे याद आया, होटल मॉडर्न के ये नये यात्री नवाब जुल्फिकार अली खां थे, जिनसे लण्डन में मेरी भेंट हुई थी। जिन दिनों मैं लण्डन में शिक्षा प्राप्त कर रहा था, नवाब साहब यूरोप की यात्रा करते हुए लण्डन आये थे, और उसी होटल में ठहरे थे, जहां मैं ठहरा हुआ था। वहां उनके ठाठ-बाट को देखकर मैं आश्चर्य अनुभव किया करता था और नवाब साहब व अपनी आर्थिक स्थिति में भारी अन्तर होने के कारण मैंने उनके साथ घनिष्ठता उत्पन्न नहीं की थी। दो मिनट की बातचीत से नवाब साहब ने मेरे बारे में सब कुछ जान लिया। सैनिक सेवा से अवकाश ग्रहण कर मैंने होटल मॉडर्न ले लिया है, यह जानकर उन्होंने प्रसन्नता प्रगट की। वे होटल मोडर्न से भली भांति परिचित थे, और कई बार वहां ठहर चुके थे। उन्होंने पूछा—"क्या १०१-१०२ नम्बर के कमरे खाली हैं ?" मैंने कहा 'हां'। उन्होंने उन्हें रिजर्व करने के लिये आफिस के बाबू को आदेश दिया, और जेब से अपनी चेकबुक निकालकर मुझसे कहा—कहिये, कितने का चेक काट दूं ? यह मालूम करके कि वे इन कमरों को पूरी सीजन (अक्टूबर के अन्त तक) के लिये चाहते हैं, और भोजन के बारे में वे स्वतन्त्र रहना चाहते हैं, मैंने हिसाब करके २४०० रु० किराया उन्हें बता दिया। नवाब साहब को निश्चय करने में

एक मिनट भी नहीं लगा। २४०० रु० का चेक लिखकर उन्होंने दफ्तर के बाबू के हाथ में दे दिया, और मुझसे बोले—"चलो भाई, जरा बाररूम में चले चलें। बहुत दिनों बाद मिले हो, कुछ देर साथ बैठकर बातचीत तो करें।" नवाब साहब के साथ में बाररूम में गया, पर वहां बारमैन गैर-हाजिर था। बेयरे को भेजकर तुरन्त उसे बुलाया गया। नवाब साहब को देखकर बारमैन की बांछे खिल गईं। वह उनसे भली भांति परिचित था। उसने उन्हें झुककर सलाम किया। नवाब साहब ने पूछा—कहो, चन्दन-सिंह, अच्छे तो हो? क्या बात है, बाररूम खाली क्यों पड़ा है? चन्दनसिंह ने जवाब दिया—हुजूर, अब तो जमाना ही बदल गया। जब से साहब लोग गये हैं, होटल मॉडर्न में वह बात ही नहीं रही। अब यहां पीने के लिये कौन आता है? अव्वल तो देसी लोग शराब पीते ही नहीं, जो पीते भी हैं, वे भी बाजार से बोतल खरीद लाते हैं, और होटल से सोडा और गिलास मंगाकर अपने कमरे में ही पीने का शौक पूरा कर लेते हैं। लोग हिसाब लगाते हैं, स्काच ह्विस्की की बोतल बाजार में पच्चीस रुपये में मिलती है। दो रुपया एक पेग का खर्च हुआ, दो आने में सोडे की बोतल ले ली। होटल के बाररूम में ह्विस्की के एक पेग की कीमत ३।।) है। जब दो रुपया दो आने में पीने का शौक पूरा हो सकता है, तो उसके लिये वे साढ़े तीन रुपया क्यों खर्च करें। नवाब साहब चन्दनसिंह की बात सुनने की मूड में नहीं थे। वे मुझसे बात करने को उत्सुक थे। उन्होंने तुरन्त दो पेग ह्विस्की लाने का हुकुम दिया, और मुझसे गपशप लड़ाने बैठ गये।

कोई एक घण्टे तक नवाब साहब से बातें होती रहीं। इस बीच में उन्होंने ह्विस्की के आठ पेग अपने गले के नीचे उतार लिये। उनकी इच्छा थी, कि होटल के कुछ अन्य मेहमान भी उनकी ड्रिन्क-पार्टी में शामिल हो जावें। मैंने कतिपय भद्र पुरुषों व महिलाओं से नवाब साहब का परिचय भी कराया। पर नवाब साहब का रंग नहीं जमा। उन्हें शीघ्र ही गगानगर से वापस भी लौटना था। वे केवल एक दिन के लिये अपने निवास को इस-

जाम करने के लिये वहां आये थे। मुझे यह आदेश देकर कि उनके कमरों को ठीक करा दिया जाय, वे शीघ्र ही वापस चले गये और यह कह गये, कि वे किसी भी दिन रामनगर लौट आवेंगे। तुरन्त उनके लिये दो प्राइवेट खिदमतगारों और पांच झम्पानियों (रिक्शा खींचनेवाले कुलियों) का प्रबन्ध कर दिया जाय। जिस दिन ये नौकर मिल जावें, इन्हें नौकरी में रख लिया जाय। इनकी तनख्वाह उसी दिन से शुरू हो जायगी, चाहे नवाब साहब को आने में कुछ सप्ताहों की देरी भी क्यों न हो जाय।

२६ मई को सायंकाल नवाब साहब रामनगर से वापस गये, अगले दिन सुबह ही उनके लिये खिदमतगारों और झम्पानियों की भरती कर ली गई। होटल का हेड खिदमतगार और बारमैन चन्दनसिंह नवाब साहब की दरयादिली से भलीभांति परिचित था, उसने उनके लिये तुरन्त कुशल नौकरों को लाकर खड़ा कर दिया। दस दिन बाद नवाब साहब का मुंशी एक गाड़ी असबाब और छः नौकरों को लेकर होटल मॉडर्न आ पहुंचा। यह असबाब नवाब साहब के लिये रिजर्व किये गये कमरों में सलीके से लगा दिया गया। खिदमतगारों और झम्पानियों को लाल रंग के लम्बे-लम्बे कोट और सिर पर बांधने के लिये सफेद साफे दे दिये गये। यद्यपि नवाब साहब अभी रामनगर नहीं आये थे, पर उनके नौकरों को हुकुम था, कि वे उनके कमरों के बाहर बारी-बारी से उसी ढंग से ड्यूटी दें, जैसे कि नवाब साहब के हाजिर होने पर उन्हें देनी होगी। नवाब साहब के नौकरों के निवास के लिये पांच क्वार्टर रिजर्व करने का आदेश भी मुंशीजी साथ लाये थे, और इनके किराये का ३०० रु० का चेक उन्होंने होटल मॉडर्न पहुंचते ही मेरे सुपुर्द कर दिया था। नवाब साहब को मालूम था, कि मेरे होटल में प्रत्येक क्वार्टर का सीजन भर का किराया ६० रु० होता है, अतः उन्होंने बिना कहे ही यह किराया भी पेशगी भेज दिया था।

१५ जून को नवाब साहब रामनगर तशरीफ लाये। उनके कमरे पहले से ही तैयार थे। एक दर्जन के लगभग उनके नौकर भी प्रतिदिन के

समान अपनी ड्यूटी पर तैनात थे। वे सीधे होटल के डाइनिंग हॉल में आये, और कुछ समय तक सुरापान करने के बाद भोजन के लिये मेज-कुर्सी पर बैठ गये। पर उन्हें अकेले खाना खाने की आदत नहीं थी। होटल में अन्य किसी से उनकी जान-पहचान नहीं थी। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया, कि आज का भोजन मैं उनके साथ उनके मेहमान के रूप में करूं। अपने भोजन का पैसा उन्हें पृथक् रूप से देना था, उन्होंने कमरे बिना खाने के लिये थे। वे भोजन के बारे में आजाद रहना चाहते थे, जहां चाहें खावें और जब चाहें खावें। मुझे निमन्त्रित करते ही उन्होंने साफ-साफ कह दिया, कि क्योंकि मैं उनके मेहमान के रूप में भोजन कर रहा हूं, अतः मेरे लंच का पैसा भी होटल के बिल में शामिल होगा। मैंने उन्हें समझाया, कि मुझे तो भोजन करना ही है, यदि उनके साथ बैठकर लंच खा लिया, तो इससे क्या अन्तर आयगा। पर उन्होंने मेरी एक न सुनी, और मुझे इस बात के लिये विवश किया, कि अपने भोजन की कीमत को भी मैं उनके बिल में शामिल करूं। उन्होंने स्वयं होटल के बाबू को बुलाकर आदेश दिया, कि दो लंचों का वाउचर बनाकर ले आवे। उस पर दस्तखत करके उसे उन्होंने बाबू के सुपुर्द कर दिया। बाबू को उन्होंने यह भी कहा--कल कोई तीस आदमी उनके साथ भोजन करेंगे, उनके लिये खास भोजन बनेगा। बाद में आकर वह उनसे उसके लिये आर्डर ले जायं। नवाब साहब मुझसे होटल-सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं की बात नहीं करते थे। वे कहते थे, तुम तो मेरे दोस्त हो। दोस्त के साथ बिजनेस की बात करना बेजा है।

यहां यह उचित है, कि मैं नवाब साहब के सम्बन्ध में कुछ परिचय पाठकों को दे दूं। वे शाहजहांपुर जिले के एक बहुत बड़े जमींदार थे। कोई साठ गांवों के वे मालिक थे। जमींदारी के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति की भी उनके पास कमी नहीं थी। बड़ी-बड़ी कम्पनियों में उनके शेयर थे, और इनसे डिविडेन्ड (मुनाफे) के रूप में हजारों रुपया उन्हें प्राप्त होता था। नवाब साहब की आयु अभी ३२ साल की थी। वे इकहरे बदन के

नौजवान थे, और अंग्रेजी वेश-भूषा में रहते थे। अभी उन्होंने विवाह नहीं किया था। उनका सारा समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत होता था, सुरा-पान करने का उन्हें बेहद शौक था। महायुद्ध (१९३९-४५) से पहले वे हर साल अपनी गर्मियां यूरोप में व्यतीत किया करते थे। महायुद्ध के सालों में वे रामनगर, मसूरी, नैनीताल आदि पहाड़ी नगरों में आने लगे थे। उनकी तबियत बहुत रंगीली थी, वे रुपये को पानी की तरह बहाते थे और अपने दोस्तों के लिये खर्च करने में उन्हें हार्दिक आनन्द अनुभव होता था। अपने नौकरों के प्रति उनका व्यवहार बहुत अच्छा था, उन्हें वे अच्छा वेतन देते थे, और उनके आराम का पूरा खयाल रखते थे। यही कारण है, कि नौकर भी उनके लिये सब तरह का कष्ट उठाने और उनके लिये अपनी जान तक देने के लिये सदा उद्यत रहते थे।

अगले दिन नवाब साहब की डिनर-पार्टी में खूब रौनक रही। बारह भद्र पुरुष और अठारह महिलायें इस पार्टी में शामिल हुईं। मुझे भी इस में शामिल होने के लिये निमन्त्रण दिया गया था। डिनर का समय रात के आठ बजे था, पर मेहमान सांझ को छः बजे ही आने शुरू हो गये थे। नवाब साहब सबका हंस-हंसकर स्वागत करते और सुरा द्वारा उनका आतिथ्य करते। होटल मॉडर्न के बाररूम से नवाब साहब निराश हो गये थे, उच्च कोटि की शराबों का वहां अभाव था। पर नवाब साहब की अपनी बैठक में उनकी अपनी प्राइवेट बार सजी हुई थी, जिसमें एक से एक बढ़िया शराब मौजूद थी। नवाब साहब को अपनी बार का वैसा ही ही अभिमान था, जैसा कि किसी विद्याप्रेमी को अपने पुस्तकालय का होता है। अपनी बार के बारमैन वे खुद थे। वे बड़े शौक के साथ शराब की बोतलें खोलते, और उन्हें गिलासों में ढालकर अपने मेहमानों को देते थे। यह ह्विस्की १५० साल पुरानी है, यह शाम्पेन लुई १४ वें के जमाने की है, और इस किसम की वाइन बम्बई व कलकत्ता में भी मिलनी मुश्किल है। गिमलेट बनाते तो सब हैं, पर इसका असली नुसखा कोई नहीं जानता।

नवाब साहब बड़े अभिमान से कह रहे थे, कि जब वे पेरिस के होटल नार्मान्दी में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने इस ढंग का गिमलेट पिया था। इसका तरीका जानने के लिये उन्होंने होटल नार्मान्दी के बारमैन को ५०० रुपये दिये थे। नवाब साहब किसी वाइन के रंग को देखकर या उसका एक घूंट पीकर ही यह जान जाते थे, कि वह कितनी पुरानी है, और किस वाइन-यार्ड के अंगूरों से उसका निर्माण हुआ है। उनकी डिनर-पार्टी के मेहमान बड़े शौक के साथ नवाब साहब की शराब का आस्वाद लेने में तत्पर थे। बात की बात में समय बीत गया और डिनर का समय हो गया। होटल मॉडर्न के विशाल डाइनिंग हॉल में एक बड़ी मेज नवाब साहब की डिनर-पार्टी के लिये सजाई गई थी। मेज पर रंग-बिरंगे फूलों के गुल्दस्ते सुसज्जित थे। डिनर शुरु हुआ, सब तरह के खाद्य पदार्थ वहां मौजूद थे। अंग्रेजी, यूरोपियन, हिन्दुस्तानी, मुगलाई, चीनी आदि कितनी ही तरह की डिशें इस डिनर-पार्टी के लिये विशेष रूप से तैयार कराई गई थीं। तरह-तरह के मेवों और मसालों से भरे हुए साबुत मुर्ग, महकदार पुलाव और फलों व क्रीम के सम्मिश्रण से बना हुआ गातो पुडिंग इस डिनर की स्पेशल डिशें थीं। नवाब साहब के मेहमानों ने डिनर को खूब पसन्द किया। खुद नवाब साहब तो अपने मेहमानों को शराब पिलाते हुए स्वयं इतना अधिक सुरापान कर चुके थे, कि उन में डिनर के गुण-दोषों को जांचने की शक्ति ही नहीं रही थी। उन्होंने कहा—डिनर बहुत अच्छा बना है, क्योंकि मेहमान लोग उसकी तारीफ करते हैं। उन्होंने होटल के बड़े खानसामा को बुलाया, और खुश होकर इनाम के तौर पर तीस रुपये उसके हाथ में रख दिये। खानसामा को इनाम मिलते देखकर बटलर ने भी नवाब साहब को झुककर सलाम किया, उसे भी बीस रुपये इनाम में मिले। होटल का माली भी एक कोने में चुपचाप खड़ा था, उन्होंने पूछा—तुम कैसे खड़े हो? माली ने कहा—बन्दा हजूर का गुलाम है, गुल्दस्ते बनाकर लाया था। उसे भी दस रुपये का नोट मिल गया।

नवाब साहब के मेहमान डिनर खाकर फिर उनकी बैठक में एकत्र हुए। फिर शराब का दौर शुरू हुआ। अब नवाब साहब अपने पूरे रंग में आ गये थे। वे आग्रह के साथ प्रत्येक स्त्री-पुरुष के हाथ में शराब से भरे गिलास पकड़ा रहे थे, और एक गिलास अभी खतम भी नहीं होने पाता था, कि दूसरा गिलास हाजिर कर देते थे। मेहमानों पर शराब का रंग जमने लगा था। महिलाओं के अंग शिथिल पड़ने लगे थे, और उन्हें अपने वस्त्रों की सुध-बुध नहीं रह गई थी। भद्र पुरुषों की आंखों में लाली आ गई थी, और वे पड़ोस में बैठी हुई महिलाओं की तरफ घूर-घूरकर देखने लग गये थे। रात के बारह बजे तक नवाब साहब की पार्टी जारी रही। इस समय तक शराब की कितनी बोतलें खाली हो गई, और सिगरेट की कितनी टिनें फुक गईं, इसका अन्दाज करना मेरे सामर्थ्य से बाहर की बात है। मेहमानों को अपने-अपने मकानों तक पहुचाने के लिये रिक्शायें तैयार खड़ी थीं। नवाब साहब के मेहमान जब उनकी बैठक से निकलकर रिक्शाओं पर सवार हुए, तब वे अपनी सुध को बहुत कुछ खो चुके थे। पर रिक्शा-कुली उनके मकानों को भली भांति जानते थे। वे उन्हें वहां पहुंचा आये और नवाब साहब भी थककार अपने बिस्तर पर लुढ़क गये।

नवाब साहब जब तक होटल मॉडर्न में रहे, उनका जीवनक्रम इसी तरह चलता रहा। वे सुबह दस बजे सोकर उठते थे। उनका हुकम था, कि उनकी छोटी हाजरी सुबह ठीक सात बजे उनके कमरे में पहुंचा दी जाय। हाजरी की चाय पड़ी-पड़ी बरफ के समान ठण्डी हो जाती थी, टोस्ट सूखकर कड़े पड़ जाते थे। नवाब साहब ने कभी उन्हें छुआ तक नहीं, पर दस बजे नींद से जागने पर उन्हें यह देखकर परम सन्तोष होता था, कि उनकी चाय पलंग के पास मेज पर रखी है। वे उठकर दांतों पर ब्रश फेरते थे, और रात की पोशाक उतारकर कोट-पैन्ट पहन लेते थे। इस बीच में उनका प्राइवेट खिदमतगार बड़ी हाजरी (ब्रेकफास्ट) मेज पर सजा देता था। पर नवाब साहब एक प्याला चाय पीकर बस कर देते थे।

उनकी असली खुराक शराब थी, पर इसका मजा उन्हें तभी आता था, जब कोई दोस्त साथ देनेवाला हो। अकसर वे मुझे कहला भेजते थे, कि यदि फुरसत हो तो थोड़ी देर के लिये आ जाऊं। पर उन्हें मालूम नहीं था, कि मुझे शराब पीने की आदत नहीं है। वे स्वप्न में भी यह खयाल नहीं कर सकते थे, कि बीसवीं सदी में कोई भद्र पुरुष ऐसा भी हो सकता है, जो शराब न पिए। वे मुझसे बार-बार आग्रह करते, कि मैं भी सुरापान में उनका साथ दूं। पर मैं कोई न कोई बहाना बनाकर उन्हें टाल दिया करता था। कभी-कभी उनका मन रखने के लिये मैं एक गिलास बीयर या शाम्पेन या एक पेग ह्विस्की पी भी लेता था। मेरे हाथ में गिलास देखकर उनका मन खुशी के मारे नाचने लगता था। जिस प्रकार एक गायक के लिये साज की आवश्यकता होती है, वैसे ही नवाब साहब को सुरापान का स्वाद लेने के लिये एक साथी की आवश्यकता होती थी। साथी कितना पीता है, इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं थी। उनके लिये यही पर्याप्त था, कि कोई दोस्त सामने बैठा है, उसके हाथ में भी गिलास है, और वह भी कभी-कभी चुस्की भर लेता है। जितने समय में मैं एक पेग पीता था, वे आधी बोतल खतम कर देते थे। नवाब साहब के साथ बैठे हुए जो बातचीत चलती थी, वह भी कम मजेदार नहीं होती थी। कभी नवाब साहब कहते, आज उन्हें बहुत काम है। चार चिट्ठियां आई पड़ी हैं, उनका जवाब देना है। क्या ही अच्छा होता, अगर वे अपना स्टेनोटाइपिस्ट भी साथ ले आते। फिर वे कहते, मेरा पेशकार भी कितना बेवकूफ है। उसे कितना समझाया, कि मैं रामनगर आराम करने के लिये जा रहा हूं, कोई चिट्ठी मुझे न भेजी जाय। पर फिर भी उसने ये चार चिट्ठियां भेज ही दीं। वे मुझे अपनी चिट्ठियां दिखाते, फिर उनके जवाब का मसविदा तैयार करते, फिर उसे खुद टाइप करते। अगले दिन मुझे कहते, कल का सारा दिन चिट्ठियां लिखने में बीत गया, ओह कैसी मुसीबत है! कम्बख्त पेशकार कुछ दिन भी तो आराम नहीं करने देता। कभी-कभी देश की राजनीति

पर भी बात चल जाती। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या पर नवाब साहब के विचार बहुत उदार थे। एक दिन वे सुनाने लगे, कि अक्तूबर, १९४७ में जब शाहजहांपुर में हिन्दू-मुस्लिम-दंगे हो रहे थे, बहुत से मुसलमान हिन्दुस्तान को छोड़कर पाकिस्तान जाने की तैयारी करने लगे। मैं जिले के कलेक्टर के पास गया और मैंने उससे साफ-साफ कह दिया, कि हिन्दुस्तान मेरा वतन है, यहां मैं पैदा हुआ, यहीं रहूंगा और यहीं मरूंगा। कलेक्टर साहब ने उनसे कहा, यदि वे चाहें तो उनके जान-माल की रक्षा के लिये स्पेशल पुलीस का इन्तजाम किया जा सकता है। पर नवाब साहब ने जवाब दिया, मैं एक बड़ा जमींदार हूं, अपनी रियाया से मोहब्बत करता हूं, मैं अपनी जमींदारी में रहूंगा, देखें कौन मुझ पर उंगली उठाता है। उनकी रियाया में ९० फी सदी लोग हिन्दू थे। नवाब साहब अभिमान के साथ सुनाते थे, कि कभी किसी हिन्दू ने उनके खिलाफ उंगली तक नहीं उठाई। वे अपनी जमींदारी में स्वच्छन्दता के साथ घूमते-फिरते रहे, रैयत के लोग पहले की ही तरह उनका आदर करते रहे। एक बार भारत के विभाजन और पंजाब के पैशाचिक हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में भी नवाब साहब से बात चल पड़ी। वे कहने लगे, तुम हिन्दू हो, मैं मुसलमान हूं। पर हम दोनों दोस्त हैं। सारे भारत में हिन्दू और मुसलमान दोस्तों की तरह रहते थे। जो वे एक दूसरे के दुश्मन हो गये, उसकी सारी जिम्मेदारी उन पालिटिशियन लोगों पर है, जो खुद पागल थे, और जिन्होंने जनता को पागल कर दिया। दुनिया में जितने भी दंगे व युद्ध होते हैं उन सबकी जड़ में ये पालिटिशियन लोग ही होते हैं। अगर दुनिया में अमन-चैन रखनी हो, तो इन नेताओं के दिमाग की समय-समय पर परीक्षा होती रहनी चाहिये। जब उनमें पागलपन का निशान प्रगट होने लगे, तो उन्हें पागलखाने में भेज देना चाहिये।

नवाब साहब कांग्रेसी नहीं थे, पर अपने वतन के लिये उनके दिल में मोहब्बत थी। उन्होंने कई बार मुझे कहा, मैं तो सिपाही हूं, सिपाही

खानदान में पैदा हुआ हूं। अगर कोई भी गैर-मुल्क हिन्दुस्तान पर हमला करेगा, तो उसकी रक्षा के लिये मैं अपना खून तक बहा दूंगा। वे कहते थे, मुझे पोलिटिक्स के झगड़ों में क्या मतलब? कांग्रेसी सरकार जो कुछ कर रही है, ठीक है। जमींदारी-प्रथा का अन्त होने में ही देश का लाभ है। अब वह जमाना नहीं रहा, जब कोई आदमी दूसरों की कमाई से अपना गुजर कर सके। कभी-कभी वे यह भी विचार किया करते थे, कि जमींदारी का खातमा हो जाने पर वे क्या काम करेंगे। कई कारोबारों की स्कीम बनाते, और फिर परेशान होकर कह उठते—भाई! बिजनेस तो मुझसे होगा नहीं, जाति का पठान हूं, सबसे अच्छा यह होगा, कि फौज में भरती हो जाऊं, अभी कौन सा बूढ़ा हो गया हूं, जल्दी ही बड़ा फौजी अफसर हो जाऊंगा और अपना गुजर आराम से चलने लगेगा।

हां, मै नवाब साहब की दिनचर्या आपको बता रहा था। ग्यारह बजे तक ब्रेकफास्ट व सुरापान से निबटकर वे नित्य-कर्मो में लग जाते। एक बजे लंच का समय हो जाता और लंच खाकर वे फिर आराम करने के लिये बिस्तर पर लेट जाते। चार बजे के लगभग उनकी मित्रमण्डली जुटने लगती, शराब का दौर चलने लगता और कुछ देर तक गपशप के बाद वे अपने मित्रों को साथ ले सैर को निकल पड़ते। झम्पानी लोग रिक्शा लेकर पीछे-पीछे चलते। नवाब साहब रिक्शा पर बहुत कम बैठते थे, पर यह जरूरी था, कि झम्पानी लोग रिक्शा लेकर उनके साथ-साथ रहें। होटल मॉडर्न से चलकर वे रामनगर-क्लब जा पहुंचते, वहां उनके अन्य मित्र भी उनकी प्रतीक्षा में होते थे। क्लब में फिर शराब का दौर शुरू हो जाता, सांझ का डिनर नवाब साहब प्रायः क्लब में ही खाया करते थे। पर आवश्यक था, कि होटल मॉडर्न से भी उनका डिनर उनके कमरे में पहुंचा दिया जाय। रात को बारह-एक बजे जब वे क्लब से लौटते, तो डिनर को ठण्डा होते देखकर उन्हें परम सन्तोष अनुभव होता था। वे उस पर नजर डाल लेते थे, और यदि इच्छा हुई तो उसमें से एक-आध चीज मुंह

में भी रख लेते थे। नवाब साहब ने होटल मॉडर्न में अपने कमरे बिना खाने के लिये थे, भोजन का मूल्य उन्हें अलग से देना था। पर फिर भी वे यह जरूरी समझते थे, कि क्लब में डिनर खा लेने पर भी होटल मॉडर्न में डिनर लेते रहें। उन्हें यह बात अपनी हैसियत व मर्यादा से नीचे प्रतीत होती थी, कि होटल से ब्रेकफास्ट व लंच तो लिया जाय और डिनर के लिये होटलवालों को मना कर दिया जाय। इससे होटलवाले समझते, कि नवाब साहब रुपये की बचत करने के लिये डिनर से मना कर जाते हैं।

एक महीने के लगभग रामनगर रहकर नवाब साहब अपनी जमींदारी में वापस लौट गये। पर क्योंकि उन्हें फिर वापस लौटकर आना था, अतः खिदमतगारों और झम्पानियों को बदस्तूर नौकरी में रखा गया। वे उनके कमरों के सामने नियमपूर्वक ड्यूटी देते थे, रोज वर्दी पहनकर खड़े होते थे। नवाब साहब किसी भी क्षण वापस आ सकते थे, और उनका यह आदेश था, कि उनके नौकर हर समय ड्यूटी पर रहें। पर जुलाई और अगस्त के महीने प्रतीक्षा में बीत गये, नवाब साहब रामनगर लौटकर नहीं आये। नौकरों का वेतन ठीक तारीख को उन्हें मिल जाता था, पेशकार ठीक समय पर उनका वेतन मनीआर्डर से भेज देता था। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर सितम्बर में नवाब साहब फिर रामनगर आये। फिर एक बार होटल मॉडर्न में रौनक आ गई। फिर पहले के समान नवाब साहब की बैठक में मित्रमण्डली एकत्र होने लगी।

मुझे पाठकों को यह बताते हुए अत्यन्त दुःख होता है, कि आज नवाब जुल्फिकार अली खां इस संसार में नहीं हैं। अगस्त, १९४९ में वे इस असार संसार को छोड़कर उस लोक में चले गये, जिसके सम्बन्ध में मनुष्य को कुछ भी ज्ञान नहीं है। मैंने सुना है, कि एक दिन जब वे लंच खाकर और सुरापान करके आराम करने के लिये बिस्तर पर लेटे, तो फिर नहीं उठे। डाक्टरों का कहना था, कि अत्यधिक सुरापान के कारण नवाब साहब के फेफड़े कमजोर हो गये थे, और उनके हृदय में अधिक शक्ति नहीं रही थी।

इसमें सन्देह नहीं, कि शराब की लत और अनियमित व अनियन्त्रित जीवन के कारण नवाब साहब युवावस्था में ही इस संसार से विदा हो गये।

पर इस प्रसंग से मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, कि नवाब साहब एक दरियादिल आदमी थे। उनका हृदय विशाल था और वे बड़े मौजी जीव थे। समाज के दूषित संगठन ने उनके हाथों में अपार सम्पत्ति को दे दिया था, और इस सम्पति का सबसे अच्छा उपयोग उन्हें यही समझ पड़ता था, कि दिल खोलकर खर्च किया जाय। भोगविलास उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। यदि नवाब जुल्फिकार अली खां करोड़पति जमींदार न होते, उन्हें अपनी मेहनत से रुपया कमाने के लिये विवश होना पड़ता, तो वे समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी पुरुष साबित हो सकते थे। उनमें वैयक्तिक गुणों का अभाव नहीं था, वे एक साहसी और निडर व्यक्ति थे। अपने साथियों के प्रति उनमें सहृदयता की भावना थी। ऐसा व्यक्ति अपने देश व समाज के लिये कितना अधिक उपयोगी हो सकता था। पर परिस्थितियों ने उन्हें विलासी बना दिया था। मैं इसके लिये नवाब साहब को दोष नहीं दूंगा। इसके लिये वह सामाजिक संगठन जिम्मेदार है, जिसमें वे उत्पन्न हुए थे।

## (१०)

## मामा-भानजे

२७ मई को मुझे अहमदाबाद से एक एक्सप्रेस टेलिग्राम मिला, जिसमें यह अनुरोध किया गया था, कि होटल मॉडर्न के दो बढ़िया सिंगल रूम मि० मास्टर और मि० मेहता के लिये रिजर्व कर दिये जावें। होटल में बहुत से कमरे खाली पड़े थे, अतः इस तार को प्राप्त कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। २९ मई को मि० मेहता होटल मॉडर्न पधार गये। ये एक सुन्दर नवयुवक थे और बम्बई के सिनहृड्स कालिज के विद्यार्थी थे। रामनगर के सुन्दर दृश्यों ने इनके मन को मोह लिया। होटल मॉडर्न भी इन्हें

बहुत पसन्द आया, और अपने मिलनसार स्वभाव के कारण ये होटल के अन्य मेहमानों में खूब हिल-मिल गये। होटल मॉडर्न में अनेक नवयुवती कुमारियां भी ठहरी हुई थीं। मि० मेहता की इनके साथ अच्छी दोस्ती हो गई, और ये बड़े आनन्द के साथ अपने दिन बिताने लगे। मैंने इनसे पूछा, मि० मास्टर अभी क्यों नहीं आये, एक कमरा उनके लिये भी रिजर्व है। मि० मेहता ने उत्तर दिया, मि० मास्टर अभी अहमदाबाद में ही हैं। ये एक वृद्ध सज्जन हैं, और उनका आदेश है, कि एक सप्ताह होटल मॉडर्न में ठहरकर तुम यह देख लो, कि यह होटल उनके लिये उपयुक्त है या नहीं। यदि वहां भोजन आदि की ठीक व्यवस्था हो, और रामनगर की जलवायु भी अच्छी हो, तो उन्हें तार दे दिया जाय। तार पाकर वे रामनगर आ जावेंगे। मि० मेहता होटल मॉडर्न की व्यवस्था से भली भांति सन्तुष्ट थे, उनका वहां खूब दिल लग रहा था, अतः एक सप्ताह बाद उन्होंने मि० मास्टर को तुरन्त रामनगर चले आने के लिये तार दे दिया।

८ जून को मि० मास्टर रामनगर आ गये और होटल मॉडर्न में टिक गये। वे मि० मेहता के मामा थे और आयु में साठ साल से कम नहीं थे। होटल मॉडर्न की सफाई व सुव्यवस्था देखकर उनका चित्त प्रसन्न हो गया। यात्रा की थकान के कारण उनका पहला दिन आराम करने में व्यतीत हुआ। एक दिन के विश्राम के बाद जब उनकी थकान मिट गई, तो वे मेरे दफ्तर में आये और मुझसे बात करने लगे। इसी बीच में होटल की मैनेजर मिसेज विन्सेन्ट किसी कार्य से मेरे दफ्तर में आईं। इन महिला का परिचय मैं पहले दे चुका हूं। ये एंग्लो-इण्डियन थीं, और अपने रंग-रूप व रहन-सहन में पूरी यूरोपियन थीं। आयु भी इनकी तीस साल के लगभग थी। इन्हें देखकर मि० मास्टर रीझ गये और प्रथम परिचय में ही उन्हें ड्रिन्क (सुरापान) के लिये निमन्त्रित करने लगे। होटल में सबको यह ज्ञात था, कि मि० मास्टर अहमदाबाद के एक बड़े मिल-मालिक और करोड़पति हैं। होटल के सब कर्मचारियों ने उनके असबाब से ही उनकी

आर्थिक स्थिति का अनुमान कर लिया था। मिसेज विन्सेन्ट उनके अनुरोध को नहीं टाल सकीं, वे मि० मास्टर के साथ बाररूम गई और वहां उन दोनों ने साथ बैठकर आध घण्टे तक सुरापान किया। मि० मास्टर शीघ्र ही सुरा के प्रभाव में आ गये, और उन्होंने मिसेज विन्सेन्ट से पूछा, कि क्या रामनगर में कोई बालरूम (नाचघर) भी है। रामनगर-क्लब में नाच की व्यवस्था थी। मिसेज विन्सेन्ट ने उन्हें बताया, कि वे ५० रुपया प्रवेश-फीस देकर क्लब के सदस्य बन सकते हैं, और वहां जाकर नृत्य कर सकते हैं। बहुत-से पाठक यह नहीं जानते होंगे, कि यूरोपियन ढंग के नाच-घरों में स्त्री-पुरुष एक साथ नृत्य करते हैं। इसे बालरूम-डान्सिंग कहा जाता है। सामने एक ऊंचे प्लेटफार्म पर आर्केस्ट्रा (विविध बाजों का साज) बजता है, और उसकी सुर में ताल मिलाकर स्त्री-पुरुषों के जोड़े एक साथ नृत्य करते हैं। मि० मास्टर ने मिसेज विन्सेन्ट से अनुरोध किया, कि वे आज सायंकाल उनके साथ नाच में चलें और उन्हीं के साथ क्लब में डिनर भी खावें। मि० मास्टर साठ साल के बुड्ढे थे और मिसेज विन्सेन्ट तीस साल की युवती। साठ साल का आदमी भी स्वस्थ व स्वरूपवान् हो सकता है। पर मि० मास्टर की कमर झुकी हुई थी, चेहरे पर झुर्रियां पड़ी हुई थीं। उनके बाल सन के समान सफेद थे और उनकी शकल बन्दर के समान थी। मिसेज विन्स्टेन्ट उनके निमन्त्रण को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हुईं। मि० मास्टर ने उनसे बहुत अनुनय विनय की, पर इन अपरिचित वृद्ध सज्जन की बात मिसेज विन्सेन्ट ने स्वीकार नहीं की। इससे वे बहुत निराश हुए और बाररूम से उठकर सीधे मेरे पास आये। उनका कहना था, कि रामनगर में उनका समय कैसे व्यतीत होगा। वृद्ध होने के कारण वे हिमालय के शिखरों पर चढ़कर प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द तो उठा नहीं सकते, उन्हें कोई साथी चाहिये, जो उनके साथ नृत्य कर सके, उनके आमोद-प्रमोद का साधन बन सके। उन्होंने यह भी कहा, रुपयों की उनके पास कमी नहीं है, वे किसी साथी के लिये अच्छी रकम खर्च करने

को तैयार है। शराब की झोंक में उन्होंने यह भी कह दिया, कि पहाड़ी नगरों में लड़कियों की तो कोई कमी नहीं होनी चाहिये। पर उन्हें कोई ऐसी लड़की चाहिये, जो पूरी तरह से मॉडर्न (आधुनिक) हो, जो उनका मनोरंजन कर सके, और जो डिनर व डान्स में उनका साथ दे सके। इस ढंग के किसी साथी (या साधन) को जुटाने के मामले में मैंने मि० मास्टर से अपनी असमर्थता प्रगट की। इससे वे बहुत निराश हुए। कहने लगे, यहां समय कैसे कटेगा, कमरे में पड़े-पड़े तो वक्त कट नहीं सकता और बाहर घूमने-फिरने की अब उनकी आयु नहीं रही। मुझे मि० मास्टर के साथ हार्दिक सहानुभूति थी। मैंने उनसे कहा, होटल में कितने ही भद्र पुरुष व सुसंस्कृत महिलायें ठहरी हुई हैं, वे उनसे परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करें, उन्हें साथी-संगियों की कमी नहीं रहेगी। पर मि० मास्टर वृद्ध व अपाहिज थे। कौन उनके साथ उठना-बैठना पसन्द करता? निःसन्देह वे अत्यधिक धनी थे, और रुपये को पानी की तरह बहा सकते थे। पर दुनिया में रुपया ही तो सब कुछ नहीं है। रुपये से मनुष्य जो कुछ चाहे, प्राप्त नहीं कर सकता। मि० मास्टर ने कोशिश की, कि अपने भानजे मेहता को ही अपने साथ में रखें। मि० मेहता को सोसायटी की कमी नहीं थी, वे अनेक महिलाओं से दोस्ती कर चुके थे, जब वे डाइनिंग हॉल में भोजन करने बैठते, तो उनके साथ कितने ही नवयुवक व युवतियां होतीं। उनकी टेबुल कहकहों और हंसी-मजाक से गूंजती रहती थी। मि० मास्टर ने सोचा, वे भी अपने भानजे की मण्डली में शामिल हो जावें। पर उन्हें सफलता नहीं हुई, भानजे साहब उनसे आंख बचाने लगे।

मि० मास्टर बहुत उदास थे। इसी समय उन्हें ज्ञात हुआ, कि समीप के एक गांव में हैजे के कुछ केस हो गये हैं। उन्हें यह भी मालूम हुआ, कि खास रामनगर में चेचक की बीमारी फैल रही है, और दो छोटे बालक कुल के अस्पताल में चेचक के कारण प्रविष्ट कराये गये हैं। मि० मास्टर उदास तो पहले ही थे, अब तो उनकी उदासी निराशा की चरम सीमा

तक पहुंच गई। उन्हें अनुभव होने लगा, कि चेचक और हैजे के राक्षस शीघ्र ही उन पर आक्रमण करनेवाले हैं, और इनसे रक्षा कर सकना उनकी शक्ति से बाहर है। वे तुरन्त मेरे पास आये और बोले, कि वे और मि० मेहता आज ही अहमदाबाद वापस जावेंगे, और टेलीफोन द्वारा उनके लिये एक टैक्सी रिजर्व करा दी जाय। सौभाग्य से रामनगर के हेल्थ आफिसर साहब उस समय होटल मॉडर्न मे आये हुए थे। रसोई-घर आदि की सफाई का निरीक्षण करने और होटल में ठहरे हुए उच्च श्रेणी के मेहमानों (विशेषतया सरकारी अफसरों) से परिचय प्राप्त करने के लिये वे अकसर वहा आते रहते थे। उन्होंने मि० मास्टर से कहा, रामनगर में चेचक संक्रामकरूप में नही फैल रही है, और समीप के जिस गांव से हैजे की खबर आई है, वहां से दूध-सब्जी आदि का रामनगर आना बन्द कर दिया गया है। यह भी व्यवस्था कर दी गई है, कि उस गांव में सब लोगों को हैजे का टीका लगा दिया जाय। इस दशा में केवल चेचक व हैजे के डर से रामनगर छोड़कर अहमदाबाद वापस लौट जाना कोई अर्थ नहीं रखता। हेल्थ आफिसर साहब ने यह भी कहा, कि यदि चेचक और हैजे के टीके लगवा लिये जावें, तो इनका कोई भय नहीं रहेगा। यह सुनकर मि० मास्टर को कुछ सान्त्वना मिली। उन्होंने अहमदाबाद वापस लौट जाने का इरादा छोड़ दिया और टैक्सी रिजर्व कराने के लिये जो आदेश दिया था, उसे भी रद्द कर दिया। पर मि० मास्टर का चित्त स्थिर नहीं था। कोई दो घण्टे बाद वे फिर होटल के दफ्तर में आये, और मुझसे बोले, कि हेल्थ आफिसर साहब को फोन करके टीका लगाने का इन्तजाम कर दिया जाय। थोड़ी देर बाद रामनगर के सेनिटरी इन्स्पेक्टर टीके का सब सामान लेकर होटल मॉडर्न आ गये। मि० मास्टर आफिस में बैठे उनका इन्तजार कर रहे थे। टीका लगाने का इन्तजाम देखकर उन्होंने सन्तोष अनुभव किया। पर अब उन्हें यह चिन्ता सवार हुई, कि पहले हैजे का टीका लगाया जाय या चेचक का। सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब के सम्मुख यह समस्या पहले

कभी उपस्थित नहीं हुई थी । वे इसका कोई समुचित समाधान नहीं कर सके । आखिर हेल्थ आफिसर साहब को फोन किया गया । उन्होंने उत्तर दिया, पहले हैजे का टीका लगवा लें, बाद में चेचक का । पर मि० मास्टर को इससे सन्तोष नहीं हुआ । उन्होंने कहा, किसी बड़े डाक्टर को विजिट पर बुलाकर उससे परामर्श कर लेना उचित होगा । रामनगर के सब डाक्टरों के बारे में मालूम करके उन्होंने यह निर्णय किया, कि डा० हाइकोजोनी को बुलाना ठीक रहेगा । डा० हाइकोजोनी बुलाये गये । उन्होंने बड़ी गम्भीरता से मि० मास्टर की समस्या पर विचार किया । उनका निर्णय भी यही था, कि पहले हैजे का टीका लगवा लिया जाय । डा० हाइकोजोनी अपनी फीस लेकर वापस लौट गये, और सैनिटरी इन्स्पेक्टर साहब को फोन द्वारा हैजे का टीका लगाने के लिये बुलाया गया ।

सैनिटरी इन्स्पेक्टर इस बीच में किसी अन्य जरूरी काम पर चले गये थे, उन्हें आने में दो घण्टों की देरी हो गई । जब तक वे होटल मॉडर्न आये, मि० मास्टर का दिमाग फिर चक्कर काटने लग गया था । उन्होंने सोचा, हैजे के केस तो पास के गांव में हुए हैं, पर चेचक तो रामनगर में फैल रही है । अतः उचित यह होगा, कि पहले चेचक का टीका लगवाया जाय । उन्होंने अपना विचार मेरे सम्मुख प्रगट किया । मुझे चिकित्सा-शास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं है, मैं इस विषय में मि० मास्टर को क्या परामर्श दे सकता था ? उधर सैनिटरी इन्स्पेक्टर साहब बैठे हुए हंस रहे थे, और बार-बार परेशान किये जाने के कारण कुछ नाराजगी भी प्रगट कर रहे थे । उन्होंने कहा, अच्छा होगा यदि सिविल सर्जन साहब की भी सलाह ले ली जाय । मि० मास्टर को यह विचार बहुत पसन्द आया । तुरन्त सिविल सर्जन साहब को फोन किया गया, और थोड़ी देर बाद वे भी इस महत्त्व-पूर्ण समस्या पर परामर्श देने के लिये होटल मॉडर्न पधार गये । मि० मास्टर को पहले चेचक हो चुकी थी, शीतला के दाग उनके चेहरे पर विद्य-मान थे । सिविल सर्जन साहब ने सलाह दी, कि अब चेचक के आक्रमण

का विशेष भय नहीं है, अतः यही ठीक होगा, कि वे पहले हैजे का टीका लगवा लें। सिविल सर्जन साहब भी अपनी फीस लेकर विदा हो गये और अब सेनिटरी इन्स्पेक्टर हैजे का टीका लगाने की तैयारी करने लगे। पर मि० मास्टर को अब तक भी पूरा-पूरा सन्तोष नहीं हुआ था। उन्होंने पूछा, क्या ये सेनिटरी इन्स्पेक्टर एम० बी० बी० एस० पास हैं। जब उन्हें नकारात्मक उत्तर मिला, तो वे बोले, इनसे टीका लगवाने में सेप्टिक हो जाने का भय है। अतः अच्छा यह होगा, कि हेल्थ आफिसर साहब खुद आकर उन्हें टीका लगावें। इसके लिये वे उनकी पूरी फीस अदा करने को तैयार हैं। हेल्थ आफिसर को फोन किया गया। उन्होंने जवाब दिया, कि वे सायंकाल पांच बजे होटल मॉडर्न आ सकेंगे।

पर हेल्थ आफिसर साहब के भाग्य में मि० मास्टर से फीस प्राप्त करना नहीं लिखा था। इस बीच में मि० मास्टर के दिमाग ने फिर पल्टा खाया। साढ़े चार बजे के लगभग वे मेरे पास आये और कहने लगे, यहां तबियत नहीं लगती, तफरीह का तो कोई सामान है नहीं, फिर चेचक और हैजे-जैसी दो-दो बीमारियां रामनगर में फैल रही हैं। अतः उन्होंने निश्चय किया है, कि वे अभी अहमदाबाद वापस लौट जावेंगे, उनका बिल तुरन्त तैयार कर दिया जाय। होटल के बाबू ने मि० मास्टर और मि० मेहता का बिल हाजिर कर दिया और उन्होंने तुरन्त बिल की रकमें अदा कर दीं। पर अब एक नई समस्या मि० मास्टर के सम्मुख उपस्थित हुई। उनके भानजे साहब दोपहर को लंच खाते ही अपने कुछ मित्रों के साथ पिकनिक के लिये चले गये थे। खिदमतगार से मालूम हुआ, कि वे रात के आठ बजे तक वापस लौटने को कह गये हैं, और तीसरे पहर की चाय का सामान अपने साथ में ले गये हैं। अब मि० मास्टर क्या करते? अपने भानजे को चेचक और हैजे के खतरे में छोड़कर वे स्वयं अहमदाबाद कैसे वापस लौट सकते थे? यदि कहीं मेहता साहब को चेचक निकल आती या उन्हें हैजा हो जाता, तो वे अपनी बहन को क्या जवाब देते? अब उनके सम्मुख विकट

यही मार्ग शेष था, कि वे एक दिन और रामनगर में व्यतीत करें।

रात के नौ बजे मेहता साहब पिकनिक से वापस आये। मि० मास्टर परेशानी और आशंका की मूर्ति बने हुए अपने भानजे की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर मि० मेहता को अपने मामाजी से बात करने की भी फुरसत नहीं थी। वे डिनर खाने के लिये डाइनिंग हॉल में जा डटे। जब उन्हें मि० मास्टर के अहमदाबाद वापस लौट जाने के फैसले की बात मालूम हुई, तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया, कि मैं किसी भी हालत में वापस नहीं चलूंगा, यदि मि० मास्टर चाहें, तो अकेले अहमदाबाद जा सकते हैं। अब मि० मास्टर के सम्मुख एक अन्य समस्या उपस्थित हुई। भानजे साहब किसी भी दशा में उनकी बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। मामाजी ने उन्हें बहुत समझाया, बहुत अनुनय विनय की, पर मि० मेहता टस से मस नहीं हुए। निराश होकर मि० मास्टर होटल के दफ्तर में आये। पहले उन्होंने अपनी बहन के नाम एक तार दिया। तार यह था—"रामनगर में हैजे और चेचक का प्रकोप है। स्थिति बहुत भयावह है। मेहता वापस आने को तैयार नहीं होता। उसे तुरन्त लौट चलने का आदेश दो।" तार भेजकर उन्हें कुछ शान्ति मिली। रात के ग्यारह बज चुके थे। पर मि० मास्टर की आँखों में नींद कहाँ? उन्हें तो चेचक और हैजे का भय लगा हुआ था। आध घण्टे बाद वे फिर दफ्तर में आये। उनका कहना था, तार शायद जल्दी नहीं मिलेगा, मुमकिन है, रास्ते में कहीं लाइन खराब हो गई हो। अच्छा यह होगा, कि वे अहमदाबाद टेलीफोन मिला लें, और अपनी बहन को सब मामला समझा दें। टेलीफोन-एक्सचेन्ज को नम्बर मिलाने का आदेश देकर वे दफ्तर में ही बैठ गये। सुबह के तीन बज गये, पर मि० मास्टर को अहमदाबाद का कॉल नहीं मिला। सरकारी इन्तजाम को कोसते हुए वे दफ्तर में ही आरामकुर्सी पर लेट गये। टेलीफोन-एक्सचेन्ज ने सुबह पांच बजे जवाब दिया, कि अहमदाबाद में नम्बर मिल गया था, पर वहाँ टेलीफोन की घण्टी को किसी ने सुना नहीं।

अगले दिन मि० मास्टर रामनगर से प्रस्थान कर गये। मेहता साहब उनके साथ नहीं गये। उनका कहना था, वे अपनी छुट्टियों को खराब नहीं करना चाहते। वे पूरे एक मास तक होटल मॉडर्न में रहेंगे, और रामनगर की स्वास्थ्यप्रद जलवायु से अपने स्वास्थ्य की उन्नति करेंगे। पर मि० मास्टर को कहां चैन थी ? वे शीघ्र अहमदाबाद जा पहुंचे, और अपनी बहन के सम्मुख रामनगर में हैजे और चेचक के प्रकोप का ऐसा सजीव चित्र उन्होंने चित्रित किया, कि मि० मेहता की मां घबरा उठीं। वे अपने भाई का तार पाकर पहले ही बहुत चिन्तित थीं, मेहता को वापस लौट आने के लिये तार भी दे चुकी थीं, अब भाई साहब से रामनगर की हालत सुनकर वे अपना धैर्य गंवा बैठीं। उन्होंने मेहता को कितने ही तार दिये, कितनी बार टेलीफोन पर बात की, पर मेहता रामनगर से वापस लौट जाने को तैयार नहीं हुआ। अब मि० मास्टर ने एक उग्र उपाय का आश्रय लेने का निश्चय किया। उन्होंने मुझे तार दी, कि मेहता के होटल-खर्च को देने की जिम्मेदारी उन पर नहीं होगी। मि० मेहता कालिज के विद्यार्थी थे, जेब-खर्च के लिये जो रुपया उन्हें मिला था, उसे वे पहले ही उड़ा चुके थे। होटल का बिल मामाजी को अदा करना था। जब यह तार मि० मेहता ने देखा, तो उनका चेहरा उदास हो गया। अब उनके सम्मुख यही मार्ग था, कि वह अहमदाबाद वापस लौट जायं, और तार द्वारा मार्ग-व्यय का रुपया मंगा लें। पर मि० मास्टर को आशंका थी, कि मार्ग-व्यय के लिये जो रुपया भेजा जायगा, उससे मेहता रामनगर में कुछ दिन और ठहर जायगा। वे दुनिया देखे हुए आदमी थे। उन्होंने टामस कुक एण्ड सन्स की मार्फत मेहता के रेल-खर्च आदि का इन्तजाम कर दिया। इस विलायती कम्पनी की शाखायें संसार के सब प्रमुख नगरों में विद्यमान हैं, और यह रेल, जहाज आदि द्वारा यात्रा का सब प्रबन्ध करती है। अब मि० मेहता को अहमदाबाद वापस लौट जाने के लिये विवश होना पड़ा। अन्त में मि० मास्टर की विजय हुई। अपने भानजे को हैजे और चेचक के खतरे से बचा-

कर उन्होंने सन्तोष की सांस ली। जहां तक होटल के बिल का सम्बन्ध है, मि० मास्टर ने उसे टामस कुक एण्ड सन्स की मार्फत मुझे भिजवा दिया।

मामा और भानजे दोनों होटल मॉडर्न से अहमदाबाद वापस चले गये। वे बहुत थोड़े दिन मेरे मेहमान रहे, पर उन्हें याद करके मैं अब तक भी सोच में पड़ जाता हूं। क्या कभी मि० मास्टर भी अपने भानजे के समान ही जिन्दादिल थे, कभी वे भी नौजवान रहे होंगे, कभी उनमें भी नवयुवतियों को अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति रही होगी और कभी वे भी दुनिया की चिन्ताओं से मुक्त हुए उन्मुक्त गगन में बेफिकरी से उड़ते हुए पक्षी के समान इधर-उधर फिरते रहे होंगे। समय ने उन्हें कैसा वहमी और हास्यास्पद बना दिया। कौन जानता है, कि मि० मेहता भी साठ साल की आयु तक अपने मामा के सदृश ही नहीं हो जावेंगे?

## (११)

## हर हाइनेस महारानी साहिबा किलसपुर

मई के अन्त तक होटल मॉडर्न में अच्छी रौनक हो गई थी। अच्छे कमरे प्रायः सब भर गये थे। दिन भर के काम से थककर मैं विश्राम करने जा रहा था, कि चपड़ासी ने एक तार मेरे हाथ में दिया। किलसपुर की महारानी साहिबा के प्राइवेट सेक्रेटरी ने तार दिया था, कि महारानी साहिबा को चार बढ़िया कमरे चाहियें, वे २९ मई को रामनगर पहुंच रही हैं, और तीन मास तक होटल मॉडर्न में ठहरना चाहती हैं। मई के अन्त में चार बढ़िया कमरे रिजर्व कर सकना कठिन बात थी, पर तीन मास ठहरनेवाली महारानी साहिबा को इनकार करना भी सम्भव नहीं था। तुरन्त तार का जवाब दे दिया गया, और चार बढ़िया कमरे उनके लिए रिजर्व कर देने की बात तार में लिख दी गई। अगले दिन की डाक से महारानी साहिबा का पत्र भी मुझे मिल गया। उसमें सब बातें विस्तार

के साथ लिखी गई थी। महारानी साहिबा को दो कमरे अपने लिये चाहिये, दो अपने स्टाफ के लिये। उनके स्टाफ में एक महिला कम्पेनियन (गवर्नेस) और एक प्राइवेट सेक्रेटरी होंगे, जो उनके समीप ही दो पृथक् कमरों में रहेंगे। साथ में छः नौकर भी होंगे, जिनके निवास के लिये दो सर्वेन्ट्स क्वार्टर जरूरी होंगे। एक क्वार्टर में उनकी नौकरानियां रहेंगी, और दूसरे में उनके नौकर। महारानी साहिबा भोजन होटल से नहीं लेंगी, इसके लिये उनका अपना इन्तजाम होगा, और एक पृथक् रसोई-घर उन्हें देना होगा। महारानी साहिबा की सब आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर चार बढ़िया कमरे उनके लिये रिजर्व कर दिये गये, और रसोईघर व क्वार्टर आदि की भी समुचित व्यवस्था कर दी गई। इन कमरों का क्या किराया होगा, इसका हिसाब होटल के बाबूजी ने तैयार कर लिया। कुल मिलाकर ३००० रु० महारानी साहिबा को अपने तीन मास के निवास के लिये मुझे देना था। २९ मई को महारानी साहिबा अपने दल-बल के साथ होटल मॉडर्न पधार गईं। अपने कमरों को देखकर उन्होंने सन्तोष प्रगट किया और दफ्तर से बिल मंगाकर ३००० रु० का चेक मेरे पास भेज दिया। महारानी साहिबा-जैसे समृद्ध व प्रतिष्ठित मेहमान को अपने होटल में ठहराकर मैंने गौरव अनुभव किया। सब खिदमतगारों को मैंने आदेश दे दिया, कि महारानी साहिबा के आराम का वे विशेषरूप से ध्यान रखें।

किलसपुर मध्य-भारत की एक छोटी-सी रियासत है। हर हाइनेस महारानी कुसुमकुमारी उसकी राजमाता या राजदादी थीं। उनकी आयु इस समय ७० साल के लगभग थी। उनके पति और पुत्र का देहान्त हो चुका था, और इस समय उनका पौत्र किलसपुर की राजगद्दी पर आरूढ़ था। इस आयु में कोई साधारण हिन्दू स्त्री अपना सब समय पूजा-पाठ में व्यतीत करती, पर महारानी कुसुमकुमारी किलसपुर की राजदादी थीं। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में, जब उनके पति किलसपुर की राजगद्दी पर विराजमान थे, महारानी साहिबा ने निरंकुश व स्वच्छन्द रूप से

अपनी रियासत का शासन किया था। महारानी कुसुमकुमारी एक बड़ी रियासत की राजकुमारी थीं। विवाह के समय लाखों रुपया उन्होंने दहेज में प्राप्त किया था, अपने पिता से उन्हें ५००० रु० मासिक मिलता था। किलसपुर के महाराजा साहब की आमदनी इससे कम थी। अतः यह स्वाभाविक था, कि वे महारानी साहिबा से दबकर रहें। किलसपुर में महारानी कुसुमकुमारी की इच्छा ही कानून थी। पति और पुत्र को खोकर भी महारानी साहिबा की उद्दण्डता व निरंकुशता में कोई कमी नहीं आई थी। १९४८ में जमाना बदल गया था, स्वराज्य की स्थापना के बाद भारत में रियासती शासन का भी अन्त हो गया था। किलसपुर रियासत भी इस समय भारतीय सरकार के शासन में आ गई थी और उसके राजा साहब के गुजारे के लिये मासिक पैंशन नियत हो गई थी। पर हर हाइनेस महारानी कुसुमकुमारी साहिबा अब भी अपने को किलसपुर की मां-बाप समझती थीं। ७० साल की आयु में उनके लिये यह सम्भव नहीं था, कि वे बदले हुए जमाने को समझ सकतीं। रियासत चली गई तो क्या हुआ, अपने नौकरों-चाकरों व स्टाफ पर तो उनका शासन अभी विद्यमान था। अपना समय पूजा-पाठ में बिताने की अपेक्षा वे यह अधिक अच्छा समझती थीं, कि अपने 'हाउस-होल्ड' पर वे निरंकुश महारानी के समान शासन करें। उनका बाकायदा सैक्रेटरी हो, पर्सनल असिस्टेन्ट हो, हिसाब रखने के लिये अकाउन्टेन्ट हो, और नौकरों-चाकरों को काबू में रखने के लिये एक दीवान हो। छः नौकर वे साथ में लाई थीं, उन्होंने तय किया कि बाकी नौकर रामनगर से रख लिये जावें। एक दिन उन्होंने मुझे अपनी बैठक में बुलाया। ७० साल की होने पर भी उन पर बुढ़ापे का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता था। न उनके मुंह पर झुर्रियां थीं, और न उनकी पीठ ही झुकी थी। बाल भी अभी पूरी तरह श्वेत नहीं हुए थे। मेरे आने पर महारानी साहिबा को खबर कर दी गई। मुझे मालूम है, कि उस समय महारानी साहिबा अपनी बैठक में बैठी हुई थीं, उन्हें कोई खास काम भी उस समय

नहीं था। पर मुझे बीस मिनट तक बाहर प्रतीक्षा करनी पड़ी। किसी बाहरी आदमी को तुरन्त अन्दर बुला लेना महारानी साहिबा की हैसियत के खिलाफ था, चाहे उन्होंने उसे खुद ही मिलने के लिये क्यों न बुलाया हो।

होटल मॉडर्न में निवास आदि के प्रबन्ध से सन्तोष प्रगट करते हुए महारानी साहिबा ने मुझे कहा, वे जो स्टाफ साथ में लाई हैं, वह सन्तोष-जनक नहीं है। यदि मैं उनके लिये अच्छे कर्मचारियों का प्रबन्ध कर सकूं, तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी। उन्हें रिक्शा के लिये पांच झम्पानी चाहियें। दो खिदमतगार, दो खानसामा और दो अर्दली भी उन्हें चाहियें। हिसाब रखने के लिये उनके पास कोई अकाउन्टेन्ट नहीं है, एक ऐसा भी आदमी चाहिये, जो अकाउन्ट्स रखने के साथ-साथ नौकरों-चाकरों को भी नियन्त्रण में रख सके। मैंने उसी समय होटल के बड़े खिदमतगार चन्दनसिंह को बुलाया, और उसे महारानी साहिबा के लिये स्टाफ का इन्तजाम करने का आदेश दे दिया। महारानी साहिबा के वैभव की सारे होटल में धूम मची हुई थी, उनके साथ जो असबाब आया था, उसमें १५० से अधिक सूटकेस व ट्रंक थे। उनके कमरों के आगे एक सिक्ख सिपाही हर समय बन्दूक लिये खड़ा रहता था। इस दशा में चन्दनसिंह ने बड़े उत्साह के साथ महारानी साहिबा के लिये स्टाफ जुटाने का काम अपने हाथों में ले लिया। चन्दनसिंह के पास आदमियों की कमी नहीं थी। बहुत-से पहाड़ी लोग नौकरी की तलाश में रामनगर आते थे, और किसी अच्छी जगह काम प्राप्त करने के लिये चन्दनसिंह की खुशामद करते रहते थे। चन्दनसिंह उनसे कुछ कमीशन भी लेता था। उसे नौकर जुटाने में देर नहीं लगी, पर दिक्कत तब पैदा हुई जब इनके वेतन निश्चित करने का सवाल उपस्थित हुआ। रामनगर में झम्पानियों के वेतन की दर ५० रु० मासिक थी। उन्हें वर्दी व कम्बल भी दिये जाते थे। रहने को क्वार्टर भी मिलता था। महारानी साहिबा कहती थीं, झम्पानी का वेतन ३० रु० मासिक से अधिक नहीं होना चाहिये। इसी तरह वे खिदमतगारों को २० रु० और खानसामा

को २५ रु० मासिक देना चाहती थीं। उन्होंने वह जमाना देख रखा था, जब ८ रु० मासिक पर अच्छा हुशियार नौकर मिल जाता था। महारानी साहिबा को यह समझने की फुरसत नहीं थी, कि उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में गेहूं रुपये का तीस सेर मिलता था, और अब १९४८ में राशन में मिलनेवाले घटिया आटे की कीमत रुपये की सवा दो सेर थी। उस जमाने का एक रुपया आज के १२ रु० के बराबर था। बहुत कहने-सुनने पर महारानी साहिबा इस बात के लिये तैयार हुई, कि झम्पानियों को ३८ रु० और खिदमतगारों को ३० रु० वेतन दिया जाय। चन्दनसिंह ने उनके लिये नौकर जुटा दिये। गरीब आदमी को यदि भर पेट रोटी मिल जाय, तो भी वह काम करने को तैयार हो जाता है। चन्दनसिंह ने महारानी साहिबा की सेवा में नियुक्त किये गये नौकरों को समझा दिया था, कि तनख्वाह का खयाल मत करो। बड़े घरों में इनाम-इकराम मिलते रहते हैं, जो मेहमान चाय पीने आते हैं, वे ही चलते हुए नौकरों को टिप दे जाते हैं। तनख्वाह की कमी टिप आदि से पूरी हो जायगी, और उन्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं होने पावेगी।

पर महारानी साहिबा से इन नौकरों की आशायें पूर्ण नहीं हुईं। झम्पानियों को वर्दी दे दी गई, क्योंकि वर्दीवाले कुलियों से महारानी साहिबा की अपनी शान थी। पर ज्यों ही झम्पानी लोग महारानी साहिबा को रिक्शा पर सैर कराके वापस लौटते, उसी समय उनकी वर्दी उतरवा ली जाती। वे बेचारे घोड़े की तरह भाग-भागकर रिक्शा खींचते, उनके शरीर से पसीने की धारायें बहती रहतीं। तुरन्त वर्दी उतरवा लेने से उन्हें ठण्ड लग जाने का भय है, इस पर महारानी साहिबा ने कभी ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी। वे कहती थीं, वर्दी केवल उस समय के लिये है, जब रिक्शा खींची जा रही हो। अन्य समय एक मिनट के लिये भी वर्दी झम्पानियों के शरीर पर नहीं रह सकती। रामनगर में कभी भी बादल घिर आते हैं, वर्षा पड़ने लगती है, और बरफ के समान ठण्डी हवा चलने

लगती है। घोड़े की तरह तेजी से भागने के बाद जब झम्पानियों का शरीर गरम हो जाता था, तब खुले मैदान में उनके शरीर पर से वर्दी उतरवा लेने का यही परिणाम हो सकता था, कि वे बीमार पड़ जाते। महारानी साहिबा के तीन झम्पानी सप्ताह भर में ठण्ड लगने से बीमार पड़ गये। उन्हें तुरन्त नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया और उन्हें यह हुकम दिया गया, कि वे घण्टे भर में क्वार्टरों को खाली कर दें। झम्पानियों के सेठ ने महारानी साहिबा से बहुत आरजू-मिन्नत की, पर वे टस से मस नहीं हुईं। रामनगर में नौकरों के क्वार्टरों का किराया भी ६० रु० सीजन से कम नहीं था। कोई आदमी इन्हें चाहे एक महीने व कुछ दिन के लिये ही क्यों न ले, उसे पूरी सीजन का किराया देना पड़ता था। क्वार्टर का मतलब रेलवे के बाबुओं के लिये बनाये गये सरकारी क्वार्टरों से नहीं है। पहाड़ी नगरों में क्वार्टर उन गन्दी कोठरियों को कहते हैं, जो आठ फुट लम्बी व इतनी ही चौड़ी होती हैं। २८ रु० मासिक पानेवाले गरीब झम्पानियों की यह ताकत कहां थी, कि वे क्वार्टर किराये पर लेकर अपनी बीमारी का समय वहां बिता सकते। उन्होंने दो रातें एक दूकान के बरामदे में व्यतीत कीं, और फिर निराश होकर अपने गांव वापस चले गये। उनका बुखार अच्छा हुआ या नहीं, इस सम्बन्ध में मुझे कोई सूचना नहीं मिली। कुलियों और झम्पानियों की दशा को देखकर मैं बहुधा सोचा करता हूं, कि दास-प्रथा का अन्त हो जाने से मानव-समाज की दशा में कोई उन्नति नहीं हुई है। यदि महारानी साहिबा अपने झम्पानियों को वेतन पर रखने के बजाय गुलामों की मण्डी से कीमत देकर उन्हें खरीदतीं, तो वे उनके निवास भोजन वस्त्र व आराम का उससे कहीं अधिक खयाल करतीं, जितना कि वे अब करती हैं। कीमत से खरीदे हुए बैलों घोड़ों व कुत्तों का मनुष्य उससे कहीं ज्यादा खयाल करता है, जितना कि वह कुलियों व मजदूरों का करता है। निःसन्देह, आज सब मनुष्य कानून की दृष्टि में एक सदृश स्थिति रखते हैं, उन्हें नागरिकता के स्वयंसिद्ध व जन्मजात अधिकार भी प्राप्त हैं। पर क्या ये अधिकार

गरीब अभागिनियों को महारानी साहिबा के अन्याय व अनुचित व्यवहार से रक्षा करने में समर्थ थे ?

चन्दनसिंह की सिफारिश से जो पहाड़ी खिदमतगार महारानी साहिबा ने अपनी सेवा में नियुक्त किये थे, वे भी उनसे सन्तुष्ट नहीं थे। एक दिन महारानी साहिबा ने कुछ मित्रों को चाय के लिये बुलाया। खिदमतगारों ने बड़े शौक से मेज सजाई। मेहमान लोग उनके काम से सन्तुष्ट हुए, और चलते हुए पांच रुपये इनाम के तौर पर दे गये, जिन्हें उन्होंने आपस में बांट लिया। महीना खतम होने पर जब वेतन देने का समय आया, तो महारानी साहिबा ने ये पांच रुपये नौकरों की तनख्वाह से काट लिये। उनका कहना था, कि जब उन्हें वेतन मिलता है, तो टिप या इनाम पर उनका कोई अधिकार नहीं हो सकता। एक बार एक खिदमतगार बीमार पड़ गया। महारानी साहिबा उसके कार्य से बहुत सन्तुष्ट थीं। उन्होंने सोचा, करमसिंह की बीमारी से उनका अपना नुकसान है। उन्होंने बड़ी कृपा करके उससे कहलवाया, कि आज वह आराम करे, चूल्हा जलाने की मेहनत न करे। उसके लिये खिचड़ी महारानी साहिबा के रसोईघर से दे दी जायगी। करमसिंह ने समझा, आज मेरे भाग्य खुल गये हैं। पिछले जन्म में उसने पता नहीं कौन-से पुण्य कर्म किये थे, जिससे आज राजमाता उस पर प्रसन्न हो गई हैं। महीना खतम होने पर जब अकाउन्टेन्ट साहब ने स्टाफ के वेतन का बिल बनाया, तो महारानी साहिबा के आदेश से न केवल करमसिंह का एक दिन का वेतन काटा गया, पर साथ ही साढ़े तीन आना उस खिचड़ी का दाम भी काट [illegible] से उसके लिये भेजी गई थी [illegible] खिचड़ी का [illegible] बिल बनाया जाय, और उस पर करमसिंह के हस्ताक्षर कराके उसे हिसाब में शामिल कर लिया जाय। एक आने के चावल, तीन पैसे की दाल, दो पैसे की हल्दी-नमक-मसाला, दो पैसे का ईंधन और तीन पैसा रसोइये की मजदूरी—इस प्रकार पूरे साढ़े तीन आने का हिसाब तैयार

करके खिचड़ी का बिल बनाया गया, और बेचारे करमसिंह ने उस पर अपने अंगूठे का निशान बना दिया। महारानी साहिबा कहा करती थीं, उन्हें झगड़ा-झंझट बिलकुल पसन्द नहीं है। प्रत्येक खर्च का बाकायदा वाउचर और बिल होना चाहिये। इन्हे वे बहुत संभालकर रखती थी। ७० साल की अपनी आयु में उन्होंने जमाना खूब अच्छी तरह देखा हुआ था। नौकर लोगों के झगड़ों का उन्हें अच्छा अनुभव था। करमसिंह भी बाद में कभी यह सवाल न उठावे, कि खिचड़ी पर साढ़े तीन आने की जगह सवा तीन आना खर्च हुआ था, अतः उन्होंने वाउचर पर हस्ताक्षर कराके पहले से ही उसका मुह बन्द कर दिया था।

महीने की समाप्ति पर डबलरोटीवाले का बिल जब अकाउन्टेन्ट ने महारानी साहिबा के सम्मुख उपस्थित किया, तो उसे स्वीकृत करने के लिये वे तैयार नहीं हुई। बिल में कुल सात रोटियां थीं। महारानी साहिबा कहती थीं, ये रोटियां अधिक है, इतनी नहीं खरीदी गई। उन्होंने फैसला करने के लिये मुझे बुलाया और पूछा कि एक डबलरोटी में कितने टोस्ट (रोटी के पतले कटे हुए वे टुकड़े, जिन्हें सेंककर खाया जाता है) निकलते हैं। मैं इस बारे में विशेष ज्ञान नहीं रखता था, मैंने होटल के बटलर को बुलवाया। उसने कहा, हजूर, मामूली तौर पर एक डबलरोटी में बारह टोस्ट बनते हैं। अब महारानी साहिबा के लिये हिसाब लगाना सुगम होगया। वे दो टोस्ट प्रतिदिन खाती हैं, अतः एक रोटी छः दिन चलनी चाहिये। महीने में ३१ दिन थे, अतः उन्होंने खुद ५⅙ रोटियां खाईं। दो दिन कुछ मेहमानों ने भी उनके साथ ब्रेकफास्ट खाया था, अतः छटी रोटी भी पूरी इस्तेमाल हो गई। पर बिल तो सात रोटियों का था। खिदमतगार ने बहुत अनुनय विनय की, कि हजूर, प्रत्येक रोटी में दो 'क्रास' (किनारे के टुकड़े) निकलते हैं, जिन्हें हजूर की खिदमत में पेश नहीं किया जा सकता। महा-रानी साहिबा ने उसकी एक न सुनी। उन्होंने कहा, वे क्रास कहां गये? उन्हें हाजिर करो। बेचारा खिदमतगार यह कैसे कहे, कि वे क्रास उसने खुद

खा लिये थे। महारानी साहिबा ने बिल में से एक रोटी काट ली। केवल छः की कीमत देनी स्वीकार की। बेकरीवाले ने सातवीं रोटी की कीमत खिदमतगार से वसूल की। यह उचित भी था, क्योंकि रोटी के ग्रास को नौकरों ने ही अपने पेट के हवाले किया था।

महारानी साहिबा के खिदमतगार एक और बात से भी बहुत परेशान थे। बाजार से शाक-सब्जी, फल आदि को खरीदने का काम उन्हीं के सुपुर्द था। महारानी साहिबा चाहती थीं, कि खिदमतगार जब शाक-सब्जी खरीदकर लावें, तो दूकानदार का वाउचर व रसीद भी पेश करें। इनके अभाव में इन चीजों की कीमत देने में उन्हें एतराज था। खिदमतगार हाथ जोड़कर कहते थे, हुजूर, जो लोग-सब्जी फल बेचते हैं, उनके पास वाउचर व बिल की किताबें नहीं होतीं, वे प्रायः अनपढ़ होते हैं, और सड़क के किनारे टोकरे रखकर माल बेचते हैं। पर महारानी साहिबा को यह बात समझ नहीं आती थी। वे कहती थीं, बिना वाउचर के कोई बिल कैसे पास किया जा सकता है? यह जरूरी है, कि एक-एक पैसे का वाउचर मौजूद हो। महारानी साहिबा का दफ्तर भारतीय सरकार की सेक्रेटेरियट से कैसे कम था? बाद में जब उन्होंने अनुभव किया, कि शाक-सब्जी का छपा हुआ वाउचर प्राप्त कर सकना सुगम नहीं है, तो उन्होंने अपने सेक्रेटरी को आदेश दिया, कि वह बाजार में प्रत्येक चीज का दाम मालूम करके अपने हाथ से वाउचर बना दिया करे, और अपने हस्ताक्षरों के साथ उसे महारानी साहिबा की खिदमत में पेश किया करे। वाउचर में लिखी कीमत बाजार-भाव के मुताबिक है, इसकी जिम्मेदारी सेक्रेटरी की रहेगी। कहीं सेक्रेटरी और खिदमतगार आपस में मिलकर उनसे शाक-सब्जी की अधिक कीमत तो वसूल नहीं कर रहे हैं, इसके लिये महारानी साहिबा बहुत सतर्क रहती थीं। वे बहुधा मुझसे पूछा करती थीं, बाजार में आलू, धनिया, गाजर आदि की क्या कीमत है। इस प्रश्न का उत्तर दे सकना मेरे लिये सुगम नहीं था। इन चीजों की कीमत सदा एक जैसी तो रहती नहीं।

किसी दूकान पर कुछ कीमत होती है, किसी पर कुछ । सुबह और शाम में भी शाक-सब्जी की कीमत कम अधिक हो जाती है । बाजार-भाव प्रायः रोज ही बदलता रहता है । मुझे मालूम है, कि बहुधा महारानी साहिबा शाक-सब्जी के वाउचरों में काट-छांट करती रहती थीं । यदि सेक्रेटरी ने दिन भर के खर्च का दस आने का हिसाब पेश किया, तो उसमें दो-ढाई आने की कमी करके उसे मंजूर किया जाता था । जहां तक मेरा ख्याल है, महारानी साहिबा की तबियत में कंजूसी नहीं थी । वे रुपया दिल खोल-कर खर्च करती थीं । पर हिसाब के मामले में वे बहुत सख्त थीं । उन्हें वे दिन भूले नहीं थे, जब बिलसपुर रियासत पर उनका एकच्छत्र शासन था । शासन करना उनकी आदत बन गई थी । अब रियासत पर उनका शासन नहीं रहा था । अतः अपने 'हाउस-होल्ड' पर कठोर नियन्त्रण रखकर वे राज करने की अपनी आदत को चरितार्थ किया करती थीं । खिदमत-गारों और नौकरों के साथ उनकी जरा भी सहानुभूति नहीं थी । उनका ख्याल था, कि ये सब उनको लूटने और धोखा देने में लगे हुए हैं । अतः उनका कर्तव्य है, कि इन पर कठोर नियन्त्रण रखा जाय । एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा, बाजार में कलमी आम का क्या भाव है ? उस दिन मैंने दो रुपये सेर के भाव से आम खरीदे थे । रामनगर में लखनऊ से दसहरी आमों की एक मोटर-ट्रक आ गई थी, अतः आम सस्ते हो गये थे । उससे पहले तक आमों का भाव सवा दो रुपये सेर था । महारानी साहिबा के सेक्रेटरी ने तीन दिन पहले खरीदे आमों का सवा दो रुपये सेर का वाउचर उनकी सेवा में हाजिर किया । उसे देखते ही महारानी साहिबा आगबबूला हो गईं । कहने लगीं, देखिये, मुझे किस तरह से ठगा जाता है ? आपने दो रुपये सेर के हिसाब से आम लिये हैं, और मुझसे सवा दो रुपये सेर का भाव चार्ज किया जा रहा है । गरीब सेक्रेटरी पर दो रुपये जुर्माना कर दिया गया । उसने हाथ जोड़कर अर्ज करने की कोशिश की, कि हुजूर, आज उसने भी आम सस्ते लिये हैं । पर महारानी साहिबा उसकी बात सुनने

को तैयार नहीं थी । उसे डांट-डपटकर तुरन्त कमरे से बाहर कर दिया गया ।

महारानी साहिबा का सारा समय इसी ढंग से अपने स्टाफ पर नियन्त्रण रखने में व्यतीत होता था । उन्हें न धर्म-कर्म में रुचि थी और न ही आमोद-प्रमोद का शौक था । मैंने उन्हें कभी किसी क्लब में जाते हुए या सिनेमा देखने जाते हुए नहीं देखा । वे घूमने-फिरने के लिये भी बहुत कम निकलती थीं । देश या दुनिया में क्या हो रहा है, इसका उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था । रियासतें खतम हो गईं, राजाओं के हाथ से शासन-शक्ति छिन गई—इन सब बातों से महारानी साहिबा को कोई मतलब नहीं था । वे अब भी 'हर हाइनेस' थीं, उनसे मिलनेवाले लोग उन्हें 'योर हाइनेस' कहकर पुकारते थे । गुस्से में आकर वे अब भी अपनी जमादारनी या आया पर कोड़े बरसा सकती थीं, खिदमतगार पर जुरमाने कर सकती थीं, और एम० ए० परीक्षा पास अपने सेक्रेटरी को डांट-डपट सकती थीं । अपने 'हाउस-होल्ड' पर अब भी उनका निरंकुश शासन विद्यमान था । मैं सोचा करता था, कोई ऐसा भी जमाना था, जब ऐसी अर्धशिक्षित, गुस्सैल और उथली महिला के हाथ में एक रियासत के लाखों नरनारियों का भाग्य था । ऐसा जमाना हजारों साल तक दुनिया में रहा, और लोग इस प्रकार के राजा व रानियों को अपना माई-बाप समझकर उनकी आज्ञाओं का आंख मींच-कर पालन करते रहे ।

## (१२)

## कुंअर रघुराजसिंह

मई का महीना समाप्त होने से पहले ही कुंअर रघुराजसिंह होटल मॉडर्न में पधारे, और उन्होंने ७८ नम्बर का कमरा अपने निवास के लिये दस रुपया रोज पर किराये पर ले लिया । वे अपनी कुंअरानी साहिबा के साथ आये थे, और भोजन के सम्बन्ध में उनका पृथक् इन्तजाम रखना

चाहते थे। मुझे कुंअर साहब का जीवन भी नजदीक से देखने को मिला। कुछ समय बाद वे मेरे घनिष्ठ मित्र भी बन गये। वे मुजफ्फरनगर जिले के एक जमीदार थे, और अपनी 'रियासत' का उन्हें बहुत गर्व था। उनकी 'रियासत' में आधा गांव अन्तर्गत था, और लगान के रूप में उनकी कुल आमदनी चार हजार रुपये वार्षिक से अधिक नहीं थी। सरकारी मालगुजारी देकर उनके पास तीन हजार से कुछ कम बच रहता था, जिससे उन्होंने अपनी रियासती शासन कायम की हुई थी। उनके साथ दो नौकर आये थे, एक को वे दीवानजी कहते थे। दीवानजी रियासती ढंग की लाल और सुनहरी रंग की वर्दी पहनकर कुंअर साहब के पीछे-पीछे चलते थे, और सिगरेटकेस व पानदान अपने हाथ में लिये रहते थे। कुंअर साहब पासिंग शो की सिगरेट पीते थे, इसलिये नहीं कि उसकी कीमत कम थी, बल्कि इसलिये कि उन्हें केवल इसी सिगरेट का स्वाद पसन्द था। वे अक्सर कहा करते थे, मनें महंगी से महंगी विलायती सिगरेट पीकर देख ली, पर जो स्वाद पासिंग शो में है, वह किसी सिगरेट में नहीं है। कुंअर साहब को सिगरेट का इतना अधिक शौक था, कि वे दिन-रात में छः-सात डिब्बियां समाप्त कर देते थे। रात को सोते हुए भी सिगरेटकेस उनके सिरहाने रखा रहता था। जब उनकी नींद खुलती, वे तुरन्त सिगरेट जलाकर धूम्रपान शुरू कर देते, और सिगरेट पीते-पीते ही उन्हें नींद आ जाती। वे मुझे बताते थे, कि उनकी कितनी ही रजाइयां सिगरेट से जलकर राख हो चुकी हैं, और कितनी बार उनके मकान में इससे आग लगते-लगते बची है। दीवानजी को २५ रु० मासिक वेतन मिलता था। रियासत का सब इन्तजाम उन्हीं के सुपुर्द था। वे ही किसानों से लगान वसूल करते थे, कुंअर साहब के मन्त्री का कार्य करते थे और आवश्यकता पड़ने पर उनके चौके-चूल्हे का भी काम कर देते थे। वर्दी पहनकर कुंअर साहब के पीछे-पीछे चलना उनका दैनिक कार्य था।

कुंअर साहब के कोई सन्तान नहीं थी। अपनी पहली पत्नी से सन्तान

के सम्बन्ध में निराश होकर उन्होंने दूसरा विवाह किया था। पर नई कुंअ-रानी साहिबा भी उन्हें रियासत का उत्तराधिकारी प्रदान करने में असमर्थ रहीं। उनके दरबारी बहुधा यह सलाह देते रहते थे, कि अब उन्हें तीसरा विवाह कर लेना चाहिये, क्योंकि सन्तान के बिना रियासत को बाद में कौन संभालेगा ? पर कुंअर साहब अब सन्तान के मामले में निराश हो चुके थे, और उन्होंने एक कुत्ते को पालकर अपने पितृप्रेम को चरितार्थ कर लिया था। कुंअर साहब का कुत्ता, जिसे वे अपना बेटा कहते थे, कॉकर स्पेनियल जाति का था, बड़ा आज्ञाकारी, विनीत और वात्सल्य-पूर्ण। वह हर समय कुंअर साहब की गोदी में बैठा रहता—जब कभी गोदी से उतरता, तो उनके बिस्तर में बैठ जाता। अनेक बार कुंअर साहब अपने साथ ही उसे सुला भी लेते थे। उसके लिये एक पृथक् पलंग भी रखवा लिया गया था, जिस पर गद्दा, चादर, तकिया, लिहाफ सब बाकायदा लगाये गये थे। पर टामी को—कुंअर साहब के कुत्ते का नाम टामी था—कुंअर साहब के साथ सोना अधिक पसन्द था। कुंअरानी साहिबा भी टामी को अपने पुत्र के समान ही प्यार करती थीं। दीवानजी के अतिरिक्त जो दूसरा नौकर कुंअर साहब के पास था, उसका मुख्य कार्य यही था, कि वह टामी की सेवा करे। रात को जब कभी टामी की नींद खुल जाती, तो इस नौकर को आदेश दिया जाता, कि वह टामी को गोद में लेकर फिरे। जब नींद आ जाय, तो उसे धीमे से बिस्तर पर सुला दिया जाय। टामी के खाने के लिये खास खाना बनता था, वह हलवा-खीर आदि का बहुत शौकीन था। कुंअर साहब चाहे खुद रोटी-दाल खाकर सन्तोष कर लें, पर टामी के लिये बढ़िया-बढ़िया खाना बनवाने में वे कभी संकोच नहीं करते थे।

जब टामी दो साल का हो गया, तो कुंअर साहब ने उसका विवाह करने का निश्चय किया। रामनगर-जैसे पहाड़ी स्थान में अच्छे नसल के कुत्ते सुगमता से मिल जाते हैं। कॉकर स्पेनियल नसल की एक कुतिया

तलाश कर ली गई। ज्योतिषी को बुलाकर विवाह के लिए शुभ तिथि भी निश्चित करवा ली गई। कुंअर साहब के अनुरोध से उनके अनेक कुटुम्बी व निकट-सम्बन्धी भी इस शुभ अवसर पर रामनगर आये। बैन्ड-बाजे का इन्तजाम किया गया, वधू के लिये गहने बनवाये गये और १५ जून को कुंअर साहब के बेटे टामी का बड़ी धूमधाम के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। टामी की सहधर्मिणी का नाम जिमी था, वह भी कुंअर साहब के घर पधार गई। एक बार दो साल बाद जब कुंअर साहब से मेरी भेंट हुई, तो उन्होंने बताया, कि टामी अब पिता बन चुका है, और उसकी सन्तान से उनके घर में बहुत रौनक हो गई है। कुंअर साहब अपने कुत्तों से जिस ढंग से प्रेम करते थे, उसे देखकर मैं सोचा करता था, प्रेम केवल मन की चीज है। मनुष्य जिस किसी से चाहे, प्रेम कर सकता है। इस दशा में यदि कभी मानव-समाज किसी पत्थर को ही देवाधिदेव मानकर उसकी पूजा में तत्पर रहा हो, तो इसमें आश्चर्य व अनौचित्य की क्या बात है ?

इस समय तक उत्तर-प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा में जमींदारी नष्ट करने का बिल पेश हो चुका था। कुंअर साहब इससे बहुत चिन्तित थे। यद्यपि उनकी आमदनी अब भी अधिक नहीं थी, पर इससे उनका गुजारा मजे में चल जाता था। अपनी रियासत में उनका आलीशान महल था, जो आज से लगभग सौ साल पहले उनके पुरखाओं ने बनवाया था। इस महल की मरम्मत करा सकना कुंअर साहब की ताकत में नहीं था, पर अभी वह इतना मजबूत व शानदार था, कि कुंअर साहब को इसकी मरम्मत में अधिक रकम खर्च करने की जरूरत नहीं थी। महल के सहन में उनका अपना कुआं था। हाउस-टैक्स व वाटर-टैक्स के रूप में कुंअर साहब को एक भी पैसा खर्च नहीं करना पड़ता था। अनाज शाक-सब्जी आदि रैयत से बंटाई या बेगार में मिल जाते थे। रियासत की नकद आमदनी का बड़ा भाग कुंअर साहब रामनगर या दिल्ली में खर्च किया करते थे।

मगर अब उनके सम्मुख समस्या यह थी, कि जमींदारी खतम हो जाने के बाद उनका निर्वाह कैसे चलेगा ? व्यापार के लायक उनके पास पूंजी नहीं थी और नौकरी के लायक उनकी शिक्षा नहीं हुई थी। कोई छोटा-मोटा कारोबार कर लेना उनकी हैसियत के अनुरूप न होता। उन के बाप-दादों ने भी कभी कमाई के लिये मेहनत नहीं की थी। फिर इनसे यह आशा कैसे की जा सकती थी, कि वे किसी कारोबार की फिक्र करेंगे। अकसर वे कांग्रेस-सरकार को कोसा करते और कहते, कि क्या स्वराज्य-आन्दोलन में लोगों ने जो इतने उत्साह से कांग्रेस का साथ दिया था, वह इसीलिये था, कि राजशक्ति के हाथ में आते ही कांग्रेस उनके गले काटने के लिये तैयार हो जाय ? किसानों के भी कोई अधिकार हैं, भूमि पर किसी व्यक्ति का स्वत्व नहीं रहना चाहिये—इस ढंग के विचार कुंअर साहब की समझ से बाहर की बात थे। एक दिन मैंने उनसे कहा, आप लोग जमींदारी के छिनने की बात को इतना अधिक अनुभव करते हैं, इसके लिये कुछ कोशिश क्यों नहीं करते ? यह युग प्रोपेगेन्डा या आन्दोलन का है। यदि उत्तर-प्रदेश के सब जमींदार मिलकर एक फण्ड जमा करें, और उसमें अपनी आमदनी का दस प्रतिशत भी जमा कर दें, तो उससे लाखों रुपया एकत्र हो सकता है। इस फण्ड का उपयोग जनता में जमींदारी-उन्मूलन के विरुद्ध लोकमत को उत्पन्न करने के लिये किया जाय। प्रोपेगेन्डा के इस युग में दवाइयां बनानेवाले लोग इश्तहार के जोर पर मिट्टी को भी सोने की कीमत से बेच देते हैं। साम्राज्यवादी लोग प्रोपेगेन्डा के जोर पर ही एशिया व अफ्रीका के लोगों को यह समझाये रहे हैं, कि उनका उद्देश्य मानव-समाज को सभ्य व उन्नत करना है, दूसरे देशों का शोषण करना नहीं। इस दशा में यदि उत्तर-प्रदेश के जमींदार भी लाखों रुपया एकत्र कर इस प्रचार में जुट जायें, कि जमींदारी-प्रथा देहातों व किसानों के लिये कल्याणकर है, तो [illegible] के खिलाफ लोकमत उत्पन्न कर सकना कठिन नहीं है। [illegible] के लिये [illegible] पैसा

है, तो यह क्योंकर सम्भव नहीं है, कि जमींदार लोग अपने स्वत्व व वैयक्तिक सम्पत्ति की रक्षा के लिये अपनी वार्षिक आमदनी का केवल दसवां हिस्सा ही प्रचार-कार्य के लिये प्रदान करने को उद्यत हो जावें। ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो अच्छा वेतन प्राप्त करके जमींदारी-प्रथा के पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो जावेंगे। जो अखबार पूंजीवाद का समर्थन केवल इसलिये करते हैं,क्योंकि मिल-मालिकों से उन्हें बड़े-बड़े विज्ञापन प्राप्त होते हैं, वे रुपया प्राप्त करके जमींदारी-प्रथा का समर्थन करने में भी क्यों संकोच करेंगे। लोकमत बनाने में समाचार-पत्र बहुत सहायक होते हैं, इसीलिये बिड़ला और डालमिया-जैसे पूंजीपति अनेक अखबारों को खरीदने में तत्पर हैं। यदि जमींदार लोग भी अपने फण्ड से अच्छे अखबारों को खरीद लें, तो वे भारत के लोकमत को अपने अनुकूल बना सकते हैं। वह युग अब बीत गया, जब कि पं० गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकार एक छोटी-सी कोठरी में बैठकर केवल देश-सेवा की पुनीत भावना से अखबार निकाला करते थे। अब तो कपड़े और चीनी की मिलों के समान अखबार भी पूंजीपतियों की मल्कियत में आ गये हैं, और सम्पादक लोग अपने मालिकों का ढोल पीटना व उनके हितों की रक्षा करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यदि जमींदार लोग अपने रुपये के जोर पर सारे उत्तर-प्रदेश में जमींदारी-प्रथा के समर्थक अखबारों का जाल बिछा दें, तो कुछ दिनों बाद जनता यह अनुभव करने लगेगी, कि यह प्रथा सचमुच जनता के हित व कल्याण के लिये है।

मेरी बातों का कुंअर साहब पर बहुत असर पड़ा। वे खुद बड़े जमींदार नहीं थे, पर उत्तर-प्रदेश के जमींदारों में उनका अच्छा मान था। आगरा के जमींदार-एसोशियेशन के वे सदस्य भी थे। उन्होंने एसोशियेशन के सेक्रेटरी महोदय को पत्र लिखकर प्रार्थना की, कि एसोशियेशन की एक बैठक रामनगर में शीघ्र ही बुलाई जाय, ताकि जमींदारी-उन्मूलन कानून का विरोध करने के क्रियात्मक उपायों पर विचार किया जा सके। उत्तर-

प्रदेश के सम्पन्न जमींदार ग्रीष्म ऋतु बिताने के लिये प्रायः मसूरी, नैनी-ताल, रामनगर आदि पहाड़ी स्थानों में आया करते हैं। उन दिनों अनेक बड़े जमींदार रामनगर में पहले से ही विद्यमान थे। अतः जमींदार एसो-शियेशन के सेक्रेटरी महोदय को कुंअर रघुराजसिंह का अनुरोध स्वीकार करने मे विशेष कठिनाई नहीं हुई। नोटिस जारी कर दिया गया, कि २६ जून को एसोशियेशन की एक जरूरी व महत्त्वपूर्ण बैठक होटल मॉडर्न के लौञ्ज में होगी और सब सदस्य इसमें सम्मिलित होने का अवश्य कष्ट करें। जमींदार-एसोशियेशन की यह बैठक मेरे लिये वरदान के समान सिद्ध हुई। होटल के कई कमरे खाली पड़े थे। ये सब जमींदार साहबों के लिये रिजर्व करा लिये गये। कुछ दिनों के लिये विशाल होटल मॉडर्न का एक भी कमरा खाली नहीं रह गया।

जमींदार एसोशियेशन की बैठक में शामिल होने के लिये जो लोग आये, वे सब नमूनों के थे। उनमें ऐसे व्यक्ति भी थे, जो सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से पूर्णतया यूरोपियन रंग में रंगे हुए थे, साल में सात मास ये पेरिस, लण्डन और जिनीवा में बिताते थे और शराब पीने व भोग-विलास से ही इन्हें फुरसत नहीं मिलती थी। अपनी रैयत से इनका कोई भी सम्पर्क नहीं था। इनकी जमींदारी का सब काम इनके कारिन्दे देखते थे और ये अपनी आमदनी को पानी की तरह ऐश-इशरत में बहाते थे। दूसरी तरफ ऐसे जमींदार सज्जन भी थे, जिन्हें देखकर यह प्रतीत होता था, कि ये सतरहवीं सदी के अवशेष हैं। प्रतापगढ़ के एक बड़े जमींदार अपने तीन कारिन्दों के साथ आये थे। उनका [illegible] वेश था, सिर पर साफा, बदन पर मिरजई और पैरों में [illegible]। माथे पर त्रिपुण्ड्र लगा हुआ, और पैरों में चमरौधा जूता। ये सज्जन जब होटल मॉडर्न के आफिस में अपने लिये रिजर्व किया हुआ कमरा पूछने के लिये आये, तो मैनेजर ने उनका यथोचित स्वागत नहीं किया। होटल के कर्मचारी इस ढंग के मेहमानों के [illegible] स्वागत के अभ्यासी नहीं थे। पर वे इससे नाराज नहीं हुए।

कोई गोरी मेम साहब भी काले आदमी की नौकरी में हो सकती है, इसकी कल्पना प्रतापगढ़ जिले के ये जमींदार नहीं कर सकते थे। उन्होंने खुद झुक-कर मिसेज विन्सेन्ट को सलाम किया। मेरे लिये भी यह समझ सकना कठिन था, कि इन चार सज्जनों में कौन-से जमींदार हैं, और कौन-से उनके कारिन्दे। आखिर, एक सज्जन ने हिम्मत करके एक व्यक्ति के प्रति इशारा करके कहा, सरकार मढौली (जि० प्रतापगढ़) के ताल्लुकेदार साहब हैं। मैंने उन्हें आदर से बिठाया और खिदमतगार को बुलाकर उन्हें उनके कमरे में ले जाने को कहा।

जमींदार-एसोशियेशन के लिये कुछ ऐसे व्यक्ति भी आये थे, जिनके सिर पर गांधीटोपी थी, और जो शुभ्र खादी के वस्त्र धारण किये हुए थे। पूछने पर मालूम हुआ, कि ये एसोशियेशन के 'वर्कर' हैं। इन दिनों खादी और गांधीटोपी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की 'यूनीफार्म' सी हो गई थी, और जो लोग कांग्रेस की नीति के खिलाफ कार्य करने में तत्पर थे, वे भी यही पोशाक पहनते थे। कुंअर रघुराजसिंह ने मेरा एक 'वर्कर' से परिचय कराया और उनसे कहा, कि जमींदारी-उन्मूलन कानून का विरोध करने के लिये मैंने एक बहुत अच्छी योजना बनाई है। मैंने उन्हें समझाया, कि मैं स्वयं जमींदारी-प्रथा का विरोधी हूं, और उसके विनाश में ही देश व जनता का हित मानता हूं। कुंअर रघुराजसिंह साहब को जो कुछ मैंने कहा था, वह केवल एक विचार था। पर ये वर्कर साहब--इनका नाम श्री कमलाकान्त शर्मा था—मेरे पीछे पड़ गये। कहने लगे, आप हमारे सेक्रेटरी कुंअर परमेश्वरी सहाय से अवश्य मिल लें। वे आपकी योजना को सुनकर बहुत प्रसन्न होंगे और उससे अवश्य लाभ उठावेंगे। शर्माजी के अनुरोध की मुझे कोई परवाह नहीं थी, पर कुंअर रघुराजसिंह मेरे मित्र हो गये थे। जब उन्होंने भी मुझसे अनुरोध किया, तो मैं श्री परमेश्वरी सहाय से भेंट करने के लिये तैयार हो गया। मैंने सोचा, हर्ज क्या है, राज-नीतिक जीवन में मैं सक्रिय भाग तो लेता नहीं, जमींदारों के नेता साहब

से मिलने का एक अच्छा अवसर है, क्यों न उसका उपयोग कर लिया जाय।

कुंअर परमेश्वरी सहाय साहब इटावा जिले के बहुत बड़े जमींदार थे। रामनगर में उनकी अपनी कोठी थी। शर्माजी ने फोन द्वारा उनसे समय तय कर लिया। दोपहर बाद तीन बजे कुंअर साहब से भेंट होनी थी। ढाई बजे हम होटल से चले, और तीन बजे से कुछ मिनट पहले ही कुंअर साहब की कोठी पर पहुंच गये। शर्माजी और कुंअर रघुराजसिंह भी मेरे साथ थे। ठीक तीन बजे हमने कुंअर परमेश्वरी सहाय के प्राइवेट सेक्रेटरी से अर्ज की, कि हम लोगों के आने की सूचना कुंअर साहब को दे दी जाय। उन्होंने कहा, कुंअर साहब आराम कर रहे हैं, अभी उनसे भेंट नहीं हो सकती। हमने कहा, उन्होंने हमें तीन बजे का समय दिया था। पर सेक्रेटरी साहब विवश थे। उनका कहना था, कि साहब का हुकम है, कि जब वे अपने बेडरूम में आराम कर रहे हों, तो उनके पास कोई नौकर तक न आने पावे। शायद कुंअर साहब अपने अन्तःपुर में थे, और आमोद-प्रमोद में व्यस्त थे।

कोई आध घण्टे बाद एक साहब कोठी पर आये, और सीधे अन्दर चले गये। उन्होंने ज़ोर से पुकारकर कहा—'हैलो, परमेश्वरी, अभी तक बिस्तर से नहीं उठे, कहो आज कहीं का प्रोग्राम नहीं है क्या?' कुंअर साहब ने बड़े उत्साह से इनका स्वागत किया। थोड़ी देर बाद गिलासों की खनखनाहट की आवाज से मुझे यह समझने देर नहीं लगी, कि अब शराब का दौर शुरू हो गया है। शर्माजी ने सैक्रेटरी साहब से अनुरोध किया, कि हम लोगों के आने की सूचना कुंअर साहब को दे दें। पर उन्होंने बताया, कि जो सज्जन अभी कुंअर साहब से मिलने आये थे, वे मिर्जापुर जिले के एक बड़े ताल्लुकेदार ठाकुर गिरिराजसिंह हैं। ठाकुर साहब की कुंअर परमेश्वरी सहाय से गाढ़ी दोस्ती है, और अब वे शीघ्र किसी से नहीं मिल सकेंगे। हम लोगों के बहुत कहने-सुनने पर सेक्रेटरी साहब ने हिम्मत की और एक कागज पर हम लोगों के नाम लिखवाकर उसे अन्दर भेज

दिया। इसी समय कुंअर साहब की गरजती हुई आवाज हमें सुनाई दी--कम्बख्त दो मिनट भी नहीं बैठने देते। इन लोगों से कहो, घण्टा भर बैठकर इन्तजार करें। मैंने घड़ी देखी, तो मालूम हुआ, अब चार बज चुके थे। पांच बजे तक इन्तजार कर सकना मेरे लिये असम्भव था। शर्माजी किसी जमाने में कांग्रेस में काम कर चुके थे, और सत्याग्रह-आन्दोलन में कुछ सप्ताहों के लिये जेल की सजा भी भुगत चुके थे। रोटी की समस्या ने उन्हें जमींदार-एसोशियेशन की नौकरी करने के लिए विवश कर दिया था। न सब सत्याग्रही वीर स्वतन्त्र भारत में मिनिस्टर ही बन सकते थे, और न एम० एल० ए० व एम० पी० का पद ही प्राप्त कर सकते थे। कांग्रेस से निराश होकर अब शर्माजी जमींदारों के अधिकारों की रक्षा की पुनीत भावना से एसोशियेशन के वेतनभोगी वर्कर बने हुए थे। बेचारे शर्माजी भली भांति अनुभव करते थे, कि कुंअर परमेश्वरी सहाय का यह कार्य अत्यन्त अनुचित है। मेरे मित्र कुंअर रघुराजसिंह भी शर्मिन्दा हो रहे थे। पर इन बड़े ताल्लुकेदारों के आमोद-प्रमोद और हंसी-मजाक में बाधा डालना उनकी शक्ति से बाहर था। मैंने शर्माजी से कहा---भाई, मुझे भी किन लोगों के बीच में खींच लाये हो? ये लोग क्या खाकर कांग्रेस का मुकाबला करेंगे? लोकतन्त्रवाद और साम्यवाद के इस युग में कुंअर परमेश्वरी सहाय जैसे लोगों के नेतृत्व में क्या कभी किसी आन्दोलन को सफलता मिल सकती है? उस समय मुझे पंचतन्त्र का यह श्लोक याद आ रहा था---"यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नः गजस्तत्र न हन्यते।" यदि कुंअर परमेश्वरी सहाय जैसे आदमी लोकमत की बाढ़ को रोक सकने में या उसे अपने अनुकूल बनाने में समर्थ हो सकते, तो न फ्रांस से बूर्बो वंश का अन्त होता और न रूस से जारशाही का।

मैं तुरन्त कुंअर साहब की कोठी से होटल लौट आया। बेचारे शर्माजी एसोशियेशन की नौकरी में थे और कुंअर रघुराजसिंह अपनी जमींदारी को हाथ से जाता देखकर एसोशियेशन के सेक्रेटरी साहब से बात

करने के लिये उत्सुक थे। वे दोनों वहीं ठहर गये। बाद में उन्होंने मुझे बताया, कि कुंअर परमेश्वरी सहाय रात बजे से पहले बाहर नहीं निकले, और जब निकले, तो यह कहकर आगे बढ़ गये, ओह! अफसोस है, कि आज मैं आपसे बात नहीं कर सकूंगा। उनके साथ में ठाकुर गिरिराजसिंह और कतिपय भद्र महिलायें थीं। उन्हें डान्स के लिये तुरन्त क्लब जाना था।

२६ जून को जमींदार-एसोशियेशन की बैठक होटल मॉडर्न के लॉन्ज में हो गई। वहां क्या योजनायें बनाई गई, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। मैं यही जानता हूं, कि उस दिन होटल के बाररूम में खूब रौनक आ गई। ह्विस्की और शाम्पेन की दर्जनों बोतलें खाली हो गई। जमींदार साहेबान के कहकहों से होटल के मेहमान परेशान हो गये और कुछ महिलाओं ने दफ्तर में आकर मुझसे कहा—यह मीटिंग कब तक जारी रहेगी? इसके शोर के कारण उनके लिये आराम कर सकना असम्भव हो गया है। उस समय मुझे वीएना की कांग्रेस (१८१४) का स्मरण आ रहा था, जिसमें यूरोप भर के राजा-महाराजा एकत्र होकर फ्रांस की राज्यक्रान्ति को सदा के लिये दफनाने की योजनायें तैयार कर रहे थे। वीएना की इस कांग्रेस में शाम्पेन की नदियां बह रही थीं, कहकहों और हंसी के मारे नगर-निवासियों की नींद हराम हो गई थी और यूरोप के भाग्य का निर्णय हंसी-मजाक के साथ किया गया था। बाद में कुंअर रघुराजसिंह ने मुझे बताया, कि उन्होंने बड़ी हिम्मत करके एसोशियेशन के सम्मुख यह विचार रखा था, कि एक फण्ड जमा किया जाय, जिसमें सब जमींदार अपनी आमदनी का दस फी सदी दान दें, और इस रुपये का प्रयोग जमींदारी-प्रथा के पक्ष में प्रचार करने के लिये किया जाय। यह योजना सुनकर [illegible] साहब हंसकर बोले—लो भाई, एक और चन्दा सिर पर आ गया। पहले ही चन्दे के मारे नाक में दम है। अरे साहब, [illegible] कांग्रेसी लोग लिया करें, [illegible] नहीं चाहते। यह सुनकर सब जमींदार कहकहा मारकर हंस पड़े, और सभा वहीं समाप्त हो गई।

# (१३)

## पण्डित विष्णुराव दाण्डेकर

जून के शुरू होते-होते रामनगर के गांधी-आश्रम के संचालक सुभाष भाई मेरे पास आये, और कहने लगे, कि उनके एक मित्र महाराष्ट्र से पधारे हैं, और उनके निवास के लिये कहीं व्यवस्था करनी है। इस समय तक रामनगर में मेरा अच्छा परिचय हो गया था। कांग्रेस, आर्यसमाज, खादी-भण्डार आदि सब क्षेत्रों के लोग मुझे जान गये थे। उन्हें मालूम हो गया था, कि होटल का मालिक होते हुए भी मुझे सार्वजनिक जीवन का भी कुछ शौक है, और मेरे दिल में देश-सेवकों के प्रति आदर की भावना विद्यमान है। सुभाष भाई की खादी की दूकान से मैं बहुधा खद्दर खरीदा करता था, और स्वयं भी शुद्ध खादी के वस्त्र पहनता था। सुभाष भाई को विश्वास था, कि मेरे सदृश सहृदय व्यक्ति से उन्हें निराश नहीं होना पड़ेगा। उन्होंने मुझे बताया, कि उनके मित्र का नाम पण्डित विष्णुराव दाण्डेकर है, और उन्होंने सत्याग्रह-संग्राम में अत्यधिक कष्ट उठाये हैं। वे कई बार जेल गये हैं, और जेल के कष्टप्रद जीवन और अंग्रेजी सरकार के अमानुषिक अत्याचारों के कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो गया है। डाक्टरों के परामर्श से वे रामनगर आये हैं, और गरमी के महीने यहां बिताकर अपने स्वास्थ्य का सुधार करना चाहते हैं। दाण्डेकरजी अधिक पैसे तो नहीं खर्च कर सकेंगे, पर यदि कोई छोटा कमरा उन्हें दिया जा सके, तो उसके बिजली-पानी आदि का व्यय वे दे देंगे। सुभाष भाई ने कहा, दाण्डेकरजी सीजन भर के लिये अधिक से अधिक सौ रुपया किराये में खर्च करना चाहते हैं। भारत की स्वाधीनता के लिये जिन लोगों ने अपने जीवन को स्वाहा कर दिया हो, ऐसे महानुभावों के प्रति मेरे हृदय में बहुत अधिक आदर था। मैंने सुभाष भाई से कह दिया, रुपये की आप चिन्ता न करें। यदि आपके

मित्र बिजली-पानी का खर्च दे सकें, तो अच्छा है, अन्यथा वे इसकी भी फिक्र न करें।

दो दिन बाद पण्डित विष्णुराव दाण्डेकर अपना असबाब लेकर होटल मॉडर्न आ गये। उनके कन्धे पर एक झोला था, सिर नंगा था, पैरों में चप्पल थे और तन पर शुद्ध खादी के वस्त्र विराजमान थे। इनसे मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। एक छोटे कमरे में उनके निवास का प्रबन्ध कर दिया गया। मेरी इच्छा थी, वे भोजन भी होटल में करें। जहां सौ से ऊपर आदमियों का भोजन बनता हो, वहां इन दुबले-पतले सज्जन के लिये भोजन निकाल सकना कोई कठिन बात नहीं थी। पर पण्डित दाण्डेकर कच्ची गाजर मूली और फलों से अपना निर्वाह करते थे। डाक्टरों के आदेश को मानकर वे गरिष्ठ भोजन से परहेज करते थे। थोड़े दिनों के निवास में ही उन्होंने रामनगर के कुछ मध्यवर्ग के नर-नारियों के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया था। ये लोग बहुधा उन्हें अपने घर भोजन के लिये निमन्त्रित करते रहते थे, और वहां उन्हें उस ढंग का सादा उबला हुआ भोजन मिल जाता था, जिसे पचाने में उनका शरीर समर्थ था। कभी-कभी वे मेरे साथ बैठकर भी दूध, फल व सादा खाना खा लेते थे।

कुछ ही दिनों में पण्डित दाण्डेकर से मेरी अच्छी घनिष्ठता हो गई। वे महाराष्ट्र के एक कुलीन ब्राह्मण-घर में उत्पन्न हुए थे। सतरह साल की आयु में ही वे स्वराज्य-आन्दोलन में पड़ गये। इसलिये उनकी बाकायदा शिक्षा नहीं हो सकी। फिर भी मराठी, गुजराती, हिन्दी और कन्नड़ भाषाओं का उन्हें अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी भी वे साधारण रूप से समझ लेते थे। दक्षिण-भारत के सन्तों की वाणियों का उन्होंने भली-भांति अध्ययन किया था। साबरमती और वर्धा के गांधी-आश्रमों में चिरकाल तक रहने के कारण वे गांधीवाद के अच्छे ज्ञाता हो गये थे और गीता व उपनिषदों के अध्यात्मज्ञान से भी उन्हें पर्याप्त परिचय था। पण्डित दाण्डेकर अपनी जीवन-गाथा प्रायः मुझे सुनाते रहते थे। कुल मिलाकर वे दस साल से

भी अधिक समय तक जेल में रहे थे। १९४२ में जब गांधीजी ने 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का आन्दोलन शुरू किया, तो उन्होंने पूना के समीप रेल की पटरियां उखाड़ने और टेलीफोन व टेलीग्राफ की तारें काटने के कार्य को संगठित किया। रुपये की समस्या को हल करने के लिये उन्होंने कतिपय ऐसे कार्य भी किये, जो गांधीवाद के अनुकूल नहीं थे। भारत में अंग्रेजी शासन को असम्भव बना देना है, यह उस युग में प्रत्येक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता का ध्येय था। पण्डित दाण्डेकर कुछ समय तक ऐसे दल में भी शामिल रहे, जो जाली नोट बनाता था। इन जाली रुपयों का उपयोग पण्डित दाण्डेकर अपने साथी सत्याग्रहियों के निर्वाह के लिये करते थे। जनवरी, १९४३ में पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। जेल में उन पर घोर अत्याचार किये गये। पुलिस चाहती थी, कि पण्डित दाण्डेकर अपने साथियों का पता बता दें, ताकि उन्हें भी गिरफ्तार किया जा सके। इसके लिये उन्हें काल-कोठरी में बन्द किया गया, कोड़ों से पीटा गया और पीटते-पीटते दीवार से नीचे धक्का दे दिया गया। दीवार से दस फीट नीचे गिरने के कारण पण्डित दाण्डेकर के पेट में कोई ऐसा आघात पहुंचा, जिससे उनका आमाशय बिलकुल निःशक्त हो गया। उनमें यह शक्ति भी नहीं रही, कि वे दूध या उबली सब्जी को भी पचा सकें। जेल के अत्याचारों से परेशान होकर उन्होंने आमरण अनशन करने का संकल्प किया। १२५ दिन तक वे निराहार रहे। नाक के रास्ते नली डालकर उनके पेट में भोजन पहुंचाया गया, और जेल के दयालु अफसरों ने उनको मरने नहीं दिया। वे अपनी नाक दिखाकर मुझे बताया करते थे, महीनों तक निरन्तर रबड़ की नली डालने से यह नाक कितनी अधिक फूल गई है। वे बहुधा कै करके उस भोजन को पेट से बाहर निकाल देते थे, जो नली द्वारा नाक की राह से उनके पेट में पहुंचाया जाता था। अनशन के कारण जब वे बहुत कमजोर हो गये, तो उन्हें शरीर के पोषक तत्त्वों का इन्जेक्शन दिया जाने लगा। पण्डित दाण्डेकर मुझे बताते थे, कि ये इन्जेक्शन बहुत ही अधिक कष्टप्रद

होते थे, और कमजोर शरीर के लिये उन्हें सह सकना बहुत कठिन था। अन्त में अपने साथी-मित्रों की प्रेरणा से उन्होंने अनशन समाप्त किया। पर जेल की मारपीट और १२५ दिनों के अनशन से उनका शरीर इतना अधिक खराब हो गया था, कि अब वे किसी मेहनत के योग्य नहीं रहे थे। अब तो उन्हें अपनी जिन्दगी के शेष दिन किसी पहाड़ी स्थान पर रहकर ही बिताने थे, क्योंकि मैदान की गरमी को सह सकने की शक्ति उनके शरीर में नहीं रही थी। पहाड़ों का खर्च वे कहां से लावें, यह उनके सम्मुख एक विकट समस्या थी।

मैंने पण्डित दाण्डेकार से कहा, क्यों नहीं आप यह प्रयत्न करते, कि सरकार द्वारा आपको मासिक अलाउन्स मिलता रहे? अब भारत में स्वराज्य-सरकार विद्यमान थी। कांग्रेस की यह नीति थी, कि जिन लोगों ने स्वराज्य-संग्राम में भाग लिया था, उन्हें सरकार की ओर से सहायता दी जाय। मैं ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानता था, जो दो-तीन महीने जेल हो आये थे और अब ५० से १०० रु० मासिक तक सरकार से वृत्ति पा रहे थे। मैंने कहा, जो देशभक्त दस साल से भी अधिक जेल रह आया है, सरकारी अत्याचारों के कारण जिसका शरीर क्षत-विक्षत हो गया है, कांग्रेसी सरकार बड़ी प्रसन्नता से उसके भरण-पोषण का भार तो अपने ऊपर ले ही लेगी। पण्डित दाण्डेकार ने उत्तर दिया, उन्हें भली भांति मालूम है, कि सरकार सत्याग्रह-सैनिकों को मासिक वृत्ति दे रही है। उन्होंने स्वयं भी बम्बई की प्रान्तीय सरकार की सेवा में सहायता के लिये आवेदन-पत्र भेजा था। होम-सेक्रेटरी साहब ने उत्तर दिया, इस आवेदन-पत्र पर जिले के मजिस्ट्रेट साहब की सिफारिश होनी चाहिये, और किसी मजिस्ट्रेट द्वारा इस बात को [illegible] हिये, कि इस आवेदन-पत्र में लिखी सब बातें स[illegible] मुझे सुनाते थे, कि होम-सेक्रेटरी साहब के इस उत्तर को प्राप्त कर वे अपने शहर के सिटी मजिस्ट्रेट की अदालत में हाजिर हुए। मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर वे ही सज्जन विराजमान थे, जिनके

हुकुम से जेल में उन पर अमानुषिक अत्याचार किये गये थे, और उनकी पीठ पर कोड़ों की मार पड़ी थी । १९४३ में ये सज्जन अंग्रेजी हुकूमत के पिट्ठू थे, देशभक्त सत्याग्रहियों से इन्हें जरा भी सहानुभूति नहीं थी, उन पर अत्याचार करने में इन्हें हार्दिक आनन्द अनुभव होता था। कांग्रेसी सरकार कायम हो जाने पर ये कांग्रेस के भक्त बन गये थे, और बम्बई के गृहमन्त्री ने व्यवस्थापिका सभा तक मे इनके कार्य की प्रशंसा की थी । पण्डित दाण्डेकर आवेश में आकर मुझे कहने लगे, क्या यह कभी सम्भव था, कि इस नरपशु की सेवा में मै अपना आवेदन-पत्र पेश करूं ? इस देश-द्रोही से मैं अपनी देशभक्ति का सर्टिफिकेट लूं ? चांदी के कुछ टुकड़ों के लिये मैं अपने को इतना नीचे नहीं गिरा सकता था। पण्डित दाण्डेकर आवेदन-पत्र की सचाई को प्रमाणित कराये बिना ही वापस लौट आये, और फिर उन्होंने सरकारी वृत्ति प्राप्त करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। पण्डित दाण्डेकर मुझे कहते थे, कि उनके समान सैकड़ों अन्य सत्याग्रही सैनिक हैं, जिनमें आत्मसम्मान की भावना विद्यमान है। भूखे मरते हुए और बेरोजगार रहते हुए भी वे उन मजिस्ट्रेटों की सेवा में उपस्थित नहीं हुए, जो कांग्रेस के आवाहन की सर्वथा उपेक्षा करते हुए विदेशी शासन की जड़ों को मजबूत करने में ही अपनी भलाई समझते थे, और जिन्होंने अब गिरगिट की तरह अपना रंग बदल लिया था। मैं उन्हें समझाता था, राज्य के कर्मचारी पार्टी-पालिटिक्स से पृथक् रहते हैं। उनका कर्तव्य केवल यह होता है, कि अपने अफसरों की आज्ञा का पालन करें। जब वे मजिस्ट्रेट अंग्रेजी सरकार की नौकरी में थे, उसके आदेश मानते थे । अब कांग्रेसी सरकार है, उसकी आज्ञा मानते हैं। यदि बाद में कभी किसी अन्य दल का शासन कायम हुआ, तो उसके आदेशों का अनुसरण करना ही इनका कर्तव्य होगा। पर पण्डित दाण्डेकर इस विषय में मुझसे सहमत नहीं थे। वे कहते थे, किसी देश पर विदेशी शासन पार्टी-पालिटिक्स से भिन्न बात होती है । जब विदेशी सरकार के खिलाफ लड़ाई की घोषणा हो चुकी

हो, चाहे यह लड़ाई अहिंसा पर आश्रित ही क्यों न हो, जब जो भी आदमी विदेशी शासकों का साथ देता है, वह देश का शत्रु होता है। उसके साथ वही व्यवहार किया जाना चाहिये, जो 'फिफ्थ कालमिस्ट' के साथ किया जाता है।

पण्डित दाण्डेकर को रुपये की बड़ी तंगी थी। उनके मन में आया, क्यों न रामनगर में बच्चों का एक स्कूल खोल लिया जाय। शिक्षा का उन्हें अच्छा अनुभव था। मान्टिसरी शिक्षा-पद्धति की वे ट्रेनिंग पा चुके थे। साबरमती-आश्रम में रहते हुए उन्होंने पड़ोस के गांवों में बच्चों का एक स्कूल भी चलाया था। उन्होंने सोचा, यदि होटल मॉडर्न के किसी कोने में उन्हें एक अच्छा बड़ा कमरा मिल जाय, तो वे वहा बच्चों का स्कूल लगाकर अपने निर्वाह के योग्य रुपया प्राप्त कर सकेंगे। पण्डित दाण्डेकर के प्रति मेरे हृदय में सम्मान उत्पन्न हो चुका था, मेरे दिल में उनके लिये सच्ची सहानुभूति थी। होटल मॉडर्न का विशाल बालरूम ( नाचघर ) खाली पड़ा था, अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद इसका कोई उपयोग नहीं रह गया था। मैंने यह बालरूम उनके सुपुर्द कर दिया, और उन्हें सब प्रकार से सहायता देने का वचन दिया। रामनगर में ऐसे सम्पन्न लोगों की कमी नहीं थी, जो वहां मजे से अपना समय बिताने आये थे। बच्चों की संभाल करना इनके लिये एक समस्या बनी रहती थी। यदि छोटे बच्चों को कुछ घण्टों के लिये किसी स्कूल में भेजा जा सके, तो इनके सिर से बला-सी टल जाती थी। पण्डित दाण्डेकर को विश्वास था, कि रामनगर के सम्पन्न यात्री उनके स्कूल का हृदय से स्वागत करेंगे, और उन्हें बच्चे प्राप्त करने में विशेष कठिनता नहीं होगी। वे यह भी स्वप्न देखते थे, कि उनके व्यवहार से कुछ सज्जन इतने प्रभावित हो जावेंगे, कि अपने बच्चों को उन्हीं के स्कूल में बोर्डर के रूप में भरती कराने में भी संकोच नहीं करेंगे। यदि उन्हें दस-बारह बोर्डर भी मिल गये, तो उनका स्कूल अच्छा चल निकलेगा। अंग्रेजी व ईसाई स्कूलों में भारतीय लोग १५० से २०० रु०

मासिक तक खर्च करने में भी संकोच नहीं करते। इस दशा में यदि वे बोर्डरों के लिये ७५ रु० मासिक फीस रखें, इसमें निवास, भोजन, शिक्षा आदि का सब खर्च चल जाय, तो उन्हें बच्चे क्यों नहीं मिलेंगे? स्वराज्य और राष्ट्रीयता के इस युग में ऐसे लोगों की कमी नहीं होनी चाहिये, जो विदेशी भाषा, विधर्मी संस्कृति और अंग्रेजी रहन-सहन के वातावरण के मुकाबले में राष्ट्रीय वातावरण को पसन्द करें।

रामनगर के अनेक सज्जनों ने पण्डित दाण्डेकर की योजना का स्वागत किया। स्कूल का नाम 'बालोद्यान' रखा गया। उसका एक परिचय-पत्र छपवा लिया गया, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया, कि इस स्कूल में भारतीय वातावरण में आधुनिक शैली पर बच्चों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध है। पर रामनगर में निवास के लिये आये हुए किसी भी धनी-मानी सज्जन का ध्यान इस स्कूल की ओर आकृष्ट नहीं हुआ। सप्ताह भर तक पण्डित दाण्डेकर दौड़-धूप करते रहे, कितने ही लोगों से वे खुद जाकर मिले। पर उनके राष्ट्रीय आदर्शों से कोई प्रभावित नहीं हुआ। निराश होकर जब वे मेरे पास आये, तो मैंने उन्हें सलाह दी, कि भाई, भारत के जिस उच्च वर्ग के लोग रामनगर में आते हैं, वे 'बालोद्यान' का न मतलब समझते हैं, और न इसके आदर्श ही उन्हें अपील करते हैं। अंग्रेजी राज चला गया, पर अंग्रेजियत का राज अभी नहीं गया। स्कूल का नाम रखो—'किंडर गार्टन एण्ड प्रेपेरेटरी स्कूल' और उसका प्रोस्पेक्टस अंग्रेजी में निकालकर उसमें लिखो, कि इस स्कूल में मान्टेसरी प्रणाली के अनुसार बच्चों को शिक्षा दी जाती है। अनिच्छा होते हुए भी पण्डित दाण्डेकर ने मेरे परामर्श को स्वीकार किया। स्कूल का नाम बदल दिया गया, और उसका नया प्रास्पेक्टस अंग्रेजी में छपवा लिया गया। अब कुछ लोग पण्डित दाण्डेकर के स्कूल के प्रति आकृष्ट हुए। मैंने भी होटल मॉडर्न में ठहरे हुए कतिपय सज्जनों को प्रेरित किया। परिणाम यह हुआ, कि दस दिन में आठ बच्चे किंडर गार्टन एण्ड प्रेपेरेटरी स्कूल में

प्रविष्ट हो गये। स्कूल की फीस दस रुपया मासिक रखी गई थी। प्रति मास ८० रु० प्राप्त करने की कल्पना से पण्डित दाण्डेकर का मुख-कमल खिल गया। उनके मुरझाये हुए चेहरे पर हँसी के चिह्न प्रगट होने लगे। उन्होंने स्कूल के लिये खूब दिल खोलकर खर्च किया। बच्चों के बैठने के लिये छोटी-छोटी कुर्सियां बनवाई, किताबें रखने के लिये छोटी-छोटी मेजें। बहुत-से खिलौने बाजार से खरीद लिये गये, और शिक्षाप्रद चित्रों से होटल मॉडर्न का बालरूम सुसज्जित कर दिया गया। पण्डित दाण्डेकर के पास रुपया तो था नहीं। दूकानदारों ने समझा, होटल मॉडर्नवालों का स्कूल है। बिल की रकम प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। सब सामान उधार पर आ गया।

पण्डित दाण्डेकर के स्कूल को बच्चे बहुत पसन्द करते थे। वे उनके साथ खेलते, पड़ोस के पर्वत-शिखरों पर उन्हें घूमने ले जाते और देशभक्ति के गाने गवाकर उनके चित्त को प्रसन्न करते। वे उन्हें देश-विदेश के अद्-भुत वृत्त सुनाते और पण्डित देवीदत्त शर्मा के किन्डर गार्टन बक्सों की सहायता से उन्हें अक्षरों का ज्ञान कराने का प्रयत्न करते। पर बच्चों के मां-बापों को पण्डित दाण्डेकर के स्कूल से सन्तोष नहीं था। वे कहते थे, बच्चों को छोटी आयु में ही अंग्रेजी का अभ्यास अवश्य कराना चाहिये। अंग्रेजी सिखाने के लिए कोई अंग्रेज महिला हो, तो बहुत अच्छा है। यदि अंग्रेज महिला न हो, तो कोई एंग्लोइण्डियन महिला तो अवश्य होनी चाहिये, ताकि बच्चों का 'एक्सेन्ट' ठीक हो। पण्डित दाण्डेकर अंग्रेजियत के कट्टर विरोधी थे। उनका विचार था, कि छोटे बच्चों को मातृभाषा में ही शिक्षा दी जानी चाहिये। अंग्रेजी पढ़ाना असली शिक्षा नहीं है। पर भारत का उच्च वर्ग उनके विचारों से कहां सहमत हो सकता था? कुछ बच्चे स्कूल से हटा लिये गये। अब पण्डित दाण्डेकर के होश-हवाश ठिकाने आये। वे मुझे अपना परम सहायक व पथ-प्रदर्शक मानते थे। वे फिर मुझसे सलाह लेने आये। मैंने कहा, देखो भाई, यदि स्कूल को सफल

बनाना है, तो जमाने की चाल से अलग रहकर काम नहीं चलेगा। यदि अपने आदर्शों को सम्मुख रखकर काम करना है, तो किसी छोटे-से गांव में जाकर बैठो। बच्चों को मुफ्त पढ़ाओ, किताबें भी अपने पास से दो। तब चाहो तो उनसे तकली कतवाओ और चाहो तो उनसे खेती कर-वाओ। पर जब रामनगर-जैसे स्थान पर बैठकर दस रुपया मासिक फीस लेकर बच्चों को भरती करना है, तो अंग्रेजियत की उपेक्षा करके काम नहीं चलेगा। दो-एक घण्टे के लिये किसी एंग्लोइण्डियन महिला को स्कूल में टीचर रख लो, और अंग्रेजी पढ़ाने का कार्य उसके सुपुर्द कर दो। मेरी बात पण्डित दाण्डेकर को समझ में आ गई। टीचर ढूंढने के लिये कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं हुई। होटल मॉडर्न की मैनेजर मिसेज विन्स्टेन्ट खाली समय में कुछ अतिरिक्त आमदनी करने के लिये उत्सुक थीं। उनसे मामला पट गया, ३० रु० मासिक पर उन्होंने स्कूल में डेढ़ घण्टा काम करना स्वीकार कर लिया।

रामनगर के धनी-मानी सज्जनों को जब मालूम हुआ, कि 'किंडर गार्डन एण्ड प्रेपेरेटरी स्कूल' में एक मेम साहब अंग्रेजी पढ़ाती हैं, तो उनका ध्यान पण्डित दाण्डेकर के स्कूल की तरफ विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। जो बच्चे स्कूल से उठा लिये गये थे, वे फिर उसमें प्रविष्ट करा दिये गये। सात नये बच्चे भी दाखिल हुए। अब पण्डित दाण्डेकर के स्कूल में १५ बच्चे प्रविष्ट हो गये थे, और वे मुझे सत्परामर्श के लिये हृदय से धन्यवाद देते थे। महीने भर बाद बच्चों की संख्या में और अधिक वृद्धि हुई। चार बोर्डर भी पण्डित दाण्डेकर को मिल गये। अब इन्होंने अनुभव किया, कि मिसेज विन्सेन्ट से काम नहीं चल सकेगा। एक ऐसी एंग्लोइण्डियन महिला चाहिये, जो अपना पूरा समय स्कूल को दे सके, और जो स्कूल के बोर्डिंग हाउस में मेट्रन का भी काम कर सके। ऐसी महिला का मिल सकना राम-नगर जैसे स्थान में कठिन नहीं था। मिस स्मिथ चौबीस वर्ष की आयु की युवती थीं, जो अनेक बार प्रयत्न करने पर भी जूनियर कैम्ब्रिज परीक्षा

उत्तीर्ण नहीं कर सकी थीं। टाइप करने में वे चतुर थीं, और एक बड़ी दुकान पर टाइपिस्ट गर्ल का काम करती थी। एंग्लोइण्डियन होते हुए भी देखने में वे अंग्रेजी महिला प्रतीत होती थीं, और सही 'एक्सेन्ट' से अंग्रेजी बोलती थीं। टाइपिस्ट की नौकरी से उन्हें ८० रु० मासिक मिलता था। मेरी सिफारिश पर पण्डित दाण्डेकर ने उन्हें १०० रु० मासिक पर रख लिया। रहने की जगह मैंने उन्हें मुफ्त दे दी। अब पण्डित दाण्डेकर यह कह सकते थे, कि किंडर गार्टन एण्ड प्रेपरेटरी स्कूल में मैट्रन के पद पर एक सुशिक्षित महिला कार्य करती हैं, और बच्चों की देख-रेख का उनके स्कूल में समुचित प्रबन्ध है।

मिस स्मिथ के कारण पण्डित दाण्डेकर का स्कूल चमक उठा। उसमें ३५ डेस्कालर (केवल पढ़ने के लिये आनेवाले छात्र) और १२ बोर्डर भरती हो गये। अब उनके लिये यह सम्भव नहीं था, कि वे अकेले मिस स्मिथ की सहायता से इतने बच्चों को संभाल सकते। उन्होंने अपनी सहायता के लिये दो अन्य अध्यापकों को नियुक्त किया। इनमें से एक शास्त्री और बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण थे, और हिन्दी, इतिहास, भूगोल आदि के अच्छे पण्डित थे। दूसरे सज्जन एफ० एस-सी० ट्रेन्ड थे, और गणित व सायन्स भली भांति पढ़ा सकते थे। अब पण्डित दाण्डेकर को स्कूल से १२०० रु० के लगभग प्रति मास प्राप्त हो जाता था। टीचरों का वेतन व बोर्डरों का भोजन-व्यय आदि देकर भी उन्हें १२५ रु० मासिक के लगभग बचने लगा था। मकान का उन्हें कोई किराया नहीं देना होता था। जून की समाप्ति पर होटल मॉडर्न के बहुत-से कमरे खाली हो गये थे। मैंने कुछ कमरे दाण्डेकर के स्कूल के लिये मुफ्त दे दिये थे। मेरी हार्दिक इच्छा थी, कि भारत के स्वराज्य-संग्राम का यह सिपाही आत्मसम्मान के साथ अपना निर्वाह चलाने में समर्थ हो जाय। साथ ही मैं यह भी समझता था, कि पण्डित दाण्डेकर जिस ढंग से बच्चों को शिक्षा देते हैं, वह वस्तुतः देश की सेवा है। अब पण्डित दाण्डेकर के स्वास्थ्य में भी सुधार होने लगा था।

दूध-फल व दवा खरीदने के लिये अब उनके हाथ में पैसा हो गया था, और इसे वे उदारता के साथ खर्च करते थे। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती थी, कि उनके चेहरे पर रौनक आने लगी है।

इस बीच में एक बड़े सेठ रामनगर आये। ये कट्टर गांधीवादी थे, अनेक बार जेल जा चुके थे और स्वराज्य-आन्दोलन में इन्होंने अपने रुपये को पानी की तरह से बहाया था। पण्डित दाण्डेकर से ये भली भांति परिचित थे, और उनकी देश-सेवा का आदर करते थे।

सेठजी के रामनगर पधारने का समाचार सुनकर पण्डित दाण्डेकर की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उन्होंने सोचा, अब उनका भाग्य सूर्य उदय हो गया है। सेठजी उनके स्कूल को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होंगे। स्वराज्य-संग्राम तो अब समाप्त हो चुका, अब तो राष्ट्रीय पुनःनिर्माण का युग है। उच्च वर्ग के बच्चों की पढ़ाई के लिये अब तक कोई ऐसा स्कूल नहीं था, जिसमें राष्ट्रीय वातावरण हो। पण्डित दाण्डेकर ने एक भारी कमी को पूरा किया था। सेठजी इस स्कूल को देखकर फूले नहीं समावेंगे। वे करोड़पति हैं, उनके लिये क्या कठिन है, कि स्कूल की इमारत के लिये एक लाख रुपया दे दें। होटल मॉडर्न में कब तक स्कूल को रखा जा सकता है? अपनी इमारत हुए बिना उसकी उन्नति असम्भव है। यदि सेठजी ने इमारत के लिये रुपया दे दिया, तो अन्य देश-प्रेमी सेठों से इतना चन्दा प्राप्त कर सकना सम्भव हो जायगा, जिससे स्कूल आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त हो जाय।

सेठजी ने एक बड़ी कोठी किराये पर ले रखी थी। वे अकेले रामनगर नहीं आये थे, उनके साथ उनके पुत्र-पौत्रों के अतिरिक्त अनेक देश-सेवक भी स्वास्थ्य-सुधार के लिये वहां पधारे थे। पण्डित दाण्डेकर सेठजी से मिलने उनकी कोठी पर गये। साथ में किंडर गार्टन एण्ड प्रेपेरेटरी स्कूल के अंग्रेजी प्रोस्पेक्टस की कुछ प्रतियां भी लेते गये। सेठजी चरखा कात रहे थे। लाखों रुपये महीने पैदा करनेवाला यह करोड़पति सेठ प्रति दिन

सुबह-शाम सूत कातता था और अपने सूत के बुने कपड़े ही पहनता था। उनके साथ बैठे हुए एक अन्य सज्जन भी तकली पर सूत कात रहे थे। ये एक प्रसिद्ध गांधीवादी नेता थे, और गांधीवाद के प्रमुख प्रतिपादकों में इनकी गिनती थी। इनका असली नाम मैं पाठकों को नहीं बताऊंगा। इस पुस्तक के प्रयोजन के लिये आप समझ लीजिये, कि इनका नाम आचार्य चिपणूलकर था। इनके शरीर पर केवल एक लंगोटी थी और रामनगर के शीत से रक्षा के लिये इन्होंने एक शाल ओढ़ा हुआ था। सम्भवतः सिले हुए कपड़े ये नहीं पहनते थे। आचार्य चिपणूलकर संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे और देश-सेवा में उन्होंने अपना तन-मन-धन सब न्योछावर किया हुआ था। सेठजी ने पण्डित दाण्डेकर का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। स्कूल की चर्चा छिड़ने पर उन्होंने कहा---आप आचार्य-जी को अपनी योजना समझाइये, मैं उसे ध्यान से सुनूंगा। पण्डित दाण्डेकर मुझे अपने साथ ले गये थे। कोट-पतलून और नेकटाई लगाये हुए मैं इस मण्डली में ऐसा लग रहा था, जैसे हंसों के बीच में कौआ। आचार्य चिपणूल-कर सदृश विद्वान् के सम्मुख अपनी योजना सुनाने में पण्डित दाण्डेकर ने कुछ संकोच अनुभव किया। उन्होंने मुझसे आग्रह किया, कि मैं स्कूल के आदर्श उन्हें संक्षेप से बता दूं। मैंने आचार्यजी से निवेदन किया, कि स्व-राज्य की स्थापना हो जाने के बाद भी भारत के स्कूलों में अभी तक अंग्रेजि-यत का वातावरण है। वर्धा-योजना के अनुसार बेसिक तालीम के जो स्कूल स्थापित किये जा रहे हैं, वे सब प्रायः गरीब लोगों के लिये हैं। उच्च वर्ग के बालक जिन स्कूलों में शिक्षा पाते हैं, वे प्रायः ईसाई मिशनरियों या अंग्रेजों द्वारा संचालित हैं। इसका परिणाम यह होता है, कि देशभक्त व राष्ट्रवादी लोगों में भी जो धनी हैं, वे अपने बच्चों को इन्हीं स्कूलों में भेजते हैं। वहां उन्हें जो शिक्षा दी जाती है, वह राष्ट्रीयता के सर्वथा विपरीत होती है। इस बात को दृष्टि में रखकर पण्डित दाण्डेकर ने अपना स्कूल खोला है, जिसमें देशभक्ति और राष्ट्रीयता के वातावरण में आधुनिक शैली

पर शिक्षा देने का प्रयत्न किया जाता है। विद्यार्थियों का रहन-सहन इस ढंग का है, कि उच्च वर्ग के लोग भी उससे सन्तोष अनुभव कर सकते हैं। यह स्कूल देश की एक वास्तविक आवश्यकता को पूर्ण कर सकेगा।

आचार्य चिपणूलकर मेरी बात को ध्यान से सुनकर बोले—'पर इससे दरिद्रनारायण की सेवा तो नहीं होती ?' यह सुनकर पण्डित दाण्डेकर आपे से बाहर हो गये। वे खिजकर बोले—"आचार्यजी, आपके सुपुत्र अमेरिका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। देश के बड़े-बड़े नेताओं के बालक मसूरी के वुडस्टाक स्कूल और नैनीताल के शेरवुड कालिज में भरती हैं। क्या आप लोग इसी ढंग से दरिद्रनारायण की सेवा करना चाहते हैं ? वर्धा-योजना के अनुसार बेसिक स्कूल स्थापित कर आप लोग जो दरिद्रनारायण की उपासना कर रहे हैं, वह वस्तुतः उन गरीब व असहाय लोगों के लिये है, जो बेजबान हैं। आपकी दृष्टि में जो शिक्षा आपकी सन्तान को मिलनी चाहिये, गरीब लोग उसके अधिकारी नहीं हैं, और दरिद्रनारायण के लिये उपयुक्त शिक्षा आप-सदृश सम्पन्न नेताओं की सन्तान के किसी काम की नहीं है। दरिद्रनारायण की सेवा का ढोंग कर के आप देश के विचारशील लोगों को देर तक धोखे में नहीं रख सकते।" आचार्यजी को इस ढंग की बातें सुनने की आदत नहीं थी। पर पण्डित दाण्डेकर भी किसी से दबनेवाले नहीं थे। वे दस साल से भी अधिक समय तक जेल में रह चुके थे, स्वराज्य-संग्राम में उन्होंने अपने स्वास्थ्य तक की आहुति दे दी थी। आचार्य चिपणूलकर और कुछ नहीं बोले। वे न केवल प्रकाण्ड विद्वान् थे, पर साथ ही कुशल नीतिज्ञ भी थे। अब सेठजी ने अपना मुंह खोला। उन्होंने कहा—"दाण्डेकरजी, मैं आपका अभिप्राय समझ गया, मैं इस योजना पर विचार करूंगा।" यह लिखने की आवश्यकता नहीं, कि दाण्डेकरजी को सेठजी से एक पाई भी नहीं मिली, उनकी आशा-लता पर तुषारपात हो गया।

पण्डित दाण्डेकर के स्कूल को अनेक विपत्तियों का सामना करना

पड़ा। राजपूताना की एक बड़ी रियासत के दीवान रामनगर आये। उनका एक रिश्तेदार किंडर गार्टन एण्ड प्रेपरेटरी स्कूल में बोर्डर था। दीवान साहब की पत्नी, वे रानी कहाती थीं, उसे मिलने के लिये आईं। उनका एक अपना छोटा बच्चा था, जिसकी आयु तीन साल के लगभग थी। इसकी देखरेख के लिये उन्होंने एक आया रखी हुई थी। पण्डित दाण्डेकर के स्कूल में बच्चों की संभाल जिस ढंग से होती थी, उसे देखकर रानी साहिबा बहुत खुश हुईं। उनके मन में आया, क्यों न बेबी को भी कुछ दिन के लिये इसी स्कूल में छोड़ दिया जाय। बेबी की ओर से बेफिक्र होकर वे रामनगर-क्लब में अधिक समय बिता सकेंगी। डान्स और डिनर में शामिल होने पर उन्हें जल्दी घर लौट चलने की चिन्ता नहीं रहेगी, और वे अपने पतिदेव के साथ रामनगर के निवास का पूरा मजा उठा सकेंगी। पण्डित दाण्डेकर इतने छोटे बच्चे की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं थे। पर इतने प्रतिष्ठित कुटुम्ब के बच्चे को प्रविष्ट करने से इनकार करना भी उन्हें उचित प्रतीत नहीं होता था। सोच-समझकर उन्होंने यह फैसला किया, कि बेबी को स्कूल में बोर्डर बना लिया जाय, पर उसकी आया साथ में रहे। रानी साहिबा इसके लिये तैयार हो गई। आया बेबी के पलंग के साथ ही फर्श पर बिस्तर बिछाकर सोने लगी। रात में बच्चों की देख-भाल के लिये पण्डित दाण्डेकर ने एक चौकीदार रखा हुआ था, जो कमरों के बाहर पहरा देने के अतिरिक्त कभी-कभी यह भी देख लेता था, कि किसी बच्चे का लिहाफ तो पलंग से नीचे नहीं गिर गया है। एक दिन यह बुड्ढा चौकीदार रात के समय बच्चों के कमरे के अन्दर आया। अचानक उस समय बेबी की आया की नींद खुली हुई थी। उसने समझा, चौकीदार उसके रूप से आकृष्ट होकर अभिसार के लिये कमरे के अन्दर आया है। अगले दिन वह बेबी को लेकर रानी साहिबा के पास गई, और रो-रोकर बोली—सरकार, उस स्कूल के सब आदमी बदमाश हैं। रात को बच्चों के कमरे में आते हैं, यह भी नहीं देखते कि एक स्त्री भी वहां सो रही है। पण्डित दाण्डेकर

ने रानी साहिबा को बहुत समझाया, दीवान साहब के सम्मुख भी सफाई पेश की। पर वहां तो पूरी मूर्खमण्डली जुटी हुई थी। दीवान साहब ने अपने रिश्तेदार बच्चे को तुरन्त स्कूल से निकाल लिया और सारे रामनगर में पण्डित दाण्डेकर व उनके स्कूल को बदनाम कर दिया। बदनामी व बुरी बातों को फैलने में देर नहीं लगती। दो सप्ताह में किंडर गार्टन एण्ड प्रेपरेटरी स्कूल के आधे के करीब बच्चों के नाम स्कूल से कटवा लिये गये।

पण्डित दाण्डेकर को अपने स्कूल के चलाने में अन्य जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ा, उनका उल्लेख मैं यहां नहीं करूंगा। दो साल तक वे निरन्तर संघर्ष करते रहे। पर उन्हें सफलता नहीं मिली। अन्त में उन्हें विवश होकर अपने स्कूल को बन्द करना पड़ा। वे अब भी बहुधा मुझे मिलते रहते हैं। उनका कहना है, हमारे देश के उच्च वर्ग में राष्ट्र-प्रेम की अभी बहुत कमी है। राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद भी देश मानसिक दासता से मुक्त नहीं हुआ है। देश के धनी-मानी व सम्पन्न लोग अंग्रेजी वातावरण में अपने बच्चों को पढ़ाना अधिक पसन्द करते हैं। उन्हें तब सन्तोष अनुभव होता है, जब उनके बच्चे पिताजी की जगह 'डैडी' और माताजी की जगह 'मामी' कहना सीख जावें। पण्डित दाण्डेकर मुझे यह भी बताते हैं, कि जिन लोगों ने अपने बच्चे उनके किंडर गार्टन एण्ड प्रेपरेटरी स्कूल में भरती किये थे, वे उनकी अपेक्षा मिस स्मिथ को अधिक महत्त्व देते थे। लोगों की दृष्टि में उनके स्कूल में यदि किसी का आकर्षण था, तो वह मिस स्मिथ का था। उनका ख्याल है, कि यदि वे अपने स्कूल में दो भारतीय अध्यापकों की जगह पर भी दो एंग्लोइण्डियन शिक्षकों को नियुक्त कर लेते, तो उनका स्कूल कभी असफल न होता। पर जिस व्यक्ति ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष करते हुए यौवन को बिता दिया हो, वह अब इस बात के लिये कैसे तैयार हो सकता था, कि अपने पेट को भरने के लिये राष्ट्रीयता की विघातक शिक्षा का आयोजन करे?

## (१४)

# मिसेज आइलीन प्रसाद

मई मास में जो अनेक भद्रपुरुष व महिलायें होटल मॉडर्न में ठहरने के लिये पधारे, उनमें मिसेज आइलीन प्रसाद व उनकी कतिपय सहेलियों का उल्लेख आवश्यक है। मिसेज प्रसाद विशुद्ध अंग्रेज महिला थीं, पर उन्होंने एक भारतीय के साथ विवाह किया हुआ था। मि० प्रसाद कानपुर के इन्जिनियर थे। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से इन्जीनियरिंग की शिक्षा समाप्त कर वे उच्च शिक्षा के लिये बिलायत गये थे, और वहां मिस आइलीन के प्रेमपाश में बंध गये थे। मि० प्रसाद से मेरा उस समय से परिचय था, जब मैं और वह एक साथ बेलसाइज एवेन्यू, लण्डन के एक बोर्डिंग हाउस में निवास करते थे। हमारे बोर्डिंग हाउस की मालकिन मिसेज रसेल थीं, जो बहुत वृद्ध थीं। अपनी सहायता के लिये उन्होंने मिसेज न्यूटन को हाउसकीपर रखा हुआ था। नाम को तो मिसेज न्यूटन हाउसकीपर थीं, पर असल में वे बावर्चिन और बेयरा दोनों का काम करती थीं। मिसेज रसेल के बोर्डिंग में कुल मिलाकर दस कमरे थे, जिनमें औसतन बारह व्यक्ति निवास करते थे। इनमें से दो-तीन व्यक्ति ही ऐसे थे, जो लंच या डिनर बोर्डिंग हाउस में खाते थे। हां, सुबह की चाय या ब्रेक फास्ट (प्रातराश) सभी लोग मिसेज रसेल की किचन से प्राप्त करते थे, और इतने काम को मिसेज न्यूटन सुगमता से संभाल लेती थीं। आइलीन मिसेज न्यूटन की कन्या थीं। जिस समय की बात मैं कह रहा हूँ, उनकी आयु बीस साल की थी। यौवन उन पर छाया हुआ था, और कितने ही नवयुवक उन पर भौंरे के समान मंडराने लगे थे। मिसेज न्यूटन को २० शिलिंग (१३ रु० के लगभग) प्रति सप्ताह वेतन मिलता था, भोजन और निवास मुफ्त था। आइलीन अपनी माँ के साथ रहती थीं, और [illegible] काम करके अपनी माँ

की सहायता किया करती थी। इसके लिये मिसेज रसेल से उसे १० शिलिंग प्रति सप्ताह व भोजन मिल जाता था। उन दिनों (१९३७) लण्डन बहुत महंगा नहीं था। १० शिलिंग प्रति सप्ताह आइलीन के जेब-खर्च के लिये पर्याप्त था। इससे वह जहां भड़कीले पर सस्ते कपड़े खरीद सकती थी, वहां साथ ही पाउडर, रूज, लिपस्टिक आदि शृंगार की वस्तुओं पर भी दिल खोलकर खर्च कर लेती थी। मि० प्रसाद उसके रूप व नाज-नखरों पर मुग्ध हो गये। वे बाराबंकी जिले के एक सम्पन्न परिवार के व्यक्ति थे। घर से ६०० रु० प्रति मास उन्हें खर्च के लिये भेजा जाता था। मिसेज रसेल के बोर्डिंग में उन्होंने एक छोटा कमरा १०० रु० मासिक पर लिया हुआ था। इसमें सुबह की चाय, नाश्ता और डिनर की कीमत शामिल थी। दोपहर का लंच वे एक शिलिंग (ग्यारह आने के लगभग) देकर कहीं भी खा लेते थे। भोजन और निवास पर उनका १२५ रु० मासिक से अधिक खर्च नहीं आता था। इन्जीनियरिंग कालिज की फीस, धोबी, नाई आदि का खर्च देने के बाद भी उनके पास ३०० रु० मासिक बच जाता था, जिसे वे सिनेमा, नाच व अन्य आमोद-प्रमोद में खर्च कर सकते थे। आइलीन को यह समझने में देर नहीं लगी, कि मि० प्रसाद सोने की चिड़िया हैं, वे उस पर भरपूर खर्च कर सकते हैं। २० शिलिंग प्रति सप्ताह पानेवाली विधवा मां की यह रूपवती कन्या मि० प्रसाद पर रीझ गई। आइलीन और प्रसाद रोज सायंकाल क्लब जाते, घण्टों एक साथ डान्स करते, साथ बैठकर सुरापान करते और किसी बढ़िया रेस्तोरां में डिनर खाकर घर लौटते। आइलीन और प्रसाद की यह मैत्री शीघ्र ही अत्यधिक घनिष्ठता में परिवर्तित हो गई, और उन्होंने सिविल मैरिज एक्ट के अनुसार विवाह कर लिया।

जब मि० प्रसाद भारत वापस लौटे, तो आइलीन उनके साथ आई। अब वह मिसेज रसेल के बोर्डिंग हाउस में बरतन मलनेवाली मेड (नौकरानी) नहीं थी, वह मिसेज प्रसाद थी। मि० प्रसाद के घरवाले पुराने

ढंग के थे । वहां अब तक भी चौके-चूल्हे की संस्कृति का आधिपत्य था । आइलीन उसमें नहीं खप सकी । मि० प्रसाद को इस बात की आवश्यकता नहीं थी, कि अपनी मेम साहब को बाराबंकी जिले के अपने पुराने दकियानूसी घर में रखें । शीघ्र ही उन्हें सरकारी नौकरी मिल गई, और वे कानपुर के एक सरकारी बंगले में निवास करने लगे । कानपुर के उच्च वर्ग के लोगों में मि० प्रसाद का बहुत मान था । वे बिजली के महकमे के इन्जीनियर थे । मिल-मालिकों को उनसे अकसर काम पड़ता रहता था । महायुद्ध के जमाने में भारत के व्यवसायों की असाधारण उन्नति हुई थी, कारखाने रात-दिन काम करने लगे थे । इस हालत में बिजली की मांग बहुत बढ़ गई थी, और नया कनेक्शन प्राप्त करना या किलोवाट्स बढ़वा सकना बहुत कठिन हो गया था । बिजली देना मि० प्रसाद के हाथ में था । उन्हें खुश करने के लिये कानपुर के मिल-मालिक व व्यवसायपति रुपये को पानी की तरह बहाने को सदा तैयार रहते थे । अब मिसेज आइलीन प्रसाद के ठाठ का क्या पूछिये ? वे एक विशाल बंगले में रहती थीं, भेंट-उपहार व डालियों को रखने के लिये उनके पास जगह की कमी पड़ जाती थी, और दर्जनों नौकर उनके हुकुम को बजा लाने के लिये हर समय तैनात रहते थे । सब लोग आइलीन को मेमसाहब कहते थे । भारत में प्रत्येक अंग्रेज स्त्री मेम साहब कही जाती है । इंगलैण्ड में भी गरीब बसते हैं, वहां की बहुत-सी गौरांग देवियां भी जूठे बरतन मलकर, झाड़ू लगाकर या मैले कपड़े धोकर अपना गुजर करती हैं, इस बात का ज्ञान भारत के जन-समाज में बहुत कम है । अब आइलीन यह भूल गई थी, कि केवल दो साल पहले वह मिसेज [illegible] के डाइनिंग हाल में वही काम करती थी, जो भारत के होटलों में मसालची या घरों में बावर्चिनें किया करती हैं । उसे इस बात की कोई आवश्यकता नहीं थी, कि लोगों को अपने मां-बाप, कुटुम्ब या घर का परिचय दे । वह उस देश की रहनेवाली थी, जिसका भारत पर शासन था, और जिसका एक मामूली कुली भी भारत के बड़े से बड़े

धनपति या विद्वान् की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठ समझती था। मैंने सुना है, कि कभी-कभी अपने कुटुम्ब की चर्चा करने पर आइलीन कह देती थी, उसका लैण्डन में अपना बंगला है, और केन्ट का उसका फार्म बड़ा आलीशान है। वह अकसर यह भी कहा करती थी, कि काले लोगों के इस मुल्क में रहना उसे जरा भी पसन्द नहीं है। यहां उसे वह आराम कहां, जो 'होम' में था ?

होटल मॉडर्न रामनगर का सबसे बड़ा होटल था, अतः स्वाभाविक रूप से मि० प्रसाद ने अपनी मेम साहब के लिये उसमें एक बढ़िया कमरा रिजर्व कराने के लिये तार दिया था। तार में उन्होंने यह भी लिखा था, कि मिसेज चोपड़ा और मिसेज नायर के लिये दो सिंगल रूम चाहियें, जो मिसेज प्रसाद के कमरे के साथ ही हों। तार पाकर मैं यह नहीं समझा, कि ये तीनों देवियां असली इंगलिश हैं। इनके लिये तीन अच्छे कमरे रिजर्व कर दिये गये। ३० मई को कानपुर की यह मण्डली होटल आ गई। उस समय मैं दफ्तर में नहीं था, बदकिस्मती से मिसेज विन्सेन्ट भी किसी काम पर बाहर गई हुई थीं। होटल के दफ्तर में केवल बाबूजी विद्यमान थे, जो कैशबुक लिखने में व्यस्त थे। कुरता और पायजामा पहने हुए एक साधारण बाबू को देखकर मिसेज प्रसाद आपे से बाहर हो गईं। उन्होंने सोचा, वे किस थर्ड क्लास जगह पर आ गई हैं। हिन्दुस्तानियों के इस होटल में वे और उनकी सहेलियां कैसे रह सकेंगी ? पर यात्रा से वे सब बहुत थकी हुई थीं। मई की गरमी में कानपुर से रामनगर आना अत्यन्त कष्टप्रद था। अब उन्होंने यही उचित समझा, कि होटल में ठहरकर आराम कर लिया जाय और गुसल व लंच से निबट फिर किसी यूरोपियन होटल की तलाश की जाय। तीसरे पहर चाय पीकर मिसेज प्रसाद अपना शृंगार कर कमरे से नीचे उतरकर दफ्तर में आईं, तो मैं वहां मौजूद था। मिसेज रसेल के बोर्डिंग हाउस की 'आइलीन' को पहचानने में मुझे जरा भी कठिनाई नहीं हुई। मैंने कहा—हैलो, मिसेज प्रसाद, तुम यहां कब आईं ? अब मुझे

मालूम हुआ, कि कानपुर से जिन तीन महिलाओं के लिये कमरे रिजर्व कराये गये थे, वे यूरोपियन देवियां हैं, और मेरी पूर्व परिचित आइ-लीन व मिसेज प्रसाद भी उनमें से एक हैं। इतने वर्षों बाद मुझसे भेंट करके मिसेज प्रसाद ने प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने यह भी कहा, वे तो किसी दूसरे होटल की तलाश में जा रही थीं। पर जब होटल मॉडर्न का मालिक मैं हूं, तो वे अब अन्यत्र कहीं नहीं जावेंगी, यहीं रहेंगी। भाग्यचक्र किस प्रकार घूमता है? कभी मैं उस होटल में ठहरा था, जहां आइलीन और उसकी मां मेरे आराम का इन्तजाम करती थीं। अब आइलीन उस होटल में ठहरी थी, जहां उसके आराम का ख्याल करना मेरा कर्त्तव्य था।

आइलीन ने अपनी सहेलियों का मुझसे परिचय कराया। मिसेज चोपड़ा जर्मन थीं, और एक सरदारजी की पत्नी थीं। सरदार सन्तसिंह चोपड़ा कानपुर के एक बड़े धनिक थे, और लोहे को ढालकर सरिया बनाने-वाले एक कारखाने के मालिक थे। महायुद्ध से पहले १९३५ में वे यूरोप-यात्रा के लिये गये थे, और बॉन के एक रिस्तोरां में मेरी विल्हेल्मिना के साथ उनका परिचय हो गया था। उस समय सरदारजी की आयु ४० साल की थी और उनकी सिक्ख पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था। मेरी की आयु २० साल से अधिक नहीं थी, पर सरदारजी के धन व स्वस्थ शरीर से आकृष्ट होकर वे उनके साथ विवाह के लिये तैयार हो गईं। मिसेज नायर इटालियन थीं, और उनके पति कानपुर की एक मिल में चीफ अकाउन्टेन्ट थे। महायुद्ध के समय में कुछ दिनों के लिये इन दोनों महिलाओं पर सरकार की ओर से नजर भी रखी गई थी, क्योंकि भारत के खुफिया विभाग का ख्याल था, कि ये हिटलर और मुसोलिनी की गुप्तचर भी हो सकती हैं। पर शीघ्र ही सरकार का भ्रम दूर हो गया था, और इन पर से नजर हटा ली गई थी। मिसेज प्रसाद इंगलिश थीं, पर उनकी इन जर्मन और इटालियन देवियों के साथ गहरी दोस्ती थी। यूरोप में इंगलैण्ड की जर्मनी और इटली के साथ चाहे कितनी ही लड़ाई हो, इन देशों में चाहे कितनी

ही शत्रुता हो, पर साम्राज्यवाद के शिकार भारत-जैसे देशों में सब गोरांग लोग अपने को एक बिरादरी का अनुभव करते हैं। इंगलिश, जर्मन, इटालियन या चेक का भेद एशिया और अफ्रीका में नहीं रहता। वहां सब यूरोपियन मर्द साहब कहाते हैं, और सब गौरांग महिलायें मेम साहब। जिन दिनों जर्मनी के हवाई जहाज लण्डन पर बम्ब बरसा रहे थे, और इंगलैण्ड की सेनायें इटली पर आक्रमण करने में व्यग्र थीं, तब भी भारत के समाचार-पत्रों में विज्ञापन निकलते थे—"आवश्यकता है, एक इन्जीनियर की। यूरोपियन उम्मीदवार को तरजीह दी जायगी।" होटलों के विज्ञापनों में लिखा जाता था—"अण्डर यूरोपियन मैनेजमेन्ट।" महायुद्ध के समय में भी किसी को यह खयाल नहीं आता था, कि इंगलैण्ड, जर्मनी और इटली सब यूरोप में हैं, सबके निवासी यूरोपियन हैं। जर्मन या इटालियन इन्जीनियर के मुकाबले में तो भारतीय को तरजीह मिलनी चाहिये, और यदि किसी होटल का मैनेजर इटालियन हो, तो उसके मुकाबले में तो उस होटल को अधिक अच्छा समझा जाना चाहिये, जिसका प्रबन्ध एक भारतीय के अधीन है—एक ऐसे भारतीय के, जिसके बन्धु-बान्धव हिटलर और मुसोलिनी से इंगलैण्ड की रक्षा के लिये अपना खून बहा रहे हैं। पर यह विचार तक किसी के दिल में उत्पन्न नहीं होता था। इस दशा में यदि मिसेज आइलीन प्रसाद कानपुर में रहती हुई वहां की भारतीय महिलाओं के मुकाबले में जर्मन और इटालियन देवियों से मित्रता करें, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

आप कहेंगे, कि ये यूरोपियन महिलायें भारतीय पुरुषों के साथ विवाह कर भारत की नागरिक हो गई थीं, भारतीय बन गई थीं। पर मैं इससे सहमत नहीं हूँ। भारत के कानून के अनुसार किसी भारतीय की यूरोपियन पत्नी को भारतीय नागरिकता के अधिकार अवश्य प्राप्त हो जाते हैं, पर इससे वह भारतीय नहीं बन जाती। वह अपने को यूरोपियन समझती है, यूरोपियन ढंग से रहती है, और उसकी यह हार्दिक इच्छा रहती है, कि

उसकी सन्तान की शुमार यूरोपियन लोगों में हो। मिसेज चोपड़ा की एक कन्या थी, जिससे वे जर्मन भाषा में बात किया करती थीं। उसके दिमाग में यह कूट-कूटकर भर दिया गया था, कि वह जर्मन मां की सन्तान है। मिसेज चोपड़ा की यह कोशिश रहती थी, कि नसल, भाषा, संस्कृति आदि सब दृष्टियों से उनकी कन्या को जर्मन समझा जाय। वे उसे फ्रॉलाइन डाली सीपमान कहती थीं। वे स्वयं हेर सीपमान की कन्या थीं। उनकी पुत्री तो कुमारी चोपड़ा थी, पर वे अपनी कन्या को कुमारी डाली चोपड़ा न कहकर फ्रॉलाइन डाली सीपमान कहती थीं। सरदारजी को भी इसमें कोई एतराज की बात महसूस नहीं होती थी। वे यह कल्पना करके गर्व अनुभव करते थे, कि उनकी पुत्री जर्मन है। उनकी भी यह हार्दिक इच्छा थी, कि उसका विवाह किसी जर्मन युवक के साथ हो जाय। मिसेज चोपड़ा अपने पति से बहुत असन्तुष्ट थीं। उन्हें उनकी दाढ़ी-मूंछ व केश अच्छे नहीं लगते थे। जब सरदार सन्तसिंह चोपड़ा यूरोप-यात्रा के लिये गये थे, तब उन्होंने अपने केश कटवा लिये थे और दाढ़ी-मूंछ मुंड़वा ली थी। यूरोप में वे कई साल तक रहे, और वहां उन्होंने केश नहीं रखे। पर जब वे भारत लौटकर आये, तो सिक्ख-समाज की उपेक्षा नहीं कर सके। उनके केश-श्मश्रु-समन्वित चेहरे से श्रीमती मेरी चोपड़ा को हार्दिक घृणा थी। कभी-कभी वे अपने घर पर गुरुग्रन्थ साहब का पाठ कराते थे। उस समय कानपुर के बहुत-से सिक्ख उनके घर एकत्र हो जाते थे। रागी लोग शब्द गाते थे, और ग्रन्थीजी पाठ करते थे। श्रीमती चोपड़ा को भी विवश होकर इस अवसर पर उपस्थित होना पड़ता था। पर उन्हें सिक्ख-धर्म का यह समारोह जरा भी पसन्द नहीं आता था। वे उससे चिढ़ा करती थीं, पर सरदार सन्तसिंह चोपड़ा की कानपुर के सिक्ख-समाज में ऐसी स्थिति थी, कि साल में कई बार वे अपने घर पर गुरुग्रन्थ साहब का पाठ कराते थे। श्रीमती चोपड़ा उनकी धर्म-भक्ति व समाज-मर्यादा को समझ सकने में सर्वथा असमर्थ थीं। उन्हें यूरोपियन समाज में आत्मीयता अनुभव

होती थी, चर्च में जाकर उन्हें शान्ति मिलती थी। होटल मॉडन मे रहते हुए वे मुझसे भली भांति परिचित हो गई थीं, और अपने मनोभावों को बहुधा मेरे सामने प्रगट करती रहती थीं। एक बार वे कहने लगीं, अब वे जल्दी ही जर्मनी वापस लौट जाना चाहती हैं। सरदार साहब के साथ रह सकना अब उनके लिये सम्भव नहीं है। पर भारत छोड़ने से पहले उनकी इच्छा है, कि एक पुस्तक लिख जावें, जिसका विषय हो—'मैंने एक भारतीय के साथ विवाह किया था।' वे कहती थीं, मेरी अंग्रेजी इतनी अच्छी नहीं है, कि उसमें एक किताब लिख सकूं। जर्मन भाषा में लिखी पुस्तक को भारत या इंगलैण्ड में कोई पढ़ेगा नहीं। वे मुझसे कहती थीं, क्या मैं उनकी जीवन-कथा को अंग्रेजी में लिखने के लिये समय निकाल सकूंगा। मुझे होटल के काम से फुरसत नहीं थी। अतः मैं श्रीमती चोपड़ा की इच्छा को पूरा नहीं कर सका। अब मुझे फुरसत है, पर श्रीमती चोपड़ा भारत में हैं, या जर्मनी वापस लौट गई हैं, यह मुझे मालूम नहीं है।

* मिसेज नायर इटालियन थीं, और उनके पति थे मद्रासी। उनके रंग-रूप में उतना ही अन्तर था, जितना कि पूर्णिमा और अमावस की रातों में होता है। मिसेज नायर अनुपम सुन्दरी थीं, उनका रंग कच्चे दूध के समान श्वेत था और आंखें आसमान के रंग की नीली। मि० नायर एकदम कृष्ण वर्ण के थे और अत्यन्त कुरूप। मिस वेरा नेपल्स के एक नाचघर में कबारे गर्ल (नर्तकी) का काम करती थीं। जब मि० नायर यूरोप की यात्रा करते हुए नेपल्स गये, तो मिस वेरा से उनका परिचय हुआ। मि० नायर के धन से आकृष्ट होकर वेरा ने उनसे विवाह कर लिया। पर वे अपनी किस्मत से सन्तुष्ट नहीं थीं। उन्हें अपने पतिदेव से सबसे बड़ी शिकायत यह थी, कि वे इतने काले और कुरूप क्यों हैं? जब तक वे इटली में मि० नायर के साथ रहीं, उनका यह ख़याल रहा, कि सभी भारतीय मि० नायर के समान रूप-रंग के होते हैं। पर भारत आने पर उनका भ्रम दूर हुआ। कानपुर में जब वे उच्च वर्ग के अन्य भारतीयों से

देखतीं, तो अपने भाग्य को कोसकर रह जातीं। अपने पति का परिचय कराते हुए या उनके साथ क्लब जाते हुए उन्हें संकोच होता था। रामनगर में पहाड़ी पुरुषों को देखकर तो उनके दिल पर छुरियां चलती थीं। वे कहती थीं, यहां तो कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो मि० नायर की तरह काला हो।

मिसेज प्रसाद, मिसेज चोपड़ा और मिसेज नायर होटल मॉडर्न के प्रबन्ध से बहुत सन्तुष्ट थीं। उनके दिन आराम से गुजर रहे थे। एक दिन रामनगर में बादल घिर आये, आंधी चलने लगी, बिजली कड़कने लगी। पहाड़ों में जब जोर का तूफान आता है, तो उसका स्वरूप कितना भयंकर होता है, इसे वे ही लोग जान सकते हैं, जो हिमालय में कभी रहे हों। इन यूरोपियन महिलाओं को हिमालय के तूफान का अनुभव नहीं था। आंधी के कारण रामनगर की बिजली फेल हो गई, सब जगह अंधेरा छा गया और कमरों के किवाड़ जोर-जोर से खटखटाने लगे। सनसनाती हुई हवा ऐसा शब्द करने लगी, मानो कोई बाजा बजा रहा हो। होटल मॉडर्न में ठहरी हुई ये यूरोपियन महिलायें घबरा गईं। इन्होंने समझा, किसी ने जान-बूझकर बिजली खराब कर दी है। कोई उनके दरवाजे खटखटा रहा है, ताकि अंधेरे में कमरे में घुसकर उनका सब सामान लूट ले जाय। मिसेज चोपड़ा ने हिम्मत की, टार्च लेकर वे मेरे दफ्तर में आईं। मैंने उन्हें समझाया, कि यह सब पहाड़ी तूफान की करतूत है। पर उन्हें इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने पुलीस को टेलीफोन किया। कोई आध घण्टे बाद कोतवाली के इन्स्पेक्टर साहब चार सिपाहियों को लेकर होटल मॉडर्न आ गये। उन्होंने यूरोपियन महिलाओं के कमरों के बाहर पहरा बिठा दिया, ताकि कोई चोर या बदमाश उनके कमरों के शीशे तोड़कर अन्दर न घुस आये। पर अभी तूफान शान्त नहीं हुआ था। दरवाजे अब भी जोर-जोर से खट-खट कर रहे थे। अब मिसेज प्रसाद के दिमाग में आया, यह भूत-प्रेतों की करतूत है। आंधी के कारण भी दरवाजों में इस

ढंग से खटखटाहट हो सकती है, यह बात इन गौरांग महिलाओं की समझ ही नहीं आती थी। अगले दिन सुबह उन्होंने कानपुर तार दे दिया, कि होटल मॉडर्न में भूत रहते हैं, वे वहां एक दिन भी नहीं ठहर सकतीं। मि० प्रसाद और मि० नायर दो दिन बाद रामनगर आ गये। उनकी यूरोपियन पत्नियों को तब सन्तोष हुआ, जब उनके कमरे बदल दिये गये।

इन महिलाओं को भारत में निवास करते हुए कई साल हो चुके थे। हिन्दी का इन्हें साधारण ज्ञान हो गया था। पर ये अंग्रेजी में बात करती थीं। सरदार सन्तसिंह चोपड़ा जर्मन भाषा अच्छी तरह जानते थे। वे अपनी पत्नी व कन्या से जर्मन में ही बात करते थे। यदि कभी मिसेज चोपड़ा उनसे हिन्दी में बोलतीं, तो वे इससे नाराज होते थे। वे कहते थे, मैं कोई बेयरा तो हूं नहीं, जो तुम मुझसे हिन्दी में बात करती हो। सरदार साहब की दृष्टि में हिन्दी नौकर-चाकरों की भाषा थी। उन्हें तभी सन्तोष होता, जब कि उनकी पत्नी उनसे जर्मन या अंग्रेजी में बात करतीं। मैं बहुधा मिसेज चोपड़ा से हिन्दी में बोलता था। मुझे जर्मन तो आती नहीं थी, अतः वे जब मुझसे अंग्रेजी में बात करने लगतीं, तो मैं उन्हें कहता--- अंग्रेजी न आपकी मातृभाषा है, और न मेरी। आप हिन्दी में बोल लेती हैं, मैं तो आपसे हिन्दी में ही बात करूंगा। यह सुनकर मिसेज चोपड़ा को प्रसन्नता होती। अंग्रेजी के प्रति उनके हृदय में सद्‌भावना नहीं थी। महायुद्ध में जर्मनी की पराजय उनके दिल में शूल की तरह चुभती थी। उन्होंने मुझे सुनाया, कि एक बार वे नैनीताल के एक बालरूम में अपने एक मित्र के साथ जर्मन में बात कर रही थीं, पड़ोस की टेबल पर कुछ अंग्रेज सैनिक अफसर बैठे हुए थे। यह बात सन् १९४५ की है, महायुद्ध अभी खतम नहीं हुआ था। अंग्रेज अफसर जर्मन भाषा सुनकर भड़क उठे। यदि बालरूम के मैनेजर बीच में पड़कर बीचबचाव न कर देते, तो उस दिन नैनीताल में एक भयंकर दुर्घटना हो जाती।

मिसेज प्रसाद अकसर मेरे पास आ बैठती थीं। मैं उनसे पूछता, कहो आइलीन, तुम्हें भारत में कैसा महसूस होता है ? यद्यपि इस समय वे एक बड़े सरकारी अफसर की पत्नी थीं, पर उन्हें अपने वे दिन भूले न थे, जब वे मिसेज रसेल के बोर्डिंग हाउस में जूठे बरतन मला करती थीं, और मेरे चाय के बरतन भी इनमें शामिल होते थे। इसलिये मिसेज प्रसाद मुझे कुछ आदर की दृष्टि से देखती थीं, और उनका अंग्रेज होने का रोब मुझ पर नहीं चलता था। वे मुझसे कहतीं, भारत में बड़ा मजा है, यहां नौकर बड़े सस्ते मिल जाते हैं। वे गुलामों की तरह काम करते हैं, और थोड़ी आमदनीवाला आदमी भी इस देश में प्रिंस की तरह से रह सकता है। बिलायत में बड़े-बड़े आदमी भी नौकर नहीं रख सकते। लण्डन एडिनबरा आदि नगरों में नौकर के निवास के लिये अलग कमरा कौन दे सकता है ? युरोपियन नौकर को खाने-पीने के लिये वही कुछ चाहिये, जो मालिक खुद खाये। यहां भारत में क्या है ? नौकर रसोईघर में सो जावेंगे या बरामदे में ही पड़ रहेंगे। मालिक अगर गोश्त-पुलाव खाता है, तो नौकर बाजरे या ज्वार की रोटी खाकर ही सन्तुष्ट हो जायगा। बिलायत का नौकर छः घण्टे रोज से अधिक काम नहीं करेगा, इतवार और त्योहार की छुट्टी लेगा, शनिवार को भी आधे दिन काम करेगा। पर यहां ? यहां तो घरेलू नौकरों के लिये न इतवार है, न त्योहार। यदि वह बीमार पड़ जाय, तो मालिक उसे तुरन्त नौकरी से बरखास्त कर देगा। महंगी के इस जमाने में भी कानपुर-जैसे शहर में २५ रु० मासिक पर बेयरे मिल जाते हैं, भोजन के बिना। २५ रु० में वे क्या खुद खावेंगे और क्या अपने बाल-बच्चों के लिये घर भेजेंगे ? मुझे तो यही समझ नहीं पड़ता, कि इस देश के गरीब लोग अपना गुजर कैसे करते हैं।

मैंने आइलीन से कहा, कुछ अपने पारिवारिक जीवन की भी बात कहो। एक भारतीय से विवाह करके तुम्हें कैसा अनुभव हुआ ? आइलीन ने मुझे बताया, वह १९३८ में इंगलैण्ड से भारत आई थी। कोई एक

साल तक मि० प्रसाद बेकार रहे। उनका घर बाराबंकी जिले के एक कस्बे में है, जहां उनके पिता की आढ़त की दूकान है, साथ ही उनकी एक तेल-मिल भी है। मि० प्रसाद के मां-बाप बहुत पुराने ढंग के हैं। यद्यपि उनकी आय बहुत माकूल है, वे दस हजार के करीब इन्कम टैक्स देते हैं, पर उनके रहन-सहन में आधुनिकता छू तक नहीं गई। उनका मकान बहुत बड़ा है, पर उसमें न सोफासेट हैं, न ड्रेसिंग टेबल और न कपड़े लटकाने की आलमारियां। मि० प्रसाद मुझे सीधा अपने कस्बे में ले गये। वे खुद नौकरी की तलाश में कानपुर, लखनऊ और दिल्ली का चक्कर लगाने में व्यग्र रहते, और मुझे अकेली सास-ससुर के पास छोड़ गये। मि० प्रसाद की मां मुझे अछूत समझती थीं, अपने रसोईघर में मुझे नहीं घुसने देती थीं। घर में जो दाल-रोटी बनती थी, वह मुझसे नहीं खाई जाती थी। इकबालपुर में, जहां कि मि० प्रसाद का मकान है, न डबलरोटी मिलती थी, और न अन्य किसी किस्म का अंग्रेजी खाना। आखिर, मैंने अपने लिये अलग अंगीठी पर खाना पकाना शुरू किया, पर गोश्त व अंडों का प्रवेश मि० प्रसाद के घर में नहीं हो सकता था और शाक-सब्जी खाकर मेरा पेट नहीं भरता था। अपने फ्राक, स्कर्ट, जम्पर आदि में कहां लटकाऊं, यह भी मुझे समझ नहीं पड़ता था। आलमारियां तो मि० प्रसाद के मकान में थीं ही नहीं। लकड़ी की खूंटियों पर अपने कपड़े लटकाकर मैं किसी तरह से काम चला लेती थी। मि० प्रसाद की बहनें मुझे इस ढंग से देखतीं, मानो मैं चिड़ियाघर का कोई जानवर होऊं। वे मुझसे बिना इजाजत लिये मेरे सूटकेसों को खोल डालतीं, और मेरी चीजों को उलट-पुलट कर देतीं। मैं बहुत चाहती थी, कि उनके साथ घुल-मिल जाऊं। पर यह सम्भव नहीं था, क्योंकि उनकी दृष्टि में मैं म्लेच्छ थी। इकबालपुर के निवास के मेरे ये दिन बड़े कष्ट में व्यतीत हुए। १९३९ में जब महा-युद्ध शुरू हुआ, तो मि० प्रसाद को सेना में एक अच्छी नौकरी मिल गई। उन्हें मऊ छावनी भेज दिया गया, और वहां का मोटर-वर्क्स उनके चार्ज

में दे दिया गया। मैं भी उनके साथ मऊ चली गई। वहां अंग्रेज अफसरों की कमी नहीं थी, बहुत-से सैनिक अफसर वहां सपरिवार निवास करते थ। मैं उनके साथ खूब घुल-मिल गई, और मेरे दिन बड़े आराम से कटने लगे। मेरे कारण मि० प्रसाद के पद में उन्नति होने में बहुत सहायता मिली। मैं डान्स करने में बहुत कुशल हूं। अंग्रेज अफसरों के साथ फौजी क्लब में डान्स करने के कारण उनकी मुझ पर बहुत कृपा थी, और इससे मि०प्रसाद की पद-वृद्धि में बहुत सहायता मिलती थी। महायुद्ध समाप्त होने पर उच्च सैनिक अफसरों की सिफारिश से मि० प्रसाद कानपुर में एग्जीक्यूटिव इन्जीनियर हो गये, और वहां भी मेरे दिन बड़े आराम से कटने लगे। मि० प्रसाद से विवाह करके मैं बहुत प्रसन्न हूं। पर मुझे खेद यह है, कि मेरा उनके कुटुम्ब के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है, और मेरे कारण मि० प्रसाद का भी अपने मां-बाप व भाई-बहनों से कोई नाता-रिश्ता नहीं रह गया है। मुझे यह बात कभी समझ में नहीं आती, कि हिन्दू लोग किसी विदेशी को अपने अन्दर क्यों नहीं खपा सकते? सौभाग्य से मेरी कोई सन्तान नहीं है। यदि मेरी कोई लड़की होती, तो मैं यही चाहती, कि किसी सम्पन्न हिन्दू घर में उसका विवाह हो। पर क्या यह सम्भव होता? वह लड़की एंग्लो-इण्डियन समझी जाती, हिन्दू-समाज में उसके लिये कोई स्थान न होता और विवश होकर किसी यूरोपियन या एंग्लोइण्डियन के साथ उसका विवाह करना पड़ता। मैं अनेक ऐसी यूरोपियन महिलाओं को जानती हूं, जिन्होंने भारतीय मुसलमानों के साथ विवाह किया है। मुसलिम घरों में उन्हें गैर या अछूत नहीं समझा जाता। उनकी सन्तान मुसलमान रहती है, और उनके शादी-विवाह में किसी भी प्रकार की कठिनता नहीं होती। फिर हिन्दू-समाज में ऐसी कौन-सी विशेषता है, जिसके कारण वह किसी भी विदेशी को अपने अन्दर घुलने-मिलने नहीं देती? तुम जानते ही हो, कि न मेरी उच्च शिक्षा हुई है, न मैंने [illegible] का अध्ययन किया है, और न मैं किसी [illegible] कुलीन घर की ही हूं। मैं बड़ी आसानी से हिन्दू-धर्म को

स्वीकार कर सकती थी, और एक हिन्दू महिला के समान अपना जीवन व्यतीत कर सकती थी। पर भारत और इंगलैण्ड के रहन-सहन और खान-पान में इतना अधिक भेद है, कि मुझे भारतीय रीति-रिवाजों को अपनाने में कुछ समय लग जाता। पर मेरे सास-ससुर ने इसके लिये मुझे मौका ही नहीं दिया। वे मेरी कठिनाइयों को कभी समझ ही नहीं सके। इसी का यह परिणाम है, कि आज मैं हिन्दू-समाज से बिलकुल पृथक् रहती हुई एक विदेशी के समान अपना जीवन बिता रही हूं। इतना ही नहीं, मि० प्रसाद भी मेरे कारण अपने कुटुम्ब व समाज से सब सम्पर्क खो बैठे हैं।

मिसेज आइलीन प्रसाद से मेरी बहुधा बातचीत होती रहती थी। उन्हें भारत में निवास करते हुए दस साल के लगभग हो चुके थे। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता था, कि इतने लम्बे समय तक भारत में रहने के बाद भी उन्हें भारत के सम्बन्ध में ज्ञान न के बराबर था। न उन्हें इस देश के इतिहास का ज्ञान था, न यहां के रीति-रिवाजों का और न यहां के समाज का। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सम्बन्ध में जो बातें मैं उन्हें बताता था, उन्हें वे बड़े शौक से सुनती थीं, उनमें उन्हें दिलचस्पी अनुभव होती थी। वे कहती थीं, अब तक किसी ने उनसे इस ढंग की बातें नहीं कीं। भारत में दो तरह की दुनिया है, एक यूरोपियन और दूसरी भारतीय। इन दोनों में कोई भी सम्पर्क नहीं है। मऊ या कानपुर में निवास करनेवाले यूरोपियन व एंग्लोइण्डियन लोग भारतीय जीवन से कोई ताल्लुक नहीं रखते। इस दशा में आइलीन का भारत के सम्बन्ध में जो अज्ञान था, उसके लिये उन्हें कैसे दोष दिया जा सकता है?

## (१५)

## डा० रामकृष्ण कपूर

३१ मई की सुबह जब मैं अभी गुसलखाने में ही था, होटल का चपरासी भागा-भागा आया, और कमरे के बाहर से ही बोला—"हुजूर, हेल्थ

आफिसर साहब ने आपको सलाम बोला है।" होटल की भाषा में सलाम बोलने का अर्थ है, बुलाना। हेल्थ आफिसर साहब ने चपरासी से कहा था——जाओ कर्नल साहब को फौरन बुला लाओ, कहो कि बहुत जरूरी काम है। होटल के एटीकेट के अनुसार चपरासी मुझे यह नहीं कह सकता था, कि आपको हेल्थ आफिसर साहब बुला रहे हैं। उसने मुझसे कहा——हेल्थ आफिसर साहब ने आपको सलाम बोला है। मैं अभी नित्यकर्मों से नहीं निबटा था। मैंने जवाब दिया, साहब को दफ्तर में बिठालो, मैं अभी बीस मिनट में आता हूँ। पर हेल्थ आफिसर साहब में इतना धैर्य कहां था, जो वे बीस मिनट तक इन्तजार कर सकते? उनका समय बहुत कीमती था। उन्हें इतनी फुरसत कहां थी, जो वे बीस मिनट तक मेरे दफ्तर में बेकार बैठे रहते? सम्पूर्ण रामनगर का स्वास्थ्य-प्रबन्ध उन्हीं के हाथों में था। यदि वे अपने कार्य में जरा भी प्रमाद करते, एक मिनट भी बेकार गंवा देते, तो रामनगर में हैजा फैल जाता, चेचक फूट पड़ती और न जाने क्या-क्या अनर्थ हो जाता। उन्होंने चपरासी से कहलवाया, बहुत जरूरी काम है, तुरन्त आकर मिल जाओ। होटल के मालिक का एक भी क्षण ऐसा नहीं होता, जिसे वह अपना समझ सके। उसके काम करने के कोई घण्टे नियत नहीं होते, न उसके लिये इतवार होता है, न कोई त्योहार। रात के बारह बजे भी कोई मेहमान उसे 'सलाम बोल' सकता है। किसी ने ज्यादा शराब पी ली। कै होने लगी। सिर दुखने लगा। वह यह नहीं सोचेगा, कि आधी रात का समय है, मैनेजर या मालिक अब आराम करते होंगे। खिदमतगार से वह कहलवा देगा, ३४ नं० साहब सलाम बोलता है। अब आप लिहाफ छोड़कर अपनी नींद हराम कर ३४ नं० कमरे में जाइये। साहब कहेगा, क्या यहां एस्प्रो की गोली मिल जायगी? ३४ नं० साहब खिदमतगार से भी एस्प्रो की गोली की फरमाइश कर सकता था। होटल के खिदमतगार इतने होशियार होते हैं, कि वे बड़ी सुगमता से एस्प्रो का इन्तजाम कर देंगे। पर होटल के साहब व मेम साहब लोग तब

तक सन्तोष अनुभव नहीं करते, जब तक कि होटल के मैनेजर या मालिक से खुद अपनी शिकायत व जरूरत न कह दें। जब होटल के साधारण मेहमानों की यह हालत होती है, तो फिर हेल्थ आफिसर साहब को यह ख्याल करने की क्या जरूरत है, कि होटल के मालिक की भी कुछ अपनी जरूरतें हैं, उसका भी कोई आराम का समय है, उसे भी नित्य-कर्मों से निबटने की आवश्यकता है। सवा दो हजार साल के लगभग हुए, जब सम्राट् अशोक ने यह आज्ञा प्रकाशित की थी—"चाहे मैं भोजन करता होऊँ, चाहे अन्तःपुर में होऊँ, चाहे गुसलखाने में होऊँ, हर समय हर जगह प्रतिवेदक प्रजा का हाल मुझको सुनायें। मैं सब समय सब जगह प्रजा का काम करूँगा।" सम्राट् अशोक जिस प्रकार हर समय व हर जगह प्रजा की शिकायतों को सुनने व उसका हित-साधन करने के लिये तत्पर रहते थे, वैसे ही मेरा भी यह परम कर्तव्य था, कि जिस समय भी होटल के किसी मेहमान को या रामनगर के किसी अफसर को मेरी जरूरत हो, मैं अपना सब काम छोड़कर उनकी सेवा के लिये उपस्थित हो जाऊँ।

चपरासी के दुबारा आने पर मैं तुरन्त गुसलखाने से निकलकर अपने आफिस में आ गया। हेल्थ आफिसर साहब बड़ी उद्विग्नता से मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक-एक सेकण्ड की देर उनके लिये कष्टप्रद हो रही थी। उन्होंने मुझसे कहा—"डिपुटी इन्स्पेक्टर जनरल आफ हेल्थ (स्वास्थ्य-विभाग के उपप्रमुख अधिकारी) दो-तीन दिन में रामनगर पधार रहे हैं। उनके लिये एक ऐसा कमरा चाहिये, जिसके साथ प्राइवेट सिटिंग रूम भी हो। वे दस-बारह दिन ठहरेंगे। जगह का प्रबन्ध तो अन्यत्र भी हो सकता है, पर क्योंकि मैं आपकी मदद करना चाहता हूँ, अतः मैं उन्हें होटल मॉडर्न में ही ठहरा दूंगा। मुझे मालूम है, कि आपका रेट १२ रु० प्रतिदिन का है। पर इस ढंग के बड़े अफसरों के लिये तो कुछ रियायत होनी ही चाहिये। पर मैं आपका नुकसान नहीं चाहता। इसलिये ७ रु० रोज का रेट आप को दिलवा दूंगा।" मैं हेल्थ आफिसर साहब से कहना चाहता

था—"श्रीमान्, प्राइवेट सिटिंगरूम के साथ कमरे का मेरा रेट २४ रु० दैनिक है, क्योंकि ऐसे कमरे दो व्यक्तियों के निवास के लिये दिये जाते हैं। ७ रु० रेट स्वीकार कर मुझे १७ रु० रोज का नुकसान होता है। आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप इन्सपेक्टर जनरल साहब के लिये कहीं अन्यत्र इन्तजाम कर दें।" पर कोई होटल-मालिक हेल्थ आफिसर साहब का कोप-भाजन होना गवारा नहीं कर सकता। हेल्थ आफिसर साहब की बात जाने दीजिये, सेनिटरी इन्स्पेक्टर तक होटलों का अफसर होता है। उनका अधिकार होता है, कि वे जब चाहें, होटल के रसोईघर का निरीक्षण कर सकें, डाइनिंग हॉल और गुसलखानों आदि की सफाई की जांच कर सकें। यदि वे जरा भी नाराज हो जावें, तो यह हुकुम दे सकते ह, कि क्योंकि होटल का रसोईघर साफ नहीं है, अतः होटल का लाइसेन्स जब्त किया जाता है। अब आप लाइसेन्स को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रार्थना-पत्र दीजिय, तो वे एक लम्बी फेहरिश्त उन बातों की बनाकर भेज देंगे, जो होटल के रसोईघर आदि में करा लेनी आवश्यक हैं। रसोईघर का फर्श नया बनाया जाय, उसमें चार नये रोशनदान निकाले जावें, उसकी मेजों पर संगमरमर के चिकनपाट लगाये जावें, सब दरवाजों और खिड़कियों पर नई जालियां लगाई जावें, और खानसामों की वर्दी दिन में चार दफे बदली जावे। अब आप हिसाब लगाकर देखिये, इन सब कामों में आपका कितना खर्च होगा। आपके दो-ढाई हजार रुपये बात की बात में खर्च हो जावेंगे। होटल का मालिक सोचता है, हेल्थ आफिसर या सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब के कोप से बचने के लिये यह अच्छा है, कि वे जो कुछ आदेश दें, उसे सिर झुकाकर चुपचाप मान लिया जाय। मैंने भी डिपुटी इन्स्पेक्टर जनरल आफ हेल्थ साहब के लिये ७ रु० दैनिक पर होटल का एक बहुत बढ़िया कमरा (भोजन के साथ) देना स्वीकार कर लिया। हेल्थ आफिसर साहब ने चलते-चलते यह भी कह दिया, कि उनके मेहमान का होटल-बिल उनके सम्मुख पेश न किया जाय,

उसे उनकी ( हेल्थ आफिसर साहब की ) सेवा में भेज दिया जाय।

अगले दिन हेल्थ आफिसर साहब फिर होटल मॉडर्न आये। कमरे को देखकर उन्होंने फरमाया, और तो सब ठीक है, पर फर्श पर बिछी हुई दरियों और खिड़की-दरवाजे के परदों को धुलवा लिया जाय। फर्निचर पर नया वार्निश करा दिया जाय, और डी० डी० टी० छिड़कवाकर कमरे को पूरी तरह से डिसइन्फेक्ट करा दिया जाय। यह सब हो जाने पर अब हेल्थ आफिसर साहब को अपने बॉस (मालिक या उच्च अधिकारी) के भोजन की फिक्र हुई। उन्होंने कहा, रामनगर में एक डेयरी है जिसका मालिक एक एंग्लोइण्डियन है। वह ताजा दूध, मक्खन व अण्डे देता है। कीमत तो वह अधिक लेता है, पर उसका माल ताजा व बढ़िया होता है। इन्स्पेक्टर जनरल साहब के लिये दूध आदि वहीं से मंगाया जाय। उनके लिये जो खाना बने, वह असली घी में तैयार किया जाय। असली घी का बाजार में मिलना मुश्किल है, अतः अच्छा यह होगा, कि उनका खाना ताजे मक्खन में बनवाया जाय। उचित यह होगा, कि रोज के खाने का आर्डर इन्स्पेक्टर जनरल साहब से ले लिया जाया करे। इस प्रकार अपने बॉस के निवास व भोजन की समुचित व्यवस्था कर लेने के बाद हेल्थ आफिसर साहब को उस स्टेनो टाइपिस्ट का खयाल आया, जिसे इन्स्पेक्टर जनरल साहब के साथ आना था। हेल्थ आफिसर साहब स्टेनो टाइपिस्ट के निवास आदि का भी समुचित प्रबन्ध करना चाहते थे। वे मुझसे बोले—"वैसे तो स्टेनो नौकरों के क्वार्टर में रह सकता है, पर ये लोग केवल आठ-दस दिन के लिये ही तो आ रहे हैं, यदि उसके लिये भी एक छोटा कमरा रिजर्व हो जाय तो अच्छा है। वह उसी मामूली भोजन से सन्तुष्ट हो जायगा, जो होटल में सबके लिये बनता है। उसके लिये कोई खास परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं होगी। वैसे तो एक आदमी का भोजन होटल में यूं ही निकल आता है, पर मैं नहीं चाहता कि आपको नुकसान हो। स्टेनो साहब के लिये भी तीन रुपया रोज का रेट दिलवा

दूंगा। पर हां, आप यह ख्याल जरूर करें, कि स्टेनो को किसी प्रकार का कष्ट न हो।" हेल्थ आफिसर साहब की आज्ञा मानने के अतिरिक्त मेरे सम्मुख दूसरा मार्ग ही क्या था! मैंने कहा—अरे आप स्टेनो के निवास व भोजन का खर्च देने की क्यों फिकर करते हैं, मैं समझ लूंगा, एक कमरा खाली ही पड़ा है, और वे साहब मेरे मेहमान के तौर पर ही भोजन कर रहे हैं। मेरी बात सुनकर हेल्थ आफिसर साहब ने कहा—भाई नहीं, मुझे मालूम है, आपने बहुत ज्यादा किराया देकर यह होटल लिया है। मैं आपका नुकसान नहीं चाहता। आपकी मदद के लिये ही तो मैंने यह तय किया है, कि इन्स्पेक्टर जनरल साहब और उनके स्टेनो आपके ही होटल में ठहरें। पाठकगण भली भांति समझ सकते हैं, कि यदि हेल्थ आफिसर साहब के समान रामनगर के अन्य आफिसर लोग भी मेरे नुकसान को दूर करने के लिये इसी ढंग से मुझ पर कृपालु हो जाते, तो मेरी क्या दशा होती?

३ जून को डिपुटी इन्स्पेक्टर जनरल साहब होटल मॉडर्न पधार गये। इन सज्जन का नाम डा० रामकृष्ण कपूर था। हेल्थ आफिसर स्वयं इनके साथ आये और उन्होंने कपूर साहब से मेरा परिचय कराया। कपूर साहब ने सामान्य शिष्टाचार के अनुसार मेरे साथ हाथ मिलाने या 'हाउ डू यू डू' करने की भी आवश्यकता नहीं समझी। वस्तुतः मुझसे परिचय प्राप्त कर उन्हें घोर निराशा हुई थी। वे तो यह आशा करते थे, कि उनके निवास का इन्तजाम किसी ऐसे होटल में किया जायगा, जिसका संचालक कोई यूरोपियन होगा। उनका यह सौ फीसदी विश्वास था, कि हिन्दुस्तानी इन्तजाम में होटल की सफाई का स्टैण्डर्ड कभी कायम रह ही नहीं सकता। जिस दिन इन्स्पेक्टर जनरल साहब को रामनगर आना था, उस दिन सुबह से ही जमादारों की पूरी फौज होटल मॉडर्न पहुंच गई थी। उन्होंने एक-एक कोने को झाड़-पोंछकर साफ कर दिया था। कहीं एक पत्ता तक नजर नहीं आता था। फिर भी इन्स्पेक्टर जनरल साहब ने महसूस किया, कि

होटल के सहन में जगह-जगह गन्दगी मौजूद है। अपने कमरे में पहुंचकर उन्हें बदबू का अनुभव हुआ। हेल्थ आफिसर साहब जानते थे, कि यह गन्ध डी० डी० टी० की है, पर उनकी यह हिम्मत नहीं हुई, कि अपने बॉस के सम्मुख मुंह खोल सकें। तुरन्त मुझे बुलाया गया, मैंने इन्स्पेक्टर जनरल साहब को बताया, कि पिछले दो दिन तक उनका कमरा डी० डी० टी० की पिचकारियां छोड़कर बन्द रखा गया था, ताकि कोई मच्छर व पिस्सू उसमें जिन्दा न रह सके। यह सुनकर इन्स्पेक्टर जनरल साहब ने कहा, कि डी० डी० टी० छिड़कने का काम कम से कम चार दिन पहले होना चाहिये था, ताकि दो दिन तक कमरे को खुला रखा जा सकता, जिससे उसकी गन्ध नष्ट हो जाती। खैर, मन मारकर कपूर साहब अपने कमरे में ठहर गये। यह मुझ पर उनकी महती कृपा थी। वे अपनी नाराजगी को इस ढंग से भी प्रगट कर सकते थे, कि हेल्थ आफिसर साहब से इस बात का जवाब तलब करते, कि इतने गन्दे होटल का लाइसेन्स अब तक क्यों जब्त नहीं किया गया है ?

डा० कपूर का भोजन अलग से पकता था। हेल्थ आफिसर साहब की सब शक्ति इस बात में लगी हुई थी, कि उनके बॉस को भोजन के विषय में कोई शिकायत न होने पावे। वे खुद बूचड़ को बुलाकर उससे टेन्डर (नरम) गोश्त लाने की ताकीद करते थे, उन मुर्गियों को छू-छूकर देखते थे, जिन्हें डा० कपूर के लिये हलाल किया जाना था। होटल का बड़ा खानसामा, जो २०० रु० मासिक वेतन पाता था, खुद अपने हाथ से इन्स्पेक्टर जनरल साहब के लिये खाना बनाता था। इतना सब करने पर भी डा० कपूर को भोजन से सन्तोष नहीं था। वे दस दिन रामनगर में रहे। बेचारे हेल्थ आफिसर साहब उनकी आवश्यकतायें पूर्ण करते-करते परेशान हो गये। होटल के खिदमतगारों ने उस दिन आराम की सांस ली, जब डा० कपूर लखनऊ वापस लौट गये। मुझे नहीं मालूम, कि डा० कपूर अपने घर पर क्या खाना खाते थे, उनके अपने बंगले में सफाई का क्या

स्टैण्डर्ड था और उनकी क्या आमदनी थी। मैं तो केवल यही जानता हूँ, कि कोई बड़े से बड़ा धनी व प्रतिष्ठित व्यक्ति उस कमरे व उस भोजन से सन्तुष्ट हो सकता था, जो डा० कपूर को होटल मॉडर्न में प्राप्त था। पर डा० कपूर उस जमाने में उत्तर-प्रदेश की मेडिकल व हेल्थ सर्विस में भरती हुए थे, जब कि इस सर्विस के सब बड़े अफसर अंग्रेज होते थे, जब रामनगर के बड़े होटलों में काले आदमी की शकल भी दिखाई नहीं देती थी। जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में उन्होंने सत्याग्रही कैदियों पर अमानुषिक अत्याचार किये थे, और भारत में अंग्रेजी शासन को वे ईश्वरी विधान मानते थे। उनका रहन-सहन अविकल रूप से इंगलिश था। रूप-रंग में भी वे अंग्रेजों से अधिक भिन्न नहीं थे। अच्छा होता, यदि वे अंग्रेजों के भारत छोड़ने पर खुद भी 'होम' चले जाते। होटल मॉडर्न की सफाई भोजन आदि से जो उन्हें सन्तोष नहीं था, उसका एकमात्र कारण यह था, कि इस समय उसमें ठहरे हुए मेहमानों में ८० फीसदी से भी अधिक भारतीय थे, और उनमें से कुछ ऐसे भी थे, जो धोती पहनकर रहते थे। इस हिन्दुस्तानी वातावरण में रहना डा० कपूर को अपने लिये अपमानजनक प्रतीत होता था। बाद में एक दिन जब हेल्थ आफिसर साहब से मेरी बातचीत हुई, तो उन्होंने कहा—क्या बात है, जो डा० कपूर कुछ नाराज-से हो गये, भोजन आदि तो सब एकदम ठीक था? मैंने कहा——जिस वातावरण में ठहरने की आशा डा० कपूर को थी, उसे मैं कैसे उत्पन्न कर सकता था? जो अंग्रेज १९४७ में भारत छोड़कर चले गये थे, उन्हे मैं डा० कपूर के लिये कैसे वापस ला सकता था? हेल्थ आफिसर साहब मेरी बात से सहमत थे।

डा० कपूर और उनके स्टेनो का होटल-बिल हेल्थ आफिसर साहब को दे दिया गया। बहुत दिनों तक उन्हें इस रकम को अदा करने का ख्याल नहीं आया। मैंने भी उनसे तकाजा नहीं किया। पर जब मैंने होटल मॉडर्न को छोड़ने का निश्चय कर लिया, तो उन्हें इसके लिये 'रिमाइन्डर' भेज

दिया। बिल केवल १०० रु० का था। हेल्थ आफिसर साहब ने अत्यन्त कृपापूर्वक ७५ रु० का चेक मुझे भेज दिया, और मैं इसे अस्वीकृत नहीं कर सका।

इसी प्रसंग में मैं एक-दो बातें और लिख देना चाहता हूँ। हेल्थ आफिसर साहब अपने बॉस व मित्रों को जिस ढंग से होटल मॉडर्न में ठहरा रहे थे, सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब को उसका भलीभाति ज्ञान था। सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब का नाम श्री केवलकृष्ण भटनागर था। वे बड़े हंसमुख और कर्मठ नवयुवक थे। अपनी ड्यूटी करते हुए उन्हें अक्सर होटल मॉडर्न आना पड़ता था। मुझसे उनका भली भांति परिचय हो गया था, मेरा वे आदर भी करते थे। तीसरे पहर की चाय वे बहुधा होटल मॉडर्न में ही पीते थे। न इसके लिये कभी उन्हें बिल दिया गया, और न उन्होंने बिल मांगा ही। एक दिन वे कहने लगे, उनके मित्र कमलाशंकर श्रीवास्तव कुछ दिनों के लिये रामनगर आ रहे हैं। बाल-बच्चे भी उनके साथ होंगे। यदि होटल मॉडर्न में उनके लिये एक कमरा दिया जा सके, तो बहुत उत्तम होगा। वे अधिक से अधिक दो रुपया रोज खर्च कर सकते हैं, उनकी आमदनी ही क्या है, बिलारी (जि० मुरादाबाद) में वे मुहर्रिर का काम करते हैं, सौ सवा सौ रुपया महीना की आमदनी है। मैंने कहा, भाई भटनागर, क्यों नहीं इनके लिये किसी छोटे होटल में इन्तजाम कर देते? पर सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब तो अपने दोस्त को यह दिखाना चाहते थे, कि वे भी कोई मामूली आदमी नहीं हैं। अपने दोस्त को ऐसे होटल में ठहरा सकते हैं, जहां बड़े-बड़े राजा, ताल्लुकेदार व सरकारी अफसर ठहरते हैं। मैंने मि० भटनागर को टालने की बड़ी कोशिश की, पर वे नहीं माने। वे जानते थे, कि वे भी होटल के अफसरों में से हैं। यदि कभी रसोईघर व गुसलखानों की सफाई के बारे में शिकायत की रिपोर्ट लिख दें, तो हेल्थ आफिसर साहब उसकी उपेक्षा नहीं कर सकेंगे। जो आदमी बिजनेस करने बैठता है, उसे सभी देवताओं को बलि प्रदान कर सन्तुष्ट करना पड़ता है, फिर देवता

चाहे छोटा ही क्यों न हो। आखिर सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब की मांग भी पूरी की गई। श्रीवास्तव साहब को दो रुपये रोज पर कमरा दे दिया गया। एक छोटे-से कमरे में श्रीवास्तव साहब अपनी पत्नी और चार बच्चों के साथ कैसे निवास करते थे, यह वे पाठक भली भांति समझ सकते हैं, जो निम्न मध्यवर्ग के हैं। उन्होंने मेज-कुर्सी-पलंग आदि सब कमरे से बाहर निकाल दिये थे, फर्श पर बिस्तर बिछा लिये थे, और कमरे के पीछे की खुली जगह पर वे अंगीठी पर खाना पका लेते थे। होटल के उच्च वर्ग के मेहमानों को इससे बहुत शिकायत थी। वे कहते थे, आपने तो होटल मॉडर्न को सराय बना दिया है। ऐसे-ऐसे लोगों को कमरे दे दिये है, जो उनके मुंशी या क्लार्क होने लायक भी नहीं हैं। पर ये लोग मेरी परेशानियों को क्या समझते? आप ही बताइये, क्या मैं सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब को नाराज कर सकता था? और अब जमाना भी तो बदल चुका था। यदि मैं यह नीति रखता, कि होटल मॉडर्न में केवल उच्च वर्ग के लोगों को स्थान दिया जाय, तो उसके आधे से अधिक कमरे खाली पड़े रहते। मैंने खुद ऐसे कितने ही लोगों को होटल मॉडर्न में जगह दी थी, जो मध्य श्रेणी के थे, जो अपना भोजन स्वयं बनाते थे और जो स्नान के बाद अपनी धोतियों को बाहर के खुले बरामदे में सूखने के लिये लटका देते थे। जिस स्थिति के परिवार को सेनिटरी इन्स्पेक्टर साहब ने होटल मॉडर्न में ठहरवा दिया था, वैसे ही अन्य अनेक परिवार वहां पहले से ही मौजूद थे। भेद केवल इतना था, कि वे दो रुपये रोज न देकर दस या बारह रुपया रोज कमरे के किराये का देते थे।

मैं श्री केवलकृष्ण भटनागर के साथ अन्याय नहीं करूंगा, वे छोटे अफसर थे, और उनका मुंह भी अधिक फैला हुआ नहीं था। उन्हें कालिज से निकले अभी कुछ ही साल हुए थे। उनमें देशभक्ति और राष्ट्रीयता के भाव कूट-कूटकर भरे हुए थे। १९४२ के आन्दोलन में भी उन्होंने भाग लिया था। अंग्रेजी हुकूमत के प्रति उनके हृदय में घृणा थी। रामनगर

में दो-एक होटल व बोर्डिंग हाउस ऐसे भी थे, जिनका प्रबन्ध अब तक भी अंग्रेजों के हाथों में था। सेनिटरी इन्स्पेक्टर की हैसियत से श्री भटनागर इनके निरीक्षण के लिये भी जाया करते थे। वे मुझसे कहते थे, होटल मॉडर्न की सफाई इन अंग्रेजी होटलों के मुकाबले में किसी भी तरह से कम नहीं है। श्री भटनागर को यह बुरा लगता था, कि स्वराज्य के बाद भी भारत के शिक्षित व सम्पन्न वर्ग में अंग्रेजों और अंग्रेजियत का इतना अधिक रोब क्यों है? यदि वे हेल्थ आफिसर को होटल मॉडर्न से अनुचित लाभ उठाते हुए न देखते, तो मुझे विश्वास है, कि वे अपने मित्र के लिये मेरे यहां दो रुपये रोज पर कमरा दे देने के लिये कभी आग्रह न करते। अंग्रेजी राज के जमाने में सरकारी अफसरों को अपनी स्थिति का अनुचित लाभ उठाने की जो आदत पड़ गई थी, वह अब स्वराज्य स्थापित हो जाने के बाद भी दूर नहीं हुई थी। यदि हेल्थ आफिसर साहब सदृश उच्च सरकारी कर्मचारियों ने मुझे सैकड़ों-हजारों रुपये का नुकसान पहुंचाया, तो श्री भटनागर ने दो रुपया रोज पर कमरा लेकर मुझे जो हानि पहुंचाई, उसके लिये मैं उन्हें कोई दोष नहीं दे सकता।

एक दिन रामनगर के सिटी मजिस्ट्रेट साहब ने मुझे फोन किया, कि आज सायंकाल उनके घर एक डिनर-पार्टी है। बाकी खाना तो उनका खानसामा बनायेगा, पर वह बढ़िया पुडिंग नहीं बना सकेगा। अगर बारह आदमियों के लिये कोई बढ़िया पुडिंग होटल से बनवाकर भेज दिया जाय, तो वे इसके लिये अत्यधिक कृतज्ञ होंगे। फोन पर उन्होंने यह भी अनुरोध किया, कि पुडिंग की कीमत का बिल उन्हें साथ ही भेज दिया जाय। सिटी मजिस्ट्रेट साहब के आदेश का पालन किया गया, और साथ ही पुडिंग की रियायती कीमत का बिल भी भेज दिया गया। यह बिल केवल ९ रुपये का था। जो बेयरा पुडिंग लेकर गया था, उसने बिल भी मजिस्ट्रेट साहब को दे दिया। इसे देखकर वे बहुत नाराज हुए। बिल भेज देने की बात उन्होंने केवल औपचारिक ढंग से कही थी। इस बिल की

रकम न उन्होंने भेजी, और न मैंने इसके लिये उनसे तकाजा ही किया। जिस व्यक्ति के हाथ में रामनगर में शान्ति और व्यवस्था स्थापित रखने की जिम्मेदारी हो, जिसे जनता के निग्रह और अनुग्रह का असीमित अधिकार हो, उसे इस तरह की छोटी-छोटी बातों को याद रखने की फुरसत कहां थी ?

## (१६)

## सेठ बदलराम झुनझुनवाला

प्रथम जून को एक सज्जन मेरे आफिस में आये, और उन्होंने मुझसे कहा, कि इन्दौर के प्रसिद्ध मिल-मालिक सेठ सर बदलराम झुनझुनवाला रामनगर पधार रहे हैं। वे पांच दिन के लगभग यहां ठहरेंगे। उनके लिये कम से कम सात बढ़िया कमरे चाहियें। सर और लेडी झुनझुनवाला एक कमरे में रहेंगे, उनके लिये एक पृथक् ड्राइंग रूम चाहिये और एक प्राइवेट डाइनिंग रूम। कई कमरे उनके स्टाफ के लिये चाहियें, जिनमें उनके सेक्रेटरी, मैनेजर और दो इन्जीनियर रहेंगे। शेष कमरों में लेडी साहिबा की सेक्रेटरी और कम्पेनियन का निवास होगा। नौकरों-चाकरों के लिये पांच क्वार्टरों की आवश्यकता होगी, और एक ऐसा साफ-सुथरा घर भी उन्हें देना होगा, जहां सेठ साहब का भोजन बन सके। सर बदलराम रामनगर में जायदाद खरीदना चाहते हैं, इसीलिये वे अपने इन्जीनियरों को साथ ला रहे हैं। पांच-छः दिन में वे खुद देख-भालकर किसी अच्छी जायदाद का सौदा कर लेंगे, और यदि जरूरत हुई, तो वे कुछ अधिक दिन भी ठहर जावेंगे। सेठ साहब के लिये ऐसे कमरे चाहियें, जो उनकी हैसियत के मुताबिक हों, और जहां उन्हें पूरा-पूरा आराम मिल सके।

सर बदलराम भारत के सुप्रसिद्ध करोड़पति हैं। उनकी दर्जनों कपड़ा-मिलें और जूट-मिलें हैं। उनका अपना बैंक है, और अपनी बीमा

कम्पनी। उत्तर-प्रदेश में उनकी अनेक चीनी-मिलें भी हैं। जनता और सरकार दोनों में उनका समान रूप से आदर है। इतने बड़े सेठ होटल मॉडर्न में आकर ठहर रहे हैं, यह मेरे लिये गौरव की बात थी। जून के महीने में रामनगर में बहुत भीड़ हो जाती है, होटलों में जगह मिलना कठिन हो जाता है। अब तक मेरे भी प्रायः सभी कमरे भर गये थे। पर सर-बदलराम-जैसी सोने की चिड़िया की कौन उपेक्षा कर सकता था? जिस तरह भी सम्भव हो, उनके लिये कमरे रिजर्व करना आवश्यक था। मैंने होटल के रिजर्वेशन रजिस्टर को देखा, प्रायः सभी कमरे भर गये थे या रिजर्व हो गये थे। पर जैसे-कैसे करके मैंने सर बदलराम के लिये सात कमरे निकाल लिये और उन्हें मिश्रा साहब को दिखला दिया। मिश्रा-जी सर बदलराम के मैनेजर थे, और उनके निवास की व्यवस्था करने के लिये दो दिन पहले ही होटल मॉडर्न पधार गये थे। उनके साथ दस नौकर-चाकर भी आये थे। हिसाब लगाकर मैंने मिश्राजी को बता दिया, कि सेठ साहब के निवास के लिये कमरों और क्वार्टरों का कुल किराया १०० रु० दैनिक होगा। यदि वे भोजन आदि लेंगे, तो उनका खर्च अलग होगा। मिश्राजी ने हिसाब समझकर इस रेट को स्वीकार कर लिया और वे स्वयं एक कमरे में निवास के लिये पधार गये।

पर सेठजी के लिये सात बढ़िया कमरे रिजर्व करावा मिश्राजी के कार्य की इतिश्री नहीं हो गई थी। उनके सिर पर यह फिकर सवार थी, कि कमरों को इस ढंग से सजाया जाय, ताकि सेठजी को उनसे किसी भी प्रकार की शिकायत महसूस न हो। कमरों को अच्छी तरह देख-भालकर वे मेरे पास आये और कहने लगे, कि सेठजी बहुत बड़े आदमी हैं, जो सोफासेट उनकी बैठक में है, वह मॉडर्न डिजाइन का नहीं है, उसका बदला जाना जरूरी है। कमरों में जो परदे लटक रहे हैं, वे अच्छे हैं, स्टाफ के आदमियों के लिये तो वे सन्तोषजनक होंगे। पर सेठजी के बेड रूम, सिटिंग रूम और डाइनिंग रूम में रेशम के परदे होने चाहियें, रेशम भी खूब वजनदार और

चटकीला हो। उनके कमरों में पर्शियन गलीचों का होना भी जरूरी है। सेठजी के कमरे में जो पलंग है, उसे हटाकर ऐसा पलंग रखा जाना चाहिये, जो स्प्रिंगदार हो और जिस पर एक फुट मोटा स्प्रिंगदार गद्दा पड़ा हो। मैंने मिश्राजी से कहा, ये सब चीजें तो होटल में नहीं मिल सकती। इनका प्रबन्ध कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं होगा। यह सुनकर मिश्राजी बहुत निराश हुए। कहने लगे, फिर सेठजी यहां ठहर कैसे सकेंगे? यदि मैंने सेठजी को होटल का मेहमान बनाना है, तो इन सब चीजों का प्रबन्ध तो करना ही होगा। मिश्राजी मेरे सम्मुख सेठजी के धन-वैभव का बखान करने लगे। उनका महल दो करोड़ रुपये की लागत से बना है, उसे बनवाने के लिये इटली से कारीगर बुलाये गये थे, उसे डेकोरेट और फर्निश करने का ठेका पेरिस की एक फर्म को दिया गया था। महल के सामने एक झील है, जिसमें बिजली की करेन्ट से ऐसी लहरें उठाई जाती हैं, जैसी समुद्र में उठती है। पानी की सतह पर बिजली की रंग-बिरंगी बत्तियां लगाई गई हैं। जब सेठजी अपनी मित्रमण्डली के साथ रात के समय झील में जल-विहार के लिये निकलते हैं, तो रंग-बिरंगी बिजली की रोशनी और सामुद्रिक लहरों से जो इन्द्रजाल का सा दृश्य उपस्थित होता है, वह देखने ही बनता है। होटल मॉडर्न के ये कमरे सेठजी को क्या पसन्द आवेंगे? पर पांच-सात दिन तो उन्हें कहीं ठहरना ही है। जब वे रामनगर में कोई जायदाद खरीद लेंगे, तो उसकी सब इमारत को गिराकर एक नया महल तैयार किया जायगा। तब आप देखेंगे, महल किसे कहते हैं, और सेठजी की क्या शान है।

मिश्राजी अभी और बहुत कुछ कहना चाहते थे। पर उन्हें बीच में ही टोककर मैंने कहा—सेठजी यदि करोड़पति हैं, तो मुझे इससे क्या मतलब? मेरे लिये तो उनकी कीमत १०० रु० रोज की है, जिससे उनके लिये सात कमरे और पांच क्वार्टर किराये पर लिये गये हैं। उनके किराये का रेट १२ रु० प्रति कमरे के हिसाब से पड़ता है। यह रेट तो होटल में

ठहरे हुए प्रायः सभी लोग दे रहे हैं। मेरी निगाह में जो कीमत होटल के अन्य मेहमानों की है, सेठजी की उससे अधिक नहीं है। जब सेठजी अन्य मेहमानों के बराबर ही दे रहे हैं, तो उनको मैं औरों के मुकाबले में अधिक महत्व क्यों दूं ? मेरी यह बात मिश्राजी की समझ नहीं आ सकी। सेठजी उन्हें २००० रु० मासिक वेतन देते थे। वे फर्स्ट क्लास में सफर करते थे, एक शानदार बंगले में रहते थे और सेठजी की ओर से उन्हें एक बढ़िया मोटरकार भी इस्तेमाल के लिये मिली हुई थी। बी० ए० एल० एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त किये हुए मिश्राजी पर यदि सेठजी की कृपा न होती, तो वे इतना सुखमय जीवन कैसे बिता सकते थे ? मिश्राजी के लिये सेठजी भगवान् से कम नहीं थे। भगवान् की खुशामद से मनुष्य को कोई फल मिलता है या नहीं, इस बात पर तो मतभेद हो सकता है। पर सेठजी की खुशामद से मिश्राजी को जो फल प्राप्त हो रहा था, वह तो प्रत्यक्ष ही था। वे खुद भी किसी सेठ से कम नहीं मालूम पड़ते थे। मिश्राजी ने मुझसे कहा—माफ कीजिये, आप बिजनेस नहीं समझते। यह सौभाग्य है, जो सेठजी जैसे व्यक्ति आपके होटल में ठहर रहे हैं। उनसे परिचय प्राप्त करने का सुवर्णीय अवसर आपको मिल रहा है। आप उनके आराम के लिये जो खर्च करेंगे, मालूम नहीं, आप उससे भविष्य में क्या कुछ लाभ उठा लेंगे। पर मुझे मिश्राजी की बात समझ नहीं आई। मैंने कहा, यदि सेठजी छः दिन होटल मॉडर्न में ठहरेंगे, तो मुझे केवल ६०० रु० प्राप्त होंगे। मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं, कि इन ६०० रुपयों के लिये या सेठजी से परिचय प्राप्त करने के लिये नये परदों, गलीचों व सोफासेट पर हजारों रुपया खर्च कर दूं। यदि इन चीजों को मैंने किराये पर भी लिया, तो किराया ४०० रु० से कम नहीं पड़ेगा, क्योंकि रामनगर में एक महीने से कम के लिये फर्निचर भी किराये पर नहीं मिलता। मैंने मिश्राजी से साफ-साफ कह दिया, कि यदि वे कोई बढ़िया फर्निचर आदि सेठजी के लिये जरूरी समझें, तो उसे खुद किराये पर ले आवें।

३ जून को सर बदलराम अपने दल-बल के साथ होटल मॉडर्न पधार गये। सेठजी लम्बे-चौड़े डीलडौल के भारी भरकम आदमी थे। सेठानी-जी का रंग कोयले को भी मात करता था और उनके चेहरे पर चेचक के मोटे-मोटे निशान बहुत भद्दे तरीके से उभरे हुए थे। पर रुपये की चमक सर और लेडी बदलराम के चेहरे पर इतनी जबर्दस्त थी, कि उनकी ओर आंख नहीं जमती थी। झुनझुनिया कुटुम्ब के उत्कर्ष का प्रारम्भ उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में हुआ था, जब कि सर बदलराम के पितामह मार-वाड़ के एक छोटे-से गांव से रोजगार की तलाश में कलकत्ता आये थे। वहां उन्होंने दलाल के रूप में अपने जीवन को प्रारम्भ किया। कुछ साल बाद उन्होंने अपनी अलग गद्दी कायम कर ली, जिसमें जूट और सोने-चांदी का सट्टा होने लगा। सेठ बालकराम का भाग्य बहुत अच्छा था और कुछ ही सालों में उनकी गिनती कलकत्ता के लखपतियों में होने लग गई थी। १९१४-१८ के महायुद्ध में सेठ बालकराम पातीराम की फर्म ने बहुत रुपया पैदा किया। हिन्दुस्तानी फौज को घी सप्लाई करने का ठेका इस फर्म को मिल गया था, और घी में चरबी, तेल, मथे हुए कचालू आदि मिला-कर इस फर्म ने करोड़ों रुपया खुद पैदा किया और करोड़ों रुपया फौजी अफसरों को रिश्वत में दिया था। करोड़पति होकर सेठ पातीराम (सर बदलराम के पिता का नाम पातीराम था) ने सट्टा करना छोड़ दिया और व्यवसाय की ओर ध्यान देना शुरू किया। पूर्वी बंगाल में उन्होंने कई जूट-मिलें खरीद लीं, और इन्दौर में अनेक नई कपड़ा-मिलें कायम कीं। १९३९-४५ का महायुद्ध झुनझुनिया-परिवार के लिये वरदान के समान सिद्ध हुआ। बाजार में कपड़ा दुर्लभ हो गया और पटसन व चोरे रेशम के भाव बिकने लगे। चोर-बाजार में सर बदलराम ने करोड़ों रुपया कमाया और व्यापार व व्यवसाय के क्षेत्र में और भी अधिक उन्नति की। उन्होंने अपना बैंक और अपनी बीमा कम्पनी कायम कर ली, और जनता का करोड़ों रुपया उनके बैंक में जमा होने लगा। बीमा कम्पनी में करोड़ों

रुपये प्रति वर्ष प्रीमियम के रूप में प्राप्त होने लगे और जनता के इस रुपये का उपयोग सर बदलराम अपने निजी व्यापार व व्यवसाय के लिये करने लगे। अब १९४७ में वह स्थिति आ गई थी, कि सर बदलराम की गिनती भारत के सर्वप्रधान व्यवसाय-पतियों में होने लगी थी। सर बदल-राम रुपये को पानी की तरह बहाते थे, और लक्ष्मी को अपनी दासी समझते थे।

सर बदलराम ने जो अपार सम्पत्ति संचित की थी, उसका कारण उनका अपना श्रम नहीं था। योग्य से योग्य प्रोफेसर हजार रुपये मासिक के लगभग कमाता है, और इन्जीनियर, डाक्टर आदि अन्य पेशेवरों की आमदनी भी लाखों में न होकर हजारों में होती है। झुनझुनिया परिवार का यह भाग्य था, पूर्वजन्म के सुकृतों का संचित फल था, यह मानकर इस बीसवीं सदी में सन्तोष कर सकना सम्भव नहीं है। समाजवादी कहेंगे, कि यह समाज का दूषित संगठन था, जिसने इस परिवार को इतना अधिक धन कमाने का अवसर दिया। यदि सट्टा करना गैर-कानूनी होता, रिश्वत खाकर फौजी अफसर बालकराम पातीराम फर्म को मिलावटी घी असली घी की कीमत में बेचने का मौका न दिये होते और कानून द्वारा चोर-बाजारी को रोका जा सकता, तो आज सर बदलराम करोड़ों रुपये के मालिक नहीं हो सकते थे। कम्युनिस्ट लोग कहेंगे, कि उत्पत्ति के साधनों पर वैयक्तिक स्वत्व को स्वीकार करने और अनुपार्जित आमदनी को उचित मानने का ही यह परिणाम है, कि सर बदलराम जैसे करोड़पति आज लाखों ईमानदार मजदूरों के श्रम का शोषण कर खुद करोड़ों रुपया कमाने में समर्थ हो रहे हैं। मैं सोशलिज्म और कम्युनिज्म की बहस में नहीं पड़ूंगा। मैं तो यही सोचता हूं, कि आज के राज्यों ने अत्यधिक और अनुचित परिग्रह के विरुद्ध कानून क्यों नहीं बनाया? हमारे प्राचीन शास्त्रों ने पांच यमों का प्रतिपादन किया है, जिनके अनुसरण से व्यक्ति और समाज की उन्नति होती है। ये पांच यम निम्नलिखित हैं--सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य।

यदि कोई आदमी झूठ बोले, किसी मनुष्य की जान ले, किसी पशु पर अमानुषिक क्रूरता करे, किसी पर हमला करे, किसी की चोरी करे, पर-स्त्री पर कुदृष्टि डाले या किसी से बलात्कार करे, तो कानून द्वारा उसे सजा देने की व्यवस्था है। समाज ने पांच यमों में से चार को क्रिया में परिणत करने के लिये कानून का आश्रय लेने की आवश्यकता स्वीकार की है। पर अपरिग्रह (सम्पत्ति का अत्यधिक संग्रह न होने देने) के लिये अभी कोई कानून नहीं बना है। क्या सर बदलराम जैसे करोड़पतियों की सत्ता उनकी अपनी वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक हित में बाधक नही है? यदि है, तो अपरिग्रह के लिये कानून क्यों नहीं बनाना चाहिये?

सर बदलराम का पधारना रामनगर के लिये एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उनके नाम, वैभव व कीर्ति से लोग भली भांति परिचित थे। वे दानवीरता के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे। उनके बनवाये हुए विशाल मन्दिर हरिद्वार, बनारस और इन्दौर आदि में दर्शनीय स्थान माने जाते थे। उनकी धर्मशालाओं में हजारों नर-नारी विश्राम कर सेठजी की मंगल कामना किया करते थे। अपने पितामह सेठ बालकराम के नाम पर एक कालिज भी सर बदलराम ने कलकत्ता में स्थापित करा दिया था। शिक्षा, चिकित्सा, गोसेवा आदि के लिये सेठजी उदारतापूर्वक दान देते थे, और यही कारण है, कि अंग्रेजी राज के जमाने में उन्हें सर का खिताब प्राप्त हुआ था। १९४२ के बाद सेठजी ने यह समझ लिया था, कि अब अंग्रेजी शासन देर तक कायम नहीं रह सकता। उन्होंने महात्मा गांधी से भी सम्पर्क स्थापित कर लिया था, और अछूतोद्धार, ग्रामोद्योग सदृश कार्यों के लिये आर्थिक सहायता प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया था। इस समय उनकी गिनती उन देशभक्त सेठों में की जाती थी, जिनका धन जनता-जनार्दन की सेवा के लिये है। इस दशा में यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि रामनगर की सार्वजनिक संस्थाओं के कार्यकर्ता उनके आगमन से खुश हों। उन्हें विश्वास था, कि सेठजी की सेवा में डेपुटेशन ले जाने पर वे खाली हाथ नहीं लौटेंगे,

और सेठजी की कृपा-दृष्टि से उनकी संस्थाओं का भाग्य-सूर्य उदित हो जायगा। रामनगर के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने परस्पर मिलकर सलाह की, और यह निश्चय किया, कि सेठजी के स्वागत में एक सभा की जाय, उन्हें अभिनन्दन-पत्र दिया जाय और यदि वे स्वीकार करें, तो उनका एक जलूस भी निकाला जाय। पण्डित किशोरीलाल रामनगर के बड़े चलते-पुरजे नेता थे और प्रायः सभी सार्वजनिक संस्थाओं में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। स्थानीय कांग्रेस-कमेटी के वे उपप्रधान थे, और हिन्दी-साहित्य-समिति के मन्त्री। आर्यसमाज की अन्तरंग सभा के वे सदस्य थे, और रामलीला-कमेटी में भी वे शामिल होते थे। ४ जून को पण्डित किशोरीलालजी अपने कुछ साथियों के साथ मेरे दफ्तर में आये, और हाथ जोड़कर नमस्ते करके कहने लगे; कर्नल साहब, सेठजी से हमें मिलना है, कोई ऐसा इन्तजाम करें, कि जल्दी मुलाकात हो जाय। मैंने उत्तर दिया, कि सेठजी से तो अब तक मेरी अपनी भी भेंट नहीं हुई, हां उनके मैनेजर मिश्राजी से मैं जरूर मिला हूं। पर वे मुझसे खुश नहीं हैं, अच्छा होगा कि आप स्वयं ही उनसे मिलने की कोशिश करें। मेरे जवाब से पण्डितजी को निराशा हुई, क्योंकि सेठजी के अभेद्य दुर्ग में प्रवेश पाने के लिये किसी मार्ग-प्रदर्शक का साथ होना आवश्यक था। खादी के श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, पण्डित किशोरीलालजी की मण्डली होटल मॉडर्न के दफ्तर में जमकर बैठ गई, और इस बात की प्रतीक्षा करने लगी, कि सेठजी का कोई आदमी बाहर निकले और उससे मिलकर वे सेठजी से भेंट करने का यत्न करें। उन्हें दो घण्टे इसी तरह बेकार बैठे बीत गये। इस बीच में तीसरे पहर की चाय का समय हो गया। शिष्टाचारवश मैंने यह उचित समझा, कि रामनगर के इन सार्वजनिक नेताओं को चायपान के लिये निमन्त्रित कर लिया जाय। चाय की बात सुनकर पण्डित किशोरीलालजी बहुत प्रसन्न हुए। पैसा देकर होटल मॉडर्न में चाय पीना उनकी शक्ति के बाहर था। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी, कि होटल मॉडर्न के शानदार लॉन्ज में बैठ-

कर उसी ढंग से चाय पिएं, जैसे कि बड़े-बड़े रईस या आफिसर पिया करते हैं। मेरे निमन्त्रण के कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण हो गई, और अपनी मित्र-मण्डली के साथ बैठकर उन्होंने अपना एक घण्टा बड़े मजे में व्यतीत किया।

आखिर, पांच बजे के लगभग मिश्राजी अपने कमरे से नीचे आये। खिदमतगार ने आकर सूचित किया, कि मिश्राजी बाहर आ गये हैं। पण्डित किशोरीलालजी ने तुरन्त जाकर उन्हें घेर लिया। अपने आने का प्रयोजन उन्हें बताया और यह प्रार्थना की, कि वे सेठजी से उनकी मुलाकात करा दें। मिश्राजी ने कहा, अभी तो सेठजी आराम कर रहे हैं। कोई आध घण्टे बाद अपने प्राइवेट सिटिंग रूम में आकर बैठेंगे, तब वे उनसे मुलाकात करा देंगे। कोई छः बजे पण्डित किशोरीलालजी को सेठ-जी की बैठक में बुलाया गया। पण्डितजी ने सेठजी से निवेदन किया, कि रामनगर की जनता आपके दर्शनों के लिये बहुत अधिक उत्सुक है। आपकी कीर्ति और सेवा से रामनगर का बच्चा-बच्चा परिचित है। यदि आप अपने अमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालकर जनता को दर्शन दे सकें, तो आपकी बड़ी कृपा होगी। सेठजी पण्डित किशोरीलाल के अनु-रोध को अस्वीकार नहीं कर सके। जुलूस की बात तो उन्होंने नहीं मानी, पर अभिनन्दन-पत्र व स्वागत स्वीकार कर लिया। छः जून को पण्डित किशोरीलालजी के प्रयत्न से एक विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। कांग्रेस, आर्यसमाज, गांधी-आश्रम, खालसा-दीवान, सनातन-धर्म-सभा, हिन्दी-साहित्य-समिति, रामनगर [illegible] आदि सभी सार्वजनिक संस्थाओं ने इस समारोह [illegible] कार्रवाई स्वागत-गीत से प्रारम्भ हुई, जिसे बड़े मधुर स्वर के साथ कन्या-पाठशाला की बालिकाओं ने गाया। सेठजी की प्रशंसा में अनेक व्याख्यान हुए और बाद में उन्हें अभिनन्दन-पत्र पेश किया गया। सेठजी को सार्वजनिक सभा में भाषण देने की आदत नहीं थी। उनकी योग्यता

भी इतनी नहीं थी, कि वे शुद्ध हिन्दी में पांच मिनट भी बोल सकते। उनके भाषण को मिश्राजी ने लिखा था, और सेठजी ने उसे भली भांति रट लिया था। चार-पांच मिनट धीरे-धीरे बोलकर उन्होंने अपने भाषण को समाप्त कर दिया। चार मिनटों की इस स्पीच में आठ-दस बार तालियां पिटीं। पण्डित किशोरीलालजी सेठजी के ठीक सामने बैठे हुए थे, उनके श्रीमुख से निकले हुए एक-एक शब्द को वे मुग्ध होकर सुन रहे थे और बात-बात पर तालियां पीट रहे थे। सर बदलराम के भाषण की समाप्ति पर पण्डित किशोरीलाल प्लेटफार्म पर आ खड़े हुए, और उन्होंने सप्तम स्वर में चिल्लाकर कहा—'सच्चे देशभक्त धर्मप्राण दानवीर सेठ बदलरामजी की जय हो।' जनता ने 'जय हो' की ध्वनि में पण्डितजी का साथ दिया और सेठजी की जयजयकार से दिग्-दिगन्त गूंज उठे। मैं भी इस स्वागत-समारोह में उपस्थित था। सेठजी की प्रशंसा में जो भाषण हुए थे, उनका जिस ढंग से जयजयकार हुआ था, उसे देखकर मैं सोच रहा था, कि रामनगर में कितने ही विद्वान्, कवि, साहित्यिक और वैज्ञानिक आते हैं। जनता को यह मालूम भी नहीं होने पाता, कि कौन आया और कौन गया। उनकी कोई बात तक नहीं पूछता। पूछ होती है, केवल राजनीतिक नेताओं की या धनपतियों की। क्या मानव-समाज के कल्याण के लिये सबसे अधिक महत्त्व का कार्य राजनीतिज्ञ और पूंजीपति ही करते हैं? यह ठीक है, कि पण्डित किशोरीलाल व उनके साथी सर बदलराम के सम्मान में जो ये सब आयोजन कर रहे थे, उनका एकमात्र उद्देश्य सेठजी के अपार धन का कुछ भाग सार्वजनिक हित के कार्यों के लिये प्राप्त करना था। सेठजी के प्रति असली सम्मान शायद किसी के भी हृदय में नहीं था। पर क्या यह उचित न होता, कि अपने धन को सार्वजनिक हित के कार्यों में खर्च करने या न करने का फैसला सर बदल-राम जैसे अर्धशिक्षित व्यक्ति के हाथ में न छोड़ दिया जाता? क्या उन्हें इसके लिये विवश नहीं किया जा सकता था? हमारे शास्त्रों में दान की

बड़ी महिमा लिखी गई है। राजा हरिश्चन्द्र जैसे दानवीरों का यश आज तक गाया जाता है। पर कितने धनपति हैं, जो हरिश्चन्द्र या कर्ण के आदर्श का अनुसरण करते हैं ? सेठ लोग धर्मादे के नाम से अपने ग्राहकों या जनता से टैक्स उसूल करते हैं, और इस रकम को अपनी मर्जी के मुताबिक खर्च करते हैं। सर बदलराम के धर्मादे में भी लाखों रुपया प्रति वर्ष प्राप्त होता था। धर्मादे की यह रकम सेठजी की अपनी कमाई नहीं थी। यह रकम वे जनता से वसूल करते थे, और उसका कुछ हिस्सा प्राप्त करने के लिये पण्डित किशोरीलालजी जैसे सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को उनकी इस ढंग से खुशामद करने की आवश्यकता होती थी। सरकार जो टैक्स लेती है, उसे किस ढंग से खर्च किया जाय, यह बात व्यवस्थापिका सभा द्वारा तय होती है। पर सर बदलराम जैसे धनपति जो लाखों रुपया हर साल धर्म के टैक्स में प्राप्त करते हैं, उस पर जनता का किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है।

रामनगर में जिस धूमधाम से सेठजी का स्वागत हुआ, उससे वे बहुत अधिक प्रसन्न थे। पण्डित किशोरीलालजी को पूरा विश्वास था, कि वे रामनगर की विविध संस्थाओं के लिये अच्छी बड़ी रकम दान में दे जावेंगे। अगले दिन पण्डितजी अपने कुछ साथियों को साथ ले सेठजी की सेवा में उपस्थित हुए। सेठजी ने उन्हें इज्जत के साथ अपनी बैठक में बिठाया। उन्होंने अपने अतिथियों के लिये फल व मिठाई भी मंगाई। पर जब पण्डित किशोरीलालजी ने काम की बात शुरू की, तो सेठजी ने संक्षेप से कह दिया——अभी तो मुझे फुरसत नहीं है, जायदाद का सौदा अभी पक्का नहीं हुआ है। अब तो मैं रामनगर में कोठी खरीद रहा हूँ, हर साल कुछ सप्ताहों के लिये यहां आकर रहा करूँगा। तब आप लोगों से परिचय प्राप्त करने व यहां की संस्थाओं को देखने का अवसर मिलेगा ही। दान की बात मुल्तवी हो गई। पण्डित किशोरीलालजी बहुत निराश हुए। सेठजी के स्वागत-समारोह में हजार से अधिक रुपया खर्च हो गया था।

यदि सेठजी दस हजार भी दान दे देते, तो यह रकम उसी में से अदा कर दी जाती। पर अब पण्डित किशोरीलालजी के सम्मुख एक नई समस्या उत्पन्न हुई। हैण्डबिल व अभिनन्दन-पत्र छपाने में वे १०० रु० के लगभग खर्च कर चुके थे, प्रेस का बिल अभी नहीं दिया गया था। बैण्ड बाजेवालों को भी मजदूरी देनी थी, पण्डाल तैयार करने का काम एक ठेकेदार के सुपुर्द किया गया था, वह भी अपनी रकम के लिये तकाजा कर रहा था। स्वयं-सेवकों के खाने का इन्तजाम एक होटल में किया गया था, होटलवाले का भी बिल दिया जाना था। जब बाद में पण्डितजी मुझसे मिले, तो वे सेठजी के स्वागत-समारोह में हुए खर्च को चन्दे द्वारा पूरा करने में तत्पर थे। मैंने उनसे कहा, पण्डितजी, यदि आप इतनी धूमधाम से मेरा स्वागत करते, तो मैं आपके खर्च की दुगनी रकम तो अवश्य ही आपको दे देता। पर पण्डितजी का कहना था, हम लोगों ने बीज बो दिया है, सेठजी जब फिर रामनगर आवेंगे, तो अवश्य भारी रकम प्रदान करेंगे। पर सेठजी का सौदा रामनगर में नहीं बना, उन्होंने मसूरी में जायदाद खरीद ली और पण्डित किशोरीलालजी की आशालता पर तुषारपात हो गया।

## (१७)

## पण्डित राधेलाल त्यागी एम० एल० ए०

४ जून को सुबह के दस बजे, जब मैं अपने आफिस में बैठा हुआ था, चपरासी ने मुझे कहा, कोई साहब आपको फोन पर बुला रहे हैं। मैं उठकर फोन पर गया, तो मालूम हुआ कि पण्डित राधेलालजी त्यागी मुझ-से बात करना चाहते हैं। मैं त्यागीजी से परिचित नहीं था, उनसे पहले कभी मेरी मुलाकात नहीं हुई थी। त्यागीजी उत्तर-प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य थे, चपरासी ने फोन पर उन्हें कह दिया था, कि इस समय होटल मॉडर्न में कोई भी कमरा खाली नहीं है। यह बात सही भी थी,

क्योंकि सर बदलराम और उनके अनुचरों व पार्श्वचरों ने पूरे सात कमरे घेर रखे थे। जून में वैसे भी पहाड़ी नगरों के होटलों में बहुत रश होता है, और स्थान मिलना कठिन हो जाता है। त्यागीजी ने फोन पर कहा, मैं यू० पी० का एम० एल० ए० हूँ, और कोई दो मास के लगभग रामनगर में रहूँगा। यदि अभी कोई कमरा खाली नहीं है, तो दो-चार दिन वे आफिस में, बरामदे में या लॉञ्ज में कहीं भी गुजर कर लेंगे। जब भी कमरा खाली हो जाय, उन्हें दे दिया जाय। त्यागीजी की बातचीत से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं समझ गया, कि त्यागीजी सचमुच त्यागी हैं। जो व्यक्ति देश के लिये जेल की कालकोठरी में दिन बिता चुका हो, और स्वराज्य-संग्राम का वीर सिपाही होने के कारण जिसे अब एम० एल० ए० पद प्राप्त हुआ हो, उसके लिये होटल के बरामदे या आफिस में दो-चार दिन काट लेना क्या मुश्किल होगा। तीन-चार दिन में सेठ साहब के कमरे खाली हो जावेंगे, तब त्यागजी को एक अच्छा कमरा दे दिया जायगा। मैंने त्यागीजी से कह दिया, आप तुरन्त पधार जावें, आपके निवास का प्रबन्ध हो जायगा।

कोई आध घण्टे बाद श्री राधेलालजी त्यागी मेरे दफ्तर में आ पहुंचे। मैं उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। लम्बा इकहरा शरीर, सिर पर गांधी-टोपी, अचकन और धोती, पैरों में चप्पल—इससे आप त्यागीजी के बहिरंग का अन्दाज कर लीजिये। वे मुझसे बड़े तपाक से मिले। कहने लगे, मैंने आपकी बहुत तारीफ सुनी है। अब तक होटल मॉडर्न अंग्रेजों के प्रबन्ध में था। अच्छा हुआ, जो स्वराज्य के साथ-साथ होटल मॉडर्न भी एक देसी भाई के हाथ में आ गया। सौ से ऊपर कमरोंवाले विशाल होटल में किसी एक आदमी के लिये जगह का प्रबन्ध कर सकना बहुत कठिन नहीं होता। मैंने त्यागीजी को एक छोटे कमरे में टिका दिया और वायदा कर लिया, कि ज्यों ही सर बदलराम के कमरे खाली होंगे, उन्हें एक अच्छा कमरा दे दिया जायगा।

अन्य मेहमानों के समान त्यागीजी रामनगर में आराम, स्वास्थ्य-

सुधार या ऐश के लिये नहीं आये थे। इन बातों की तो उन्हें फुरसत ही नहीं थी। उनका एक-एक क्षण देश-सेवा के लिये अर्पित था। वे रामनगर इसलिये आये थे, ताकि पहाड़ों की जनता में जागृति उत्पन्न की जा सके। एक दिन वे मेरे पास आये और बोले, कर्नल साहब, मुझे कुछ बातों का जरूरी इन्तजाम करना है। मुझे एक सेक्रेटरी चाहिये, जो मेरी चिट्ठी-पत्री का काम कर सके और अन्य कामों में भी मेरी मदद कर सके। एक रेडियो भी मुझे किराये पर चाहिये, क्योंकि राजनीतिक नेताओं के लिये देश-विदेश के समाचारों से अवगत रहना अनिवार्य है। देश और विदेश की परिस्थिति प्रतिक्षण बदलती रहती है। अखबारों में खबरें देर में आती हैं। यदि रेडियो न हो, तो उनका काम कैसे चल सकता है? त्यागीजी की दोनों मांगो को पूरा कर सकना कठिन नहीं था। होटल के बड़े खिदमत-गार चन्दनसिंह ने एक पहाड़ी नवयुवक लाकर खड़ा कर दिया, जो मैट्रिक पास था और मुसलमान होने के कारण उर्दू अच्छी तरह जानता था। उसे शायरी का भी शौक था। त्यागीजी अपने सेक्रेटरी साहब से बहुत प्रसन्न व सन्तुष्ट हुए। वे उसे मौलाना कहकर पुकारते थे, और पण्डितजी व मौलाना साहब का साथ हिन्दू-मुसलिम-एकता का सुन्दर उदाहरण उपस्थित करता था। मौलाना साहब बहुत दिनों से बेकार थे और विवश होकर फर्निचर पर रंग रोगन करने का काम करने लगे थे। यह स्वाभाविक था, कि त्यागीजी की सेक्रेटरीशिप स्वीकार कर उन्हें हार्दिक प्रसन्नता होती। उन्होंने अपनी मैली तुर्की टोपी उतार-कर गांधीकैप को सिर पर धारण कर लिया और त्यागीजी की चिट्ठी-पत्री संभालने के लिये वे होटल मॉडर्न पधार गये। रेडियो एक दूकान से किराये पर मंगा लिया गया और पण्डित राधेलालजी त्यागी के कमरे में फिट करा दिया गया।

त्यागीजी की शिक्षा मिडल क्लास तक हुई थी। वे बुलन्दशहर जिले के एक छोटे-से गांव के रहनेवाले थे। गांव में उनकी थोड़ी-सी जमींदारी

भी थी। पर जमीन-जायदाद की आमदनी उनके गुजारे के लिये पर्याप्त नहीं थी। अतः उन्होंने एक नजदीक के गांव की पाठशाला में मुदर्रिस की नौकरी कर ली थी। १९३० में जब सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू हुआ, तो उन्होंने महात्मा गांधी के आवाहन को सुनकर अपनी नौकरी को लात मार दी और सत्याग्रही स्वयंसेवकों के दल में भरती हो गये। नमक-कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें छः महीने की जेल हुई। जेल से छूटकर फिर उन्होंने नौकरी नहीं की, और अपना सारा समय कांग्रेस के कार्य में लगाने लगे। १९३५ में जब कांग्रेस ने कौंसिल-प्रवेश का निश्चय किया, तो त्यागीजी को व्यवस्थापिका सभा का उम्मीदवार खड़ा किया गया। वे अपने देहाती हलके से कांग्रेस की ओर से खड़े हुए। उनके मुकाबले में जिले के एक बड़े और सम्पन्न जमींदार थे, पर त्यागीजी ने उन्हें परास्त कर दिया। १९३५ में भारत में केवल दो पार्टियां थीं, कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू। सर्वसाधारण जनता कांग्रेस के साथ थी, और यह स्वाभाविक था, कि पण्डित राधेलालजी त्यागी अपने प्रतिद्वन्द्वी को परास्त कर एम० एल० ए० का गौरवमय पद प्राप्त करने में सफल हो जाते। अब त्यागीजी को अपने निर्वाह के लिये कहीं नौकरी करने की आवश्यकता नहीं रह गई थी। उनका रहन-सहन बिलकुल सादा था, और व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को जो मासिक पूजा-वेतन (आनरेरियम) मिलता था, उससे उनका व उनके परिवार का गुजारा मजे में चल जाता था। महायुद्ध के समय जो नया आम चुनाव हुआ, उसमें भी पण्डित राधेलालजी त्यागी कांग्रेस की ओर से एम० एल० ए० निर्वाचित हुए। इसमें सन्देह नहीं, कि त्यागीजी वीर सत्याग्रही थे। १९४२ के 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन में उन्होंने अच्छी तरह काम किया था, और इसके लिये उन्हें दो साल की जेल भी भुगतनी पड़ी थी।

अंग्रेजी राज के जमाने में त्यागीजी की गिनती कांग्रेस के सैनिकों में होती थी, पर अगस्त, १९४७ में स्वराज्य-स्थापना के बाद वे उत्तर-प्रदेश

के अच्छे बड़े नेता माने जाने लगे थे। उत्तर-प्रदेश के अनेक बड़े नेता भारतीय सरकार के मन्त्रिमण्डल के सदस्य हो गये थे, कुछ को विदेशों में राजदूत का पद मिल गया था, और कुछ विविध राज्यों के गवर्नर बना दिये गये थे। त्यागीजी ने इस अवसर का लाभ उठाया, और उत्तर-प्रदेश की राजनीतिक शतरंज में खुलकर खेलना शुरू किया। अब उनके सिर पर यह भूत सवार था, कि वे भी उत्तर-प्रदेश में मन्त्रिपद प्राप्त करें। यदि मन्त्री न बन सकें, तो पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी, डिपुटी स्पीकर आदि का कोई पद प्राप्त कर लें। पर कठिनाई यह थी, कि त्यागीजी का अंग्रेजी का ज्ञान बहुत कम था। उर्दू वे अच्छी जानते थे, पर हिन्दी पर उनका पर्याप्त अधिकार नहीं था। शिक्षा की कमी को वे राजनीतिक आन्दोलन द्वारा पूरा करने के लिये उत्सुक थे। व्याख्यान देने का उन्हें बहुत शौक था। जब वे सर्वसाधारण जनता के सम्मुख लच्छेदार भाषा में व्याख्यान देना शुरू करते, तो श्रोताओं का सिर झूमने लगता। वे कहा करते थे, लोकतन्त्र-शासन की सफलता के लिये जनता में राजनीतिक व सार्वजनिक विषयों को समझने और उन पर विवाद करने की योग्यता होनी चाहिये। अतः उन्होंने योजना बनाई थी, कि सब नगरों में ऐसी क्लबें स्थापित की जावें, जिनमें नवयुवक लोग एकत्र होकर राजनीतिक विषयों पर विवाद किया करें। त्यागीजी ने सुन रखा था, कि प्राचीन ग्रीक गणराज्यों में वक्तृत्व कला को बहुत महत्त्व दिया जाता था। पेरीक्लीज सदृश वक्ता अपनी भाषण-शक्ति द्वारा जनता को अपने पीछे लगा लेते थे। वे कहते थे, मैं सब जगह ऐसे स्कूल कायम करना चाहता हूं, जिनमें विद्यार्थी और युवक वक्तृत्व-कला को सीख सकें। रामनगर में उन्होंने एक ऐसा स्कूल कायम कर लिया था। होटल मॉडर्न के बालरूम में सायंकाल के समय यह स्कूल लगता था। शुरू में मौलाना साहब अपनी नजमें शायराना ढंग पर पढ़कर सुनाते थे। फिर त्यागीजी विद्यार्थियों को बताते थे, कि व्याख्यान किस प्रकार देना चाहिये। विद्यार्थी व्याख्यान देते थे, और त्यागीजी बीच-

बीच में उनकी गलतियां ठीक करते जाते थे। वे बताते थे, व्याख्यान देते हुए अपना सिर इस ढंग से रखो, हाथ इस तरह उठाओ और इस प्रकार से भाषण करो। त्यागीजी का प्रयत्न रहता था, कि रामनगर के कतिपय धनी-मानी सज्जन भी उनके स्कूल में आया करें, और अपनी आंखों यह देखें, कि त्यागीजी कितना महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। स्वराज्य की लड़ाई तो अब खतम हो गई, अब तो लोकतन्त्र गणराज्य को सफल बनाना है। इसके लिये सबसे अधिक आवश्यक बात यह है, कि देश के नवयुवकों को कुशल वक्ता बनने की शिक्षा दी जाय। अनेक नेता भी त्यागीजी के स्कूल को देखने के लिये आये, और उन्होंने उनके महत्त्वपूर्ण कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

नेता बनने की महत्त्वाकांक्षा के कारण त्यागीजी का खर्च अब बहुत बढ़ गया था। अब उनका निर्वाह उस वृत्ति से नहीं हो सकता था, जो एम० एल० ए० के रूप में उन्हें प्राप्त होती थी। अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये उन्होंने एक नया ढंग ईजाद किया था। हिन्दू-मुसलिम-समस्या, जमींदारी-प्रथा, हिन्दू-कोड-बिल आदि सामयिक विषयों पर उन्होंने छोटी छोटी पुस्तिकायें हिन्दी-उर्दू में लिखवा ली थीं। त्यागीजी को खुद लिखने का अभ्यास नहीं था। वे भाषण करने में प्रवीण थे, पर लिखने की क्षमता उनमें नहीं थी। इसलिये ये पुस्तिकायें भी वे अपने मित्रों व सेक्रेटरी आदि से लिखवाया करते थे। त्यागीजी की पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या प्रायः २४ से ३२ तक होती थी, पर इनका मूल्य वे आठ आने से कम नहीं रखते थे। रामनगर आते हुए वे अपनी पुस्तकों को हजारों की संख्या में साथ ले आये थे। वे जिस किसी सम्पन्न व्यक्ति से मिलते, उसे अपनी पुस्तकों का एक सेट दे देते। तीन-चार दिन बाद वे फिर उससे मिलने जाते, और अपनी पुस्तकों में प्रगट किये हुए विचारों के सम्बन्ध में उसकी राय पूछते। लेखक के सम्मुख बैठकर उसकी पुस्तिका के खिलाफ राय जाहिर करना प्रायः शिष्टाचार के विरुद्ध होता है। सभी लोग त्यागीजी से उनके उदात्त

विचारों की प्रशंसा करते और कहते कि इस समय वस्तुतः इन्हीं विचारों के प्रचार की आवश्यकता है। अब क्या था, त्यागीजी को मौका मिल जाता। वे कहते, राजा साहब, आप अपनी जमींदारी में इन पुस्तकों का प्रचार कीजिये, इन्हें मुफ्त बांटिये। मिल-मालिक से त्यागीजी कहते, मैंने अपनी पूंजीवाद सम्बन्धी पुस्तक में साफ-साफ लिख दिया है, कि देश का कल्याण इसी में है, कि मजदूर लोग मेहनत से काम करें, हड़ताल आदि के झंझट में न पड़ें। देश की उन्नति के लिये मजदूरों की भी जरूरत है, और पूंजीपतियों की भी। इस समय राष्ट्र की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है, कि मजदूर लोग अपने अधिकारों के लिये लड़ने के लिये हड़ताल आदि करना छोड़कर पूरी मेहनत के साथ अधिक से अधिक उत्पत्ति में जुट जावें। यदि यह पुस्तक मजदूरों में मुफ्त बांट दी जाय, तो बहुत लाभ होगा। मजदूरों के विचार बदलेंगे, कम्युनिस्ट लोग उनमें जो भ्रमपूर्ण बातें फैला रहे हैं, वे दूर होंगी। कांग्रेस की यही नीति है, कि मजदूर और पूंजीपति दोनों कायम रहें। उनके हितों में विरोध नहीं है, राष्ट्र के हित के सम्मुख दोनों को अपने निजू हितों को कुर्बान करने के लिये तैयार रहना चाहिये। मिल-मालिक त्यागीजी की बातें सुन-सुनकर प्रसन्न होते; और इस बात के लिये तैयार हो जाते, कि उनसे ५०० या १००० रुपये की पुस्तकें खरीद लें और उन्हें मजदूरों में बंटवाकर कम्युनिज्म की बाढ़ को रोकने का प्रयत्न करें। एक दिन त्यागीजी रामनगर के सिटी मजिस्ट्रेट साहब के पास भी पहुँच गये। ये सज्जन मुसलमान थे, उन्हें त्यागीजी ने हिन्दू-मुस्लिम-समस्या सम्बन्धी अपनी पुस्तिका भेंट की। मजिस्ट्रेट साहब पुस्तक को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। इस पर त्यागीजी ने उनसे निवेदन किया, कि इस पुस्तक की हजारों प्रतियां हिन्दुओं और मुसलमानों में बांटी जानी चाहिये। इससे वे सही रास्ते पर सोचने लगेंगे, और हिन्दू-मुसलिम-एकता स्थापित करने में मदद मिलेगी। मजिस्ट्रेट साहब त्यागीजी के विचार से सहमत थे, पर उनके सम्मुख समस्या यह थी, कि इन पुस्तकों की खरीद

के लिये रुपया किस फण्ड से दिया जाय ? त्यागीजी ने इस मामले में उनकी सहायता की, उन्होंने कहा—रिफ्यूजी-रिलीफ फण्ड से ये पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं। उत्तर-प्रदेश में पंजाब से आये हुए शरणार्थी लाखों की संख्या में मौजूद थे, उनकी सहायता के लिये अच्छी बड़ी रकम उत्तर-प्रदेश और भारत की सरकारों ने पृथक् कर रखी थी। इसका एक हिस्सा रामनगर को भी एलाट किया गया था। त्यागीजी ने कहा, रिफ्यूजी लोगों में जो घोर असन्तोष है, उसे दूर करने में उनकी पुस्तक बहुत सहायक सिद्ध होगी। मजिस्ट्रेट साहब उनकी बात मान गये। कांग्रेसी एम० एल० ए० साहब की बात की उपेक्षा कर सकना उनके लिये सम्भव नहीं था। और फिर त्यागीजी ने बात भी ऐसी कही थी, जो जंचती थी। एक हजार रुपये की पुस्तकें त्यागीजी से खरीद ली गईं। सरकार का जो रुपया गरीब रिफ्यूजियों के अन्न और वस्त्र के लिये खर्च किया जाता था, उसमें से एक हजार रुपये की रकम त्यागीजी के भेंट कर दी गई। त्यागीजी ने मुझे स्वयं बताया था, कि रामनगर में उन्हें अच्छी सफलता मिली है, वे ६००० रु० के लगभग की पुस्तकें यहां बेच सके हैं।

मैं यह स्वीकार करूँगा, कि त्यागीजी ने रामनगर में अपनी पुस्तकें बेचने के लिये असाधारण मेहनत की थी। वे होटल मॉडर्न में आराम या ऐश के लिये नहीं ठहरे थे। होटल में ठहरने के कारण उन्हें टेलीफोन की सुविधा थी, लोगों पर उनका रोब पड़ता था और बड़े आदमियों से मिल सकना सुगम हो जाता था। लोग सोचते थे, त्यागीजी बहुत बड़े आदमी हैं, एम० एल० ए० तो वे हैं ही, साथ ही सम्पन्न भी हैं। यदि वे सम्पन्न न होते, तो होटल मॉडर्न जैसे महंगे होटल में कैसे ठहर सकते ? उन्हें क्या पता था, कि त्यागीजी ने भोजन के बिना एक कमरा होटल में किराये पर लिया हुआ है, और मैंने उनकी राजनीतिक सेवाओं को दृष्टि में रखकर उनसे केवल बिजली-पानी का खर्च लेकर उन्हें कमरा दिया हुआ है। जिन बड़े आदमियों से त्यागीजी मिलते, उन्हें वे कहते, मुझे स्वयं रुपये की क्या

जरूरत है, मैं तो खुद जमींदार हूँ, मेरी अच्छी आमदनी है। इन पुस्तकों को मैंने केवल सेवा-भाव से छपवाया है, ताकि जनता को अच्छे विचारों को पढ़ने का अवसर मिले। मैं स्वयं इन पुस्तकों को मुफ्त बांटता हूं, और यह चाहता हूँ, कि आप भी इन्हें जनता तक पहुंचाने में मेरी सहायता करें। त्यागीजी सुबह होते ही अपना बैग लेकर बाहर निकल जाते, मौलाना साहब उनके साथ रहते। न उन्हें धूप की फिकर थी, न वर्षा की। दिन भर वे बड़े आदमियों की सेवा में चक्कर काटते और उन्हें पुस्तकें खरीद कर जनता में बंटवाने की प्रेरणा करते। जो हजारों रुपये उन्हें इस शुभ कार्य के लिये प्राप्त हुए, उसके लिये उन्हें ढाई-तीन महीने तक कड़ी मेहनत करनी पड़ी। जब वे होटल मॉडर्न आये थे, तो उनकी जेब बिलकुल खाली थी। एसेम्बली की मेम्बरी के लिये जो वृत्ति उन्हें मिलती थी, वह अपने गांव में रहते हुए तो पर्याप्त थी। पर रामनगर जैसे महंगे स्थान पर उससे काम नहीं चल सकता था। इसलिये रोज का खर्च चलाने के लिये वे मौलाना साहब को आदेश देते, कि बाजार जाओ और पुस्तकें बेचो। त्यागीजी आगे-आगे चलते थे, और मौलाना साहब नजम गाते हुए पीछे-पीछे। मौलाना साहब की आवाज में मिठास थी, लचक थी। लड़के उन्हें घेरे रहते थे। तीन-चार घण्टे इस तरह घूम-फिरकर तीन-चार रुपये की पुस्तकें रोज बेच लेना कठिन नहीं था। यह रकम त्यागीजी और मौलाना साहब के भोजन के लिये पर्याप्त होती थी। शाम को बैठकर मौलाना साहब अंगीठी में आग जलाते, और त्यागीजी तरकारी काटते। नौकर उनके साथ कोई नहीं था। जब भोजन पककर तैयार हो जाता, तो दोनों सज्जन एक दस्तरखान पर बैठकर उसे खा लेते। हिन्दू-मुसलिम-एकता और आत्मनिर्भरता का कितना सुन्दर आदर्श था? त्यागीजी ने शुरू के दो महीने इसी ढंग से गुजर किया। पर जब रुपये हाथ आ गये, तो उन्होंने अपने बालबच्चों को भी रामनगर बुला लिया। अब त्यागीजी के घर रोज पुलाव पकने लगा, बच्चों के लिये नये कपड़े खरीदे गये और मौलाना

साहब के लिये भी खद्दर की शेरवानी और चूड़ीदार पायजामे सिलवाये गये। अब त्यागीजी के चेहरे पर हंसी खेलती रहती थी। प्रेसवालों का बिल अदा कर दिया गया था, और उनके अपने खर्च के लिये भी कमी नहीं रही थी।

कुछ दिनों बाद त्यागीजी के कतिपय मित्र भी रामनगर आ गये। इनमें से कई सज्जन ऐसे भी थे, जो कांग्रेस के पुराने कार्यकर्ता थे और सत्याग्रह-आन्दोलन में अनेक बार जेल जा चुके थे। इन लोगों ने त्यागीजी के अतिथि रूप से होटल मॉडर्न में आसन जमाया, और पुस्तक-प्रचार के कार्य में उनकी सहायता करनी शुरू की। जिन दिनों की बात मैं लिख रहा हूँ, होटल मॉडर्न तीन-चौथाई खाली हो चुका था। जुलाई में बरसात शुरू होने पर पहाड़ी नगरों के यात्री अपने घर लौट जाते हैं, और होटलों में सुनसान हो जाता है। इस दशा में मैंने त्यागीजी को दो और कमरे दे दिये थे, बिना किसी किराये के। मेरे पास भी अब काम की कमी हो गई थी, और मुझे फुरसत रहती थी। मैं भी अक्सर त्यागीजी के पास जा बैठता था, और देशसेवकों की उस मण्डली में शामिल हो जाता था, जो त्यागीजी के चारों ओर एकत्र रहती थी। रामनगर के बहुत-से कांग्रेसी नेता और कार्यकर्ता भी उनके पास आते रहते थे, और इस तरह त्यागीजी के कमरे में खूब रौनक रहती थी। त्यागीजी की मण्डली में सामयिक प्रश्नों पर खूब बहस होती। जब त्यागीजी किसी समस्या पर विचार करने में असमर्थ होते, किसी सवाल का जवाब न दे सकते या बहस में कमजोर पड़ जाते, तो झुंझलाकर कहने लगते—इस बात पर जल्दी में विचार नहीं किया जा सकता, अब मुझे फुरसत नहीं है, इस पर विचार करना अभी स्थगित रखिये। त्यागीजी एम० एल० ए० थे, अतः सब लोग उनका रोब मानते थे। उन्हें फुरसत नहीं है, इस बात का जवाब देने की हिम्मत किसी को नहीं होती थी।

त्यागीजी की कृपा से मुझे उन देशसेवकों को बहुत नजदीक से देखने

का अवसर मिला, जिनका तन-मन-धन राजनीतिक कार्य के लिये अर्पित था। ये सभी सत्याग्रही वीर थे, और अनेक बार जेल हो आये थे। स्वराज्य की स्थापना के बाद अब इनका एकमात्र उद्देश्य यह था, कि आगामी चुनाव में कांग्रेस का टिकट प्राप्त करें, और एम० पी० या एम० एल० ए० पद पा लें। देश की उन्नति के लिये रचनात्मक कार्य की भी आवश्यकता है; अंग्रेजों के भारत से चले जाने पर पराधीनता के विरुद्ध संग्राम का अन्त नहीं हो गया है, अपितु अब वह अवसर उपस्थित हुआ है, जब कि भुखमरी और गरीबी के विरुद्ध युद्ध करके देश को उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ाना है—इन बातों की ओर इन सत्याग्रही सैनिकों का जरा भी ध्यान नहीं था। त्यागीजी की मण्डली में एक सज्जन थे, जिनका नाम श्री वासुदेव तिवारी था। अलीगढ़ में इनकी पान-सिगरेट की दूकान थी। १९४२ के आन्दोलन में ये भी जेल हो आये थे, और राजनीतिक पीड़ितों में शुमार होने के कारण अब इन्हें सीमेन्ट, लोहे आदि के अनेक परमिट मिल गये थे। इनके पास इतना रुपया नहीं था, कि ये खुद इन चीजों को खरीदकर उनका व्यापार कर सकते। अपने प्रभाव और परिचय से परमिट प्राप्त कर उन्हें ये अमीर व्यापारियों को बेच देते थे, और बदले में एक अच्छी माकूल रकम प्राप्त कर लेते थे। पिछले दिनों चीनी, गुड़, सीरे आदि पर कंट्रोल हो गया था, और चीनी-मिलों का सीरा परमिट प्राप्त कर चार आने मन के भाव से मिल जाता था। पर बाजार में सीरे की कीमत चार रुपये मन की थी। तिवारीजी को अभी हाल में ५० हजार मन सीरे का परमिट मिला था। वे चाहते थे, कि दो रुपये मन के भाव से इस परमिट को बेच दें, और इस बात की फिकर में थे कि कोई पूंजीपति उन्हें एक लाख रुपया नकद पकड़ा दे। न हल्दी लगे न फिटकरी, बात की बात में वे लखपति बन जाने की कोशिश में थे। त्यागीजी की मण्डली के एक अन्य व्यक्ति ठाकुर शिव-सिंह थे, जो अब कांग्रेस छोड़कर सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गये थे। १९४२ के आन्दोलन में वे जब गिरफ्तार हुए, तो जेल में उन पर घोर अत्या-

चार हुए। उनके पैर के अंगूठे को आरी से चीरा गया, ताकि वे अपने उन साथियों का नाम बता दें, जो तोड़-फोड़ के काम में उनके साथ शामिल थे। ठाकुर साहब अपने अंगूठे के निशान को दिखाकर कहते थे, हमने जिस स्वराज्य के लिये इतने कष्ट सहे, उसका क्या यही प्रयोजन था, कि लोग परमिटों के लिये अफसरों की खुशामद करें और अपनी देश-सेवा की दुहाई देकर अब अपनी जेबें भरने का यत्न करें? उन्हें शिकायत थी, कि कांग्रेस के उनके पुराने साथी मार्गभ्रष्ट हो गये हैं, और यही कारण था, कि अब उन्होंने 'समाजवाद जिन्दाबाद' का नारा अपना लिया है। त्यागीजी की मण्डली में जहां तिवारीजी जैसे परमिट-भक्त लोग थे, वहां साथ ही ठाकुर शिवसिंह जैसे व्यक्ति भी थे। त्यागीजी में यह विशेषता थी, कि वे दोनों प्रकार के लोगों को अपने साथ रख सकते थे। राजनीतिक नेता होने के सब गुण उनमें विद्यमान थे, और यदि उनकी शिक्षा बी० ए० तक भी हुई होती, तो वे इस समय उत्तर-प्रदेश के मन्त्रिमण्डल में अवश्य प्रवेश कर जाते।

रामनगर के स्थानीय नेता और राजनीतिक कार्यकर्ता शीघ्र ही त्यागीजी के सम्पर्क में आ गये थे। वे बहुधा उनसे मिलने आते, और अपनी स्थानीय समस्याओं को उनके सम्मुख रखते। इनमें श्री करमचन्द्र वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वर्माजी रामनगर-कांग्रेस-कमेटी के प्रधान थे। उनकी आमदनी का क्या जरिया है, यह मैं नहीं जानता। न वे किसी दफ्तर में काम करते थे, न उनकी कोई दूकान थी और न वे किसी स्कूल या कालिज में अध्यापक ही थे। वकील, डाक्टर, लेखक आदि का पेशा भी वे नहीं करते थे। वे बरेली के निवासी थे, पर मार्च शुरू होते ही रामनगर चले आते थे और नवम्बर से पहले अपने घर बरेली नहीं जाते थे। रामनगर में जो कोई मिनिस्टर, पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी या अन्य नेता आ जाय, उसके साथ रहना और उसके आराम का इन्तजाम करना ही उनका मुख्य कार्य था। रामनगर के व्यापारी, मकान-मालिक और अन्य

धनी-मानी लोग उनका रोब मानते थे, क्योंकि वर्माजी की मार्फत उनके लिये मिनिस्टरों से मुलाकात कर सकना सम्भव हो जाता था। अफसर भी उनसे दबते थे, क्योंकि यदि वर्माजी को किसी अफसर से शिकायत हो, तो वे तुरन्त उसके खिलाफ रिपोर्ट उत्तर-प्रदेश के मन्त्रिमण्डल की सेवा में भेज देते थे। जिस प्रकार तितली एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ती फिरती है, वैसे ही वर्माजी कभी किसी दूकान पर बैठे दिखाई देते, कभी कसी धन-पति की बैठक में और कभी किसी सरकारी दफ्तर में। प्रान्त के नेताओं के सामने रामनगर के लोगों की चुगली करने और अफसरों की शिकायतें करने में वर्माजी को विशेष आनन्द आता था। यही उनका धन्धा था, और इसी से वे भद्र पुरुषों के समान अपना गुजारा करने में समर्थ थे। क्योंकि त्यागीजी भी उत्तर-प्रदेश के एम० एल० ए० थे, प्रदेश-कांग्रेस-कमेटी के सदस्य थे और प्रान्तीय नेताओं में उनकी गिनती थी, अतः वर्मा-जी उनसे भेंट करने के लिये भी अक्सर होटल मॉडर्न आया करते, और कभी-कभी मेरे पास भी आ बैठते। मैं उन्हें चाय बिना पिलाये कभी अपने पास से नहीं जाने देता, क्योंकि मैं जानता था, कि यदि वर्माजी नाराज हो गये, तो ठीक नहीं होगा। 'दुर्जनं प्रथमं वन्दे' के सिद्धान्त का अनुसरण कर मैं वर्माजी को अप्रसन्न नहीं होने देना चाहता था। जब कभी राजनीति की चर्चा चलती, तो मैं देखता, कि वर्माजी कांग्रेस की आलोचना में एक शब्द भी सुनने को तैयार नहीं हैं। हां, रामनगर की नगर-कांग्रेस-कमेटी में वर्माजी का जो विरोधी दल था, उसकी कड़े से कड़े शब्दों में वे खुद आलोचना करते थे और इस बात के लिये उत्सुक रहते थे, कि अपने इन कांग्रेसी विरोधियों के खिलाफ वे डिसिप्लिनरी एक्शन (अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाई) लें। कांग्रेस में उनकी स्थिति बनी रहे, इस बात के लिये वर्माजी बहुत उत्सुक थे। उनका खयाल था, कि देश का नया संविधान शीघ्र ही बनकर तैयार हो जायगा। तब नये चुनाव होंगे। और यदि रामनगर-कांग्रेस-कमेटी का प्रधान पद उन्हीं के हाथों में रहा, तो

उन्हें एम० एल० ए० का टिकट प्राप्त कर लेने में कोई दिक्कत न होगी। व्यवस्थापिका सभाओं के चुनाव में तो शायद कुछ देरी भी हो, पर रामनगर की म्युनिसिपैलिटी का चुनाव तो बहुत जल्दी हो जायगा। वर्माजी चाहते थे, कि वे रामनगर म्युनिसिपैलिटी का चेयरमैन पद प्राप्त कर लें। इसी लिये वे सब कांग्रेसी नेताओं के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करते रहना जरूरी समझते थे। मैंने एक दिन वर्माजी से कहा---रामनगर में कुलियों की हालत बहुत खराब है, उनके निवास के लिये मकानों का कोई भी इन्तजाम नहीं है। वे दिन भर धूप और बरसात का सामना करते हैं, और रात को किसी दूकान के बरामदे में पड़े रहते हैं। क्यों नहीं आप गरीब कुलियों की दशा को सुधारने के लिये कुछ कोशिश करते? वर्माजी ने उत्तर दिया, आप तो कम्युनिस्टों की सी बातें करते हैं। न हमारे पास जादू की छड़ी है, और न अलादीन का चिराग। एक दिन में तो कुलियों की समस्या हल हो नहीं सकती। हां, मैं उत्तर-प्रदेश के प्रधान मन्त्री को पत्र लिखकर उनका ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट कर दूंगा। मैं वर्माजी से कहना चाहता था, रामनगर में सैकड़ों बंगले खाली पड़े हैं, इन बंगलों के साथ जो सर्वेन्ट्स क्वार्टर हैं, उनमें भी कोई नहीं रहता। यदि कोई कुली इन्हें किराये पर मांगता है, तो मकान-मालिक उससे दस रुपया मासिक किराया मांगता है। आप गरीब किसानों से अनाज सस्ते दाम पर खरीदते हैं, बाजार-भाव से कम कीमत पर, ताकि शहरों के रहनेवाले अमीर लोगों को उसे सस्ती कीमत पर दिया जा सके। पर यह आपके लिये सम्भव क्यों नहीं है, कि इन खाली पड़े हुए क्वार्टरों को मकान-मालिकों से मुनासिब किराये पर लेकर इन्हें कुलियों के निवास के लिये दे सकें। आप दस बीघा जोतनेवाले किसान की झोंपड़ी में जाकर उसे १२ रु० मन के भाव से गेहूँ बेचने के लिये राजशक्ति द्वारा विवश करते हैं, इस बात का खयाल नहीं करते कि बाजार में गेहूं का भाव २३ रु० मन है। फिर इन धनी मकान-मालिकों के खाली पड़े हुए क्वार्टरों को आप दो

या तीन रु० मासिक पर कुलियों को क्यों नहीं दिलवा सकते ? पर वर्माजी से इस किस्म के मामलों पर बहस करना खतरे से खाली नहीं था। वे तुरन्त सरकार को रिपोर्ट कर देते, कि होटल मॉडर्न का संचालक कम्युनिस्ट है, रूस का एजेन्ट है। पुलीस को अपनी सरगरमी दिखाने का अवसर मिल जाता, समाचार-पत्रों में खबर छप जाती कि रामनगर में एक भारी साजिश प्रकाश में आई है, और एक ऐसा कम्युनिस्ट गिरफ्तार हुआ है, जो होटल चलाने की आड़ में कम्युनिज्म के प्रचार में व्यग्र था।

त्यागीजी की मण्डली में कभी-कभी सामयिक प्रश्नों पर बहस भी हुआ करती थी। अनाज की कमी, रिफ्यूजी लोगों में साम्प्रदायिकता का जहर, तेलिंगाना में कम्युनिस्ट लोगों का जोर, रूस और अमेरिका का संघर्ष आदि ऐसे विषय थे, जिन पर त्यागीजी व उनकी मण्डली के लोग विचार-विमर्श किया करते थे। अगस्त के महीने में होटल में काम की बहुत कमी थी, अतः मैं भी अक्सर ऐसे अवसरों पर त्यागीजी की मण्डली में शामिल हो जाता था। अर्थशास्त्र में एम० ए० और बी० एस-सी० (लण्डन) होने के कारण मुझे सामयिक समस्याओं में बहुत दिलचस्पी थी। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता, कि सामयिक प्रश्नों के सम्बन्ध में त्यागीजी, वर्माजी और उनके अन्य राजनीतिज्ञ मित्रों का ज्ञान बहुत ही कम है। उन्हें न अर्थशास्त्र से परिचय है, न इतिहास या राजनीति-शास्त्र से। न वे पुस्तकें पढ़ते हैं, और न पत्र-पत्रिकायें। रेडियो पर समाचार सुनकर या किसी दैनिक अखबार के हेडिंग देखकर ही वे अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त कर लेते हैं। वे इस बात की आवश्यकता ही नहीं समझते, कि सामयिक समस्याओं को हल करने के लिये भी गम्भीर ज्ञान और अनुशीलन की जरूरत है।

त्यागीजी, वर्माजी और उनकी मित्रमण्डली के निकट सम्पर्क में आकर मैं सोचा करता था, कि जनता को लोकतन्त्र-शासन से कितनी आशायें हैं, पर लोकतन्त्र-शासन में राजशक्ति जिन लोगों के हाथों में रहती है,

वे तो त्यागीजी और वर्माजी के ढंग के होते हैं, जिन्हें न अध्ययन की चिन्ता है, और न मनन की आवश्यकता, जिनका एकमात्र कार्य तिगड़म द्वारा अपनी स्थिति बनाना है, और जो नेताओं के कृपापात्र बनकर म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन या एम० एल० ए०, एम० पी० आदि पदों को प्राप्त कर लेने के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं। ये लोग पार्लियामेन्ट या कौंसिलों में जाकर क्या करेंगे? अपने मित्रों को परमिट दिलवाकर स्वयं अमीर बनने, किसी की सिफारिश करने या इसी तरह के उचित-अनुचित उपायों से अपना उत्कर्ष करने के अतिरिक्त इन्हें आता ही क्या है? कोई युग था, जब तलवार के धनी देश का शासन करते थे। मध्यकाल में सामन्त-पद्धति के युग में वे लोग हुकूमत करते थे, जिनका बल उनकी बाहुओं में था। आज लोकतन्त्रवाद के युग में राजशक्ति उनके हाथों में आ गई है, जो तिगड़म के धनी हैं, जो गुटबन्दियां बनाकर जनता के वोट प्राप्त कर सकते हैं, और जिन्हें पर-निन्दा व स्तुति में ही आनन्द आता है। इस ढंग का लोकतन्त्रवाद मानव-समाज के हित और कल्याण में कहां तक सहायक होगा, यह तो इतिहास ही बतायगा। आप चिकित्सा का काम उन लोगों के सुपुर्द करते हैं, जो चिकित्सा-शास्त्र के पण्डित हों। कोई नया डाम बनाना हो, नहरें निकालनी हों, इमारत तैयार करनी हो, बिजली का कारखाना बनवाना हो, तो उसका काम कुशल इन्जीनियरों के सुपुर्द करते हैं। पर कानून बनाने के काम के लिये जो व्यवस्थापिका सभा बनती है, उसमें ऐसे लोगों को सदस्य बनाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती, जो कानून व राजनीति के विद्वान् हों। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये वे व्यक्ति सर्वथा उपयुक्त मान लिये जाते हैं, जो वर्माजी के समान तिगड़मी हों। यदि इन्जीनियरों और डाक्टरों की कौंसिलों के लिये भी जनता के वोटों द्वारा चुनाव होने लगा, तो वर्माजी उनमें स्थान प्राप्त किये बिना नहीं रहेंगे। पर मानव-समाज का सौभाग्य है, जो इन्जीनियर या डाक्टर की नियुक्ति के लिये वोटों द्वारा चुनाव नहीं किया जाता। क्या मानव-समाज

का यह दुर्भाग्य नहीं है, कि कानून बनाने, देश की उन्नति के उपायों पर विचार करने और राजशक्ति का उपयोग करने व उस पर नियन्त्रण रखने के लिये जो आदमी नियत किये जाते हैं, उनका चुनाव आम लोगों के वोटों से होता है ? और आम लोगों से वोट प्राप्त करने की कला का जितना अच्छा ज्ञान वर्माजी या त्यागीजी जैसे नेताओं को होता है, वह उन लोगों को नहीं होता, जो इन कार्यों के लिये वास्तविक योग्यता रखते हैं। तलवार के धनियों का शासन कुछ सदियों के बाद नष्ट हो गया। कौन कह सकता है, कि तिगड़म के धनियों का शासन सदा स्थिर रहेगा ? जनता का शासन हो, इससे अच्छी बात क्या हो सकती है ? पर सवाल यह है, कि सच्चे अर्थों में जनता का राज्य कैसे कायम किया जा सकता है ? त्यागीजी और वर्माजी जैसे तिगड़म के धनियों के शासन को तो जनता का शासन नहीं कहा जा सकता।

अगस्त के महीने में उत्तर-प्रदेश के एक मन्त्री महोदय रामनगर पधारे हुए थे। इन सज्जन का नाम मैं यहां नहीं लिखूंगा, और न ही आपको यह बताऊंगा, कि ये किस विभाग के मन्त्री थे। त्यागीजी से इनका अच्छा परिचय था, व्यवस्थापिका सभा में वे इनके सम्पर्क में आते ही रहते थे। एक दिन त्यागीजी ने मुझसे कहा, वे मन्त्री महोदय के सम्मान में एक डिनर-पार्टी देना चाहते हैं। कोई पच्चीस-तीस सज्जन पार्टी में शामिल होंगे। यदि डिनर का प्रबन्ध होटल मॉडर्न में हो सके, तो वे मेरे बहुत कृतज्ञ होंगे। मैंने कहा, त्यागीजी, मेरा तो पेशा ही यह है, इसमें कृतज्ञता की क्या बात है ? यह तो आपकी कृपा है, जो डिनर का प्रबन्ध मेरे होटल में कर रहे हैं। वैसे तो होटल मॉडर्न में स्पेशल डिनर का चार्ज ५ रु० प्रति व्यक्ति होता है, पर क्योंकि आप देशसेवक हैं, अतः आपसे तीन रुपया प्रति व्यक्ति ही स्वीकार कर लूंगा। इस रेट में मुझे बचेगा तो कुछ नहीं, पर खर्च अवश्य निकल जायगा। पर त्यागीजी तो सचमुच मेरे प्रति कृतज्ञ होने को उत्सुक थे। उन्होंने कहा, वैसे तो तीन रुपये का रेट अधिक नहीं है, पर

मन्त्री महोदय के सम्मान में होनेवाले डिनर में जो भी सज्जन पधारेंगे, वे सभी देशसेवक होंगे, अतः आपको कुछ और अधिक रियायत करनी चाहिये। आप भी इस डिनर-पार्टी में अवश्य शामिल हों। मन्त्री महोदय आप-जैसे सहृदय व्यक्ति से मिलकर अवश्य प्रसन्न होंगे। मैंने सोचा, मन्त्रिवर्ग से भेंट करने के लिये लोग सैकड़ों रुपया खर्च करते हैं। मुझे तो घर बैठे यह सुवर्णीय अवसर मिल रहा है, कि प्रान्त के एक आनरेबल मिनिस्टर साहब के साथ एक टेबल पर बैठकर भोजन करूं। मैंने त्यागीजी से कह दिया, रेट की आप फिकर न करें, जो मुनासिब समझें दे दीजियेगा। यह लिखने की आवश्यकता नहीं है, कि त्यागीजी ने तीस व्यक्तियों के स्पेशल डिनर के लिये मुझे कुछ नहीं दिया। इसकी आवश्यकता भी नहीं थी, और न मुझे इसकी कोई शिकायत ही है।

होटल मॉडर्न के विशाल लॉन्ज में मन्त्री महोदय की डिनर-पार्टी का प्रबन्ध किया गया। बटलर ने बड़े शौक से मेजों को सजाया, और खान-सामा ने तबियत के साथ डिनर तैयार किया। मांस, मच्छी, चिकन, पुलाव, पुडिंग, सूप, मिठाई, फल, चपाती, पूड़ी, शाक-सब्जी, रायते आदि सब प्रकार के सुस्वादु भोजन डिनर के लिये बनवाये गये। देशसेवकों और सत्या-ग्रही सैनिकों के अतिरिक्त रामनगर के अनेक धनी-मानी रईस और अफसर भी इस डिनर में शामिल हुए। डिनर समाप्त होने के बाद त्यागीजी ने सब निमन्त्रित सज्जनों का मन्त्री महोदय के साथ परिचय कराया। इस समय मैं कोई बहाना बनाकर बाहर चला गया था, क्योंकि परिचय की कवायद मुझे जरा भी पसन्द नहीं। डिनर खाकर और काफी पीकर सब सज्जन आरामकुर्सियों पर बैठ गये और बातचीत शुरू हुई। सब लोग मन्त्रीजी के [illegible] को बड़े ध्यान और श्रद्धा के साथ सुन [illegible] ी की चर्चा शुरू होने पर मन्त्रीजी ने [illegible] रा भी समझ नहीं। वे केवल अनाज से अपना पेट भरना चाहते हैं। विलायत में लोग खाने के

साथ रोटी के दो-तीन टुकड़े ले लेते हैं, वे मांस खाते हैं, फल खाते हैं, आलू खाते हैं, सब्जी खाते हैं। पर यहां तो लोग शाक-सब्जी, आलू या सालन को केवल व्यंजन के तौर पर खाते हैं। इन्हें कौन समझाये कि अनाज कम खाओ, दूसरी चीजें ज्यादा खाओ। मेरे दिल में आया, मन्त्री महोदय से कहूं, जनाब, अमीर लोग तो यहां भी अनाज के मुकाबले में फल, गोश्त, मिठाई और मेवे ज्यादा खाते हैं। पर इस देश के ८० फीसदी लोग तो ऐसे हैं, जो मुश्किल से एक-डेढ़ रुपये रोज की मजदूरी कर पाते हैं। इससे उन्हें अपना और अपने कुटुम्ब का पेट भरना पड़ता है। हमारे देश के गरीब लोग औसतन पांच-छः आने से अधिक खर्च एक व्यक्ति के भोजन पर नहीं कर सकते। आप ही बताइये, कि इन पांच छः आनों से वे गोश्त, मच्छी, फल या मेवे कैसे खरीदें ? बहुत से लोग तो ऐसे हैं, जो सूखी रोटी के साथ खाने के लिये प्याज या खटाई भी नहीं खरीद सकते, वे सब्जी से कैसे पेट भरें ? पर मैंने अपनी जबान को काबू में रखा। इस बीच में मन्त्री महोदय कहते जा रहे थे—मुझे तो हैरानी यह है, कि महात्मा गांधी ने ऐसे गधों की मदद से कैसे स्वराज्य ले लिया। जब इस देश में लाखों आदमी भूख से मर जावेंगे, तब इन्हें अपने भोजन को बदलने की सुध आयगी। मन्त्री महोदय की एक-एक बात पर त्यागीजी और वर्माजी का सिर झूम रहा था, उन्हें इनका एक-एक शब्द अमृत की बूंद के समान प्रतीत हो रहा था, जिसे अपने गले से नीचे उतारने के लिये वे अपने मुख को ऊपर उठाये बैठे थे। पर मैं यह सोच रहा था, कि गांधीजी ने कोई जादू तो किया नहीं था, उन्होंने जनता में जागृति उत्पन्न करके वह असाधारण जनशक्ति उत्पन्न कर दी थी, जिसके सम्मुख संसार की किसी भी ताकत के लिये ठहर सकना सम्भव नहीं था। पर आज कांग्रेस पार्टी के इन मन्त्री महोदय को उसी जनता में विश्वास नहीं रहा है, ये उसे 'गधा' कहने में भी संकोच नहीं करते। यदि देश के और लोग गधे हैं, तो ये मन्त्री कैसे घोड़े माने जा सकते हैं ? मुझे इस बात पर और भी अधिक आश्चर्य था, कि

जिनर पार्टी में शामिल हुए किसी देशसेवक या सत्याग्रही सैनिक को मन्त्री महोदय की यह बात बुरी नहीं मालूम हुई। शायद त्यागीजी और वर्माजी भी अब अपने को सर्वसाधारण जनता से ऊंचा व भिन्न समझने लग गये थे।

मन्त्री महोदय के विचारों का मैंने होटल में ठहरे हुए कुछ सज्जनों से जिक्र किया, क्योंकि भारतीय जनता को 'गधा' कहने की बात मेरे दिल में कांटे के समान चुभ रही थी। इन सज्जनों में एक श्री केशवसिंह ढिल्लन थे। मि० ढिल्लन मिर्जापुर जिले में ठेकेदारी का काम करते थे, और बहुत सम्पन्न व धनी व्यक्ति थे। उन्होंने कहा, मैं मन्त्रीजी को खूब अच्छी तरह जानता हूं। एक बार वे मिर्जापुर जिले का दौरा करते हुए आये थे, तब मैं उनसे मिला था। उन्हें शिकार का भी शौक है। मिर्जापुर जिले में जंगल बहुत हैं, वहां के कलेक्टर साहब ने शिकार का सब इन्तजाम कर दिया और मेरी चार मोटरें मन्त्री महोदय की सेवा में मांग ली गईं, ताकि उनकी मित्रमण्डली भी आराम के साथ जंगल में जा सके। घने जंगल में एक जगह आलीशान कैम्प डाल दिया गया। मैं भी इस शिकार-पार्टी में था। दिन को खाना खाते समय मन्त्री महोदय की इच्छा दही खाने की हुई। जंगल में दही कहां से मिलती? पर कलेक्टर साहब यह कैसे गवारा करते, कि मन्त्री साहब दही-जैसी मामूली चीज की फरमाइश करें, और वह उन्हें न मिल सके। उसी समय एक मोटर-ड्राइवर को बुलाया गया, और उसे हुकुम दिया गया, कि मिर्जापुर जाकर दही खरीद लाये। मिर्जापुर वहां से ७५ मील था, जंगल का रास्ता था। ५० मील प्रति घण्टा की चाल से मोटर भगाकर ले जाई गई, और साढ़े तीन घण्टे में बढ़िया दही का एक पूरा कुण्डा जंगल के कैम्प में पहुंचा दिया गया। शाम के भोजन में मन्त्री महोदय की सेवा में दही का भी एक प्याला पेश हो गया, जिसे देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। मन्त्री महोदय के लिये पाव भर दही का इन्तजाम करने के वास्ते आठ गैलन पेट्रोल फूंक दी गई, और ये दिन

दे थे, जब जनता एक-एक गैलन पेट्रोल के लिये तरसा करती थी। जब मन्त्री महोदय के एक इशारे पर पचासों रुपये दही-जैसी चीज के लिये खर्च किये जा सकते थे, तो वे उन गरीबों की हालत को कैसे समझ सकते थे, जिन्हें सूखी रोटी से अपने पेट को भरने के लिये विवश होना पड़ता है।

## (१८)

## स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज

जून का महीना था, और रामनगर में खूब चहल-पहल हो गई थी। होटलों में जगह नहीं रही थी, कोठियां भी किराये पर चढ़ गई थीं। देश की गरमी से व्याकुल होकर वे सब लोग पहाड़ों पर आ गये थे, जिनकी जेब में पैसा था, और जिन्हें आराम करने की फुरसत थी। जहां बड़े रईस, ताल्लुकेदार, राजा, नवाब, सरकारी अफसर और वकील बड़ी संख्या में रामनगर आ गये थे, वहां कुछ सन्त-महात्मा भी इस समय इस पहाड़ी नगर में गरमी से बचने और विश्राम करने के लिये पधार गये थे। जब लखनऊ या दिल्ली से रईस या बड़े लोग रामनगर, मसूरी या नैनीताल चले आते हैं, तो उनके साथ ही वहां के बड़े डाक्टर भी इन नगरों में आ जाते हैं। इन स्थानों पर भी तो बड़े आदमियों को डाक्टर चाहियें। इसी तरह बड़े आदमियों के साथ-साथ अनेक सन्त-महात्मा भी पहाड़ों पर चले आते हैं, क्योंकि इन बड़े लोगों की आध्यात्मिक भूख को शान्त करने की भी तो कोई व्यवस्था होनी चाहिये।

१५ जून को सायंकाल जब मैं घूमने निकला, तो देखा कि रामनगर के बाजार में जगह-जगह पर बड़े-बड़े द्वार बनाये गये हैं, और इन्हें फूलों, पत्तियों और बन्दरवारों से अच्छी तरह सुशोभित किया गया है। पूछने पर मालूम हुआ, कि कल सुबह स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज राम-

नगर पधार रहे हैं, और उन्हीं के स्वागत के लिये यह सब धूमधाम हो रही है । स्वामीजी कल सुबह दस बजे मोटर से रामनगर पहुंचेंगे, और उन्हें जलूस में उनके निवास-स्थान पर ले जाया जायगा। सेठ बंसीलाल की कोठी में स्वामीजी के ठहरने का प्रबन्ध किया गया है, और वे रामनगर में दो मास के लगभग निवास करेंगे । मैंने स्वामी सच्चिदानन्दजी का नाम पहले कभी नहीं सुना था । लोगों ने बताया, कि वे काशी के एक बहुत बड़े मठ के महन्त हैं, पहुंचे हुए साधु हैं, संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् हैं, और भारतीय दर्शनों के अगाध पण्डित हैं। उन्हें बहुत-सी सिद्धियां भी प्राप्त हैं। एक बार उनके किसी भक्त के घर विवाह था । ख़याल यह था, कि बरात में सौ आदमी होंगे । सौ के लिये ही भोजन का प्रबन्ध किया गया था । पर जब बरात जीमने के लिये पहुंची, तो उसमें एक हजार से कम बराती नहीं थे । लड़कीवाला घबरा गया, इतने आदमियों के भोजन का प्रबन्ध कैसे हो सकेगा। वह भागा-भागा स्वामीजी के पास गया और अपनी समस्या उनके सम्मुख उपस्थित की । स्वामीजी ने कहा, जो भोजन पका रखा है, उसे एक जगह रखकर ऊपर चादर ढंक दो । चादर के नीचे से भोजन लेकर बरात को जिमाते रहो । लड़कीवाले को स्वामीजी पर अगाध विश्वास था, उसने यही किया। बरात जीमने बैठ गई, भोजन की कमी नहीं हुई, सबने खूब पेट भर खाया, और बरात के जीम लेने पर जब चादर उठाई गई, तो सौ आदमियों का भोजन वहां मौजूद था । इसी ढंग के बहुत-से चमत्कारों की कथाएं स्वामीजी के विषय में रामनगर में फैली हुई थीं। लोग कहते थे, कलियुग हुआ तो क्या हुआ, अब भी भारत में ऐसे-ऐसे महात्मा विद्यमान हैं, जो चाहें तो सूरज को पश्चिम से उगा सकते हैं, निर्धन को क्षण भर में धनी बना सकते हैं, और अपने भक्तों को साक्षात् भगवान् का दर्शन करा सकते हैं । १६ जून को स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज का जलूस बड़ी धूमधाम से निकला । आगे बैण्ड बाजा बजता चलता था । स्वामीजी एक सजी हुई मोटरकार पर बैठे हुए अपने भक्तों को दर्शन

दे रहे थे, और पीछे-पीछे हजारों नर-नारियों की भीड़ जयजयकार करती हुई चल रही थी ।

मैंने सोचा, ऐसे सिद्ध महात्मा के दर्शन मुझे भी अवश्य करने चाहियें। मुझे न आध्यात्मिकता से रुचि है, और न साधु-महात्माओं के प्रति भक्ति। फिर भी मैंने सोचा, कि एक चमत्कारी साधु के दर्शनों के इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। १८ जून को सुबह मैं सेठ बंसीलालजी की कोठी पर आ पहुंचा। कोठी के प्रवेश-द्वार पर एक बड़ा साइनबोर्ड लगा था, जिस पर लिखा था—"योगीराज महामण्डलेश्वर पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज"। बोर्ड हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में था, ठीक उसी ढंग से जैसे कि कपड़े या जनरल मर्चेन्ट्स की दूकान पर रहता है। इस बोर्ड को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। एक वीतरागी सिद्ध महात्मा को इस ढंग के बोर्ड की क्या आवश्यकता है? मैं अन्दर चला गया। जैसे किसी दूकान पर जाने में किसी को संकोच नहीं होता, वैसे ही मुझे भी सेठजी की कोठी में जाने में संकोच नहीं हुआ। अन्दर जाने पर मालूम हुआ, स्वामीजी के दर्शन का यह समय नहीं है। वे सायंकाल ६ से ८ बजे तक जनता को दर्शन देते हैं। मेरे कपड़ों को देखकर स्वामीजी के एक शिष्य ने मुझसे पूछा—क्या आप कहीं दूर से आये हैं? मैंने उत्तर दिया—नहीं, मैं तो रामनगर का ही निवासी हूँ। बाद में मुझे मालूम हुआ, कि यदि कोई व्यक्ति कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि दूरवर्ती स्थान से आया हो, तो स्वामीजी अन्य समय में भी उसे दर्शन दे देते हैं। क्योंकि मैं रामनगर का ही निवासी था, अतः शिष्य महोदय ने मुझे कह दिया, कि आप ६ बजे सायंकाल दर्शन करने के लिये आवें। दो-चार मिनट तक सेठ बंसीलाल-जी के विशाल प्रासाद की सुन्दर फुलवारी से अपनी आंखों को तृप्त कर मैं वापस लौट आया, पर चलते-चलते यह जरूर कह आया, कि जब आप लोगों ने स्वामीजी का इतना बड़ा बोर्ड लगाया है, तो एक बोर्ड पर यह भी लिख देना था—'दर्शन का समय ६ से ८ तक था। [illegible]

नियत करके ।' डाक्टर-वैद्य आदि प्रायः इस ढंग के बोर्ड लगाये रहते हैं, और इसीलिये किसी बीमार को उनसे शिकायत की गुंजाइश नहीं होती। पर स्वामीजी के शिष्य को मेरी बात समझ में नहीं आई। ठीक भी है, सिद्ध महात्माओं के दर्शन के लिये भक्त लोग हिमालय की कन्दराओं में भटकते फिरते हैं, घोर तपस्या और साधना के बाद उनके दर्शनों का सौभाग्य मिलता है। स्वामीजी महाराज तो अपने भक्तों पर अनुकम्पा करके स्वयं रामनगर जैसे शहर में आ गये थे, ताकि श्रद्धालु भक्तों को उनके पीछे भटकने की जरूरत न रहे। इस हालत में यदि किसी को सुबह दर्शन करने के लिये आने पर निराश होकर लौट जाना पड़े, तो इसमें शिकायत की क्या बात थी?

एक बार निराश होकर मैं शायद फिर स्वामीजी के दर्शन के लिये दो मील चलने का कष्ट न करता, पर मेरे होटल में कुछ ऐसे भद्र पुरुष व महिलायें ठहरी हुई थीं, जो स्वामीजी की परम भक्त थीं। स्वामीजी के अगाध पाण्डित्य, आध्यात्मिक शान्ति, चामत्कारिक शक्ति व अनुपम प्रभाव का वर्णन करते-करते इनकी जिह्वा नहीं थकती थी। ये महिलायें मुझे कहती थीं, स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज उन हजारों-लाखों साधुओं में नहीं हैं, जिनके कारण भारत के साधु-महात्मा बदनाम हो गये हैं, वे तो सच्चे वीतराग संन्यासी हैं, उनके मुखमण्डल पर अद्भुत तेज है, उनके पास दो क्षण तक बैठने पर अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। एक बार दर्शन करके तो देखो, आपके सब संशय मिट जावेंगे। एक महिला पाण्डिचेरी के अरविन्द-आश्रम में भी रह आई थीं, उन्होंने रमनमहर्षि के भी दर्शन किये थे और देहरादून में माता आनन्दमयी का भी सत्संग किया था। ये मुझे कहती थीं, मुझे जो शान्ति स्वामी सच्चिदानन्दजी के पास मिली है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिली। मैंने सोचा, किसी ने ठीक कहा है, 'घर आया नाग न पूजिये, बांबी पूजन जाय।' लोग तो महात्माओं के दर्शन के लिये पाण्डिचेरी और तिरुवन्नमलै आदि दूर-दूर स्थानों पर जाते हैं, हिमालय के

बदरिकाश्रम आदि के चक्कर काटते हैं, स्वामीजी तो रामनगर आये हुए हैं, क्यों न एक बार फिर मैं उनके पास हो आऊं ? शायद स्वामीजी की अध्यात्मशक्ति ही मुझे उनकी ओर खींच रही थी । उपनिषद् का यह वाक्य मुझे याद आ रहा था—'यमेवैष वृणुते, तेन लभ्यः' ।

२४ जून को मैं फिर सेठ बंसीलालजी की कोठी पर गया । वहां दर्शनार्थियों की भीड़ लगी हुई थी, इन लोगों में सभी धनी व सम्पन्न थे । बड़े-बड़े रईस, जमींदार और प्रतिष्ठित व्यक्ति वहां मौजूद थे । रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियों में सजी हुई महिलायें अच्छी बड़ी संख्या में वहां उपस्थित थीं । रामनगर में गरीबों की कमी नहीं है, वहां हजारों ऐसे कुली सदा रहते हैं, जो वर्षा और शीत से अपने तन की रक्षा करने के लिये फटे हुए बोरे का प्रयोग करते हैं । ऐसा कोई कुली मैंने स्वामीजी के दर्शनों के लिये सेठ बंसीलालजी की कोठी पर नहीं देखा । मुझे खयाल आया, जब मनुष्य की भौतिक क्षुधा शान्त हो जाती है, तभी उसकी आध्यात्मिक भूख जागृत होती है । भूखे-नंगे लोग रोटी-कपड़े की फिकर करें, या आध्यात्मिक शान्ति की । या अधिक सच्ची बात यह है, कि जैसे कुछ डाक्टर लोग केवल अमीरों का इलाज करते हैं, और गरीब लोग किसी नीम हकीम से हरड़-बहेड़े का नुस्खा बनवाकर उसी से अपना इलाज करा लेते हैं, वैसे ही अमीरों की आध्यात्मिक भूख को शान्त करने के लिये सम्पन्न साधु होते हैं, और गरीब लोग किसी फटे चीथड़े से ढंके हुए सन्त-बाबा के पास बैठकर ही अपनी आध्यात्मिक आवश्यकता को पूर्ण कर लेते हैं ।

ठीक छः बजे स्वामीजी के दर्शन के लिये द्वार खोल दिया गया था । मैं कुछ देर में पहुंचा था, और अनेक व्यक्ति मुझसे पहले ही स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हो चुके थे । जूते उतारकर मैं भी अन्दर गया, और चुपचाप एक कोने में जाकर बैठ गया । जिस कमरे में स्वामीजी विराजमान थे, वह बहुत विशाल था, लम्बाई में ५० फुट और चौड़ाई में ३० फुट के लगभग । फर्श पर मोटे-मोटे गलीचे बिछे हुए थे और बीच में एक ऊंचे

सिंहासन पर स्वामीजी चौकड़ी मारकर बैठे हुए थे । सिंहासन सोने का बना था, और उस पर कीमती मखमल जड़ा था। ऊंचे सिंहासन पर आरूढ़ होने के लिये एक छोटी चौकी नीचे रखी थी, जो चांदी की बनी थी। स्वामी-जी की खड़ाउएं चौकी पर रखी थीं, और भक्तजनों ने उन्हें पुष्पमालाओं से ढंक दिया था। सिंहासन को सजाने के लिये कागज के फूल प्रयुक्त किये गये थे। उन्हें देखकर मुझे हरिद्वार के एक मन्दिर का स्मरण हो आया, जिसमें राधाकृष्ण की मूर्ति के नीचे सजावट के लिये सलालेट के छोटे-छोटे जापानी खिलौने रखे हुए थे। सोने का सिंहासन, उस पर मखमली गद्दी, पर सजावट विलायती कागज के सस्ते फूलों की ? स्वामीजी के भक्तों की सुरुचि का क्या अच्छा उदाहरण था ? पर स्वामीजी को इन लौकिक बातों से क्या मतलब ? वे तो वीतरागी महात्मा थे। सोने के सिंहासन पर वे केवल इसलिये बैठते थे, क्योंकि यह उनके मठ की परम्परा थी। मठ के पुराने महन्तों ने जो मर्यादा स्थापित की थी, उसे कायम रखना उनका पुनीत कर्तव्य था। स्वामीजी ने बढ़िया पशमीने का गेरुए रंग का शाल ओढ़ा हुआ था और उनकी धोती गेरुए रेशम की थी। भक्त लोगों ने मुझे बताया था, कि स्वामीजी की आयु ९० साल के लगभग है, पर उनके चेहरे को देखकर उनकी आयु ६० साल से अधिक की प्रतीत नहीं होती थी। यह शायद उनके संयम और तपस्यामय जीवन का परिणाम था, कि ९० साल की उम्र में भी उनके चेहरे पर एक भी झुर्री नजर नहीं आती थी और उनके बाल भी अभी तक पूरी तरह सफेद नहीं हुए थे। इसमें सन्देह नहीं, कि स्वामीजी की आकृति प्रभावजनक थी। पर यह प्रभाव [illegible] उनकी आध्यात्मिक शक्ति के कारण था या उनके सम्पन्न जीवन के [illegible]। मैंने देखा, कि जो लोग मेरे बाद स्वामी-जी के दर्शन के लिये आये, उन्होंने उनके सामने लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया, भद्र पुरुषों ने भी और [illegible] महिलाओं ने भी। वे पहले स्वामी-जी को साष्टांग प्रणाम करते थे, और फिर एक पुष्पमाला [illegible]

को खड़ाऊं पर मढ़ा देते थे। मैंने सोचा, इस जागृत देवता के दर्शनों का यही ढंग है। जब भक्तजन किसी मन्दिर में देवता की मूर्ति के दर्शन के लिये जाते हैं, तो उसके सम्मुख भी दण्डवत् प्रणाम करते हैं। यहां तो इस विशाल भवन में एक जीवित जागृत देवता सशरीर विद्यमान हैं, तब उन्हें दण्डवत् प्रणाम क्यों न किया जाय। मैंने सोचा, मैं तो बिना दण्डवत् किये चुपचाप एक कोने मे बैठ गया था। यहां की भक्तमण्डली सोचती होगी, यह कौन अनाड़ी मूर्ख आज स्वामीजी के दर्शन के लिये आ गया है।

स्वामीजी केवल दर्शन ही नहीं दे रहे थे, अपितु कुछ प्रवचन भी कर रहे थे। मैंने उन्हें यह कहते हुए सुना—दुःख तो मैंने कभी अनुभव किया ही नहीं, सुख में मझे आसक्ति नहीं है। सब दुःखों का मूल यह संसार है, जब मैं संसार के झंझटों में पड़ा ही नहीं, तो मुझे दुःख कहां से होना? झंझट से बढ़कर बुरी कोई चीज नहीं। यदि मुझे स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति के लिये भी झंझट करना पड़े, संघर्ष करना हो, तो मैं उसे हेय मानूंगा। दुनिया के झगड़ों को छोड़ दो, तुम दुःख से मुक्त हो जाओगे। दुःख से छुटकारा पाने का केवल यही एक उपाय है। स्वामीजी के सब भक्त स्वामीजी के मुखारविन्द से निकलती हुई इस अमृतधारा का आस्वाद लेकर सन्तोष और भक्ति से अपने सिर झुमा रहे थे। वे एक-एक वाक्य पर हाथ जोड़ते, सिर झुकाते और मन्द स्वर में धन्य-धन्य कहते। पर मैं सोच रहा था, स्वामीजी को यदि स्वयं दुःख का अनुभव नहीं हुआ, तो क्या उन्हें अपने चारों ओर के लाखों-करोड़ों नर-नारियों के दुःख की भी कभी अनुभूति नहीं हुई? भगवान् कृष्ण ने कहा था—"न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।" (न मुझे राज्य चाहिये, न स्वर्ग और न मोक्ष। मैं तो केवल यह चाहता हूं, कि दुःख से पीड़ित प्राणियों के क्लेश का विनाश कर सकूं।) ये वीतराग स्वामीजी क्योंकर अनुभव नहीं करते, कि लाखों नर-नारी दुःख से पीड़ित हैं, और उनके दुःख को दूर करने का प्रयत्न करना ही एक महात्मा का परम कर्तव्य

है । स्वामीजी संसार को छोड़ देने का उपदेश कर रहे हैं, पर यदि सभी लोग उनके उपदेश का अनुसरण कर संसार के झंझटों को छोड़ दें, तो कौन अनाज पैदा करेगा, कौन कपड़े बनायेगा, कौन स्वामीजी के शरीर के लिये पशमीने का शाल और रेशम की धोती तैयार करेगा ? शायद स्वामीजी ठीक कहते थे । दुनिया में बेवकूफों की कमी नहीं है, करोड़ों नर-नारी तो मूर्खता और नासमझी के कारण सदा ही सांसारिक झंझटों में फंसे ही रहेंगे । जो समझदार हों, उन्हें वस्तुतः ऐसा इन्तजाम करना चाहिये, कि बिना मेहनत किये उन्हें अच्छे से अच्छा भोजन खाने को मिलता रहे, और बढ़िया से बढ़िया कपड़े पहनने के लिये । सन्त मलूकदासजी ने क्या ठीक कहा था--"अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम । दास मलूका कह गये, सबके दाता राम ।" जब भगवान् सबका पालन करनेवाले हैं, तो क्यों कोई मनुष्य मेहनत करे, क्यों कोई नौकरी करे ? स्वामीजी महाराज तो कोई मेहनत-मजदूरी नहीं करते, उनके शिष्य भी इन सांसारिक झंझटों से ऊपर उठे हुए हैं । जब इनका निर्वाह उस ढंग से हो रहा है, जैसे कि बड़े-बड़े रईसों का नहीं होता, तो दुनिया के झंझटों से ऊपर उठ जाने में ही मनुष्य का कल्याण है । स्वामीजी महाराज और उनकी शिष्य-मण्डली के शान्त, प्रसन्न और सुखमय जीवन को देखकर मैं सोच रहा था, पुराने जमाने में जो लाखों नवयुवक गृहस्थ-जीवन को लात मारकर बौद्ध भिक्खु, जैन मुनि या संन्यासी बन जाते थे, वह इसी कारण कि उन्हें दुनिया के कष्टमय संघर्ष से बचकर भी आराम से जीवन बिताने का मौका मिल जाता था । पर यदि सभी लोग उनके समान समझदार या तत्त्वज्ञानी बन जाते, तो फिर क्या होता ? फिर कहां से कपड़े आते और कहां से भोजन ? शायद इसीलिये आचार्य चाणक्य को यह व्यवस्था करने की आवश्यकता हुई थी, कि "जब तक कोई आदमी मजिस्ट्रेट (धर्मस्थ) से यह सर्टिफिकेट न ले ले, कि अब उसमें सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रही है, और उसने अपने कुटुम्ब के प्रति सब कर्तव्यों का पालन कर लिया है, तब तक वह दुनिया के

झंझटों को छोड़कर संन्यास व भिक्खु-व्रत को ग्रहण न कर सके ।" यदि आचार्य चाणक्य का यह कानून अब तक भी जारी होता, तो न स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज बचपन में घर से भागकर संन्यासी बन सकते, और न उनके युवक शिष्य ही आज गेरुए वस्त्र पहनकर मौज, निश्चिन्तता और समृद्धि का जीवन बिता सकते ।

दस-बारह मिनट में ही मैं स्वामीजी के दर्शनों से तृप्त हो गया । मैं चुपचाप उठ गया, और धीरे से बाहर चला आया । लौटते हुए जहां मेरे कानों में स्वामीजी के शब्द गूंज रहे थे, वहां साथ ही मेरा मन भी बहुत उद्विग्न था । मैं सोच रहा था, महात्मा गांधी ने भारत के करोड़ों नर-नारियों का अर्तनाद सुना था । उसे सुनकर उन्होंने अपने वैभवपूर्ण जीवन को लात मार दी थी, और स्वराज्य के लिये संघर्ष करने का एक नया झंझट मोल ले लिया था । गांधीजी ने ठीक रास्ता पकड़ा था या स्वामी सच्चिदानन्द जी के मार्ग का अनुसरण कर उन्हें व्यर्थ के झंझटों और संघर्ष से दूर रहना चाहिये था ? भगवान् कृष्ण ने उपदेश किया था—"सुख और दुःख, लाभ और हानि, जय और पराजय को समान दृष्टि से देखते हुए हृदय में हिम्मत धारण कर युद्ध (संघर्ष) में जुट जाओ ।" भगवान् कृष्ण ठीक रास्ते पर थे, या वह मार्ग ठीक है, जिसका उपदेश स्वामी सच्चिदानन्दजी कर रहे थे ? ऋषि दयानन्द ने अनाथों का, विधवाओं का, [illegible] जनता का अर्तनाद सुनकर हरिद्वार में पाखण्ड-खण्डिनी पताका खड़ी की थी, और वीतराग संन्यासियों के समान हिमालय की किसी कन्दरा में तपस्या करना छोड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर इसलिये भटकना शुरू किया था, ताकि वे जनता को सच्चे धर्म का उपदेश दे सकें, समाज की नई व्यवस्था कायम कर सकें और लोगों के दुःखों को दूर कर सकें । ऋषि दयानन्द सही रास्ते पर थे या स्वामी सच्चिदानन्दजी का मार्ग सही है, जिसके अनुसार मनुष्य को दुनिया के झंझटों और संघर्ष से परे रहकर अपना जीवन बिताना चाहिये ?

यह सम्भव है, कि स्वामी सच्चिदानन्दजी के उपदेश का असली अभिप्राय मैंने न समझा हो। पर मैं यह अवश्य कहूंगा, कि जिस ढंग का सुखमय जीवन स्वामीजी व उनके शिष्य बिता रहे थे, वह मुझे जरा भी प्रभावित नहीं कर सका। यदि किसी भी गरीब दुःखी या पीड़ित आदमी ने स्वामीजी की शरण में जाकर शान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। उनकी भक्तमण्डली में केवल वे लोग थे, जिनके पेट भरे हुए थे, जो धनी और समृद्ध थे। जब तक दुनिया में धनपतियों की सत्ता है, ऐसे साधु-महात्माओं की भी उपयोगिता है, जो सोने के सिंहासन पर बैठते हों, पशमीने का शाल ओढ़ते हों, फूलों के रस से अपनी प्यास को शान्त करते हों, और जिनका भोजन बनाने के लिये काली गाय के दूध का घी खास तौर पर एकत्र किया जाता हो। वस्तुतः समाज में अमीरों और गरीबों के दो पृथक् वर्ग होते हैं। धनपतियों के मन्दिर अलग होते हैं, उनके देवता अलग होते हैं, और उनके सन्त-महात्मा भी अलग होते हैं, उनका भगवान् भी शायद गरीबों के भगवान् से अलग होता है। गरीब लोग तो स्वामी सच्चिदानन्दजी महाराज जैसे महात्माओं के दर्शन भी नहीं कर सकते थे। उनके मन्दिर के पट तो केवल धनपतियों के लिये खुलते थे।

कुछ दिन बाद रामकली नाम की एक महिला होटल मॉडर्न में ठहरने के लिये आई [illegible] क प्रसिद्ध वकील थे। रामकलीजी भी अत्यन्त [illegible] थीं। शीघ्र ही मेरा उनके साथ परिचय हो गया। उन्होंने मुझे बताया, कि रामनगर आने का उनका केवल यह उद्देश्य है, कि वे स्वामीजी महाराज के दर्शन करें। एक सुसंस्कृत युवती की स्वामीजी के प्रति इतनी अधिक भक्ति हो सकती है, यह मेरे लिये आश्चर्य की बात थी। उनके आग्रह से मैं एक बार और स्वामी सच्चिदानन्दजी के निवास-स्थान पर गया। श्रीमती रामकलीजी मेरे साथ थीं। उन्होंने पहले स्वामीजी को दण्डवत् प्रणाम किया। फिर उनके चरण

पादुका पर फूल चढ़ाये। इसके बाद पादुका की आरती की। आरती के समय स्वामीजी ठीक उस प्रकार अपने सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान थे, जैसे कोई देवमूर्ति प्रतिष्ठित हो। न स्वामीजी ने रामकालीजी के प्रणाम का उत्तर दिया, न आरती करने पर आशीर्वाद देने की आवश्यकता अनुभव की। पर रामकालीजी को इससे कोई शिकायत नहीं थी। वे स्वामीजी का दर्शन करके, उनकी चरणपादुका की आरती उतारकर अपने को धन्य समझ रही थीं। स्वामीजी के विषय में बात करते हुए वे उन्हें 'भगवान्' कहती थीं। उनकी भक्ति को देखकर मैं सोचता था, क्या मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति इस प्रकार श्रद्धा रखना स्वाभाविक व उचित है? पर जब मनुष्य पत्थर की मूर्ति में सर्वशक्तिमान् भगवान् की कल्पना कर सकता है, तो एक जीवित-जागृत चेतन मनुष्य में भगवान् की छाया देख सकने में कौन-सी अद्भुत बात है?

रामनगर में होटल मॉडर्न का संचालन करते हुए मैं कुछ अन्य महात्माओं के भी सम्पर्क में आया। काठियावाड़ की एक छोटी-सी रियासत की महारानी साहिबा कुछ दिन के लिये मेरे होटल में आकर ठहरीं। उनके साथ एक योगीराज भी आये थे, जिनका नाम कुवलयानन्द था। पतले इकहरे बदन के योगीराज कुवलयानन्द एक नौजवान आदमी थे, सिर पर जटाजूट और लम्बी काली दाढ़ी उनके भव्य चेहरे की शोभा बढ़ाती थी। महारानी साहिबा के साथ ही योगीराज भी होटल मॉडर्न के एक अलग कमरे में ठहर गये। मैं उन्हें देखकर सोचा करता था, जैसे महारानीजी को सेक्रेटरी, कम्पेनियन, बेयरा और खिदमतगार की जरूरत है, वैसे ही उन्हें एक ऐसा व्यक्ति भी चाहिये, जो उनकी मानसिक यातना को दूर करने में सहायक हो सके। महारानी साहिबा अपने पति द्वारा परित्यक्ता थीं। महाराजा साहब ने एक इटालियन युवती के फेर में पड़कर उसके साथ विवाह कर लिया था, और वे अब अपनी जूनियर महारानी के साथ अमेरिका की सैर कर रहे थे। सीनियर महारानी साहिबा के

पास रुपये की कमी नहीं थी, पर इससे उनकी मानसिक यातना तो दूर नहीं होती थी। इसके लिये उनके सम्मुख दो ही मार्ग थे, या तो वे भी किसी अन्य पुरुष का प्रेम प्राप्त कर उसके साथ मौज-बहार में लग जातीं, और या भगवान् के प्रेम में लीन होकर आध्यात्मिक सुख का आनन्द उठातीं। उन्होंने दूसरे मार्ग को ग्रहण किया। योगीराज कुवलयानन्द को उन्होंने अपना गुरु मान लिया। वे उन्हें सगुण ब्रह्म की भक्ति और उपासना का उपदेश करने लगे—"संसार में वस्तुतः एक ही पुरुष है, वह पुरुष भगवान् है, जब वे परमपुरुष कृष्ण के रूप में अवतरित हुए, तो व्रजभूमि की सब स्त्रियां उनकी गोपियां बन गईं। वह स्त्री धन्य है, जो इस परम पुरुष के प्रेम में अपने पति तक को भूल जाय।" इसमें सन्देह नहीं, कि योगीराज के उपदेश से महारानी साहिबा को सान्त्वना मिलती थी। जब योगीराज कुवलयानन्द अपने लम्बे काले केशों को खोलकर, दाढ़ी-मूंछ में कंघी करके और बारीक गेरुए रेशमी वस्त्र पहनकर बैठते थे, तो परम पुरुष के पौरुष की झलक उनमें भी अभिव्यक्त होने लगती थी, और उनके कृष्णकन्हैया के से रूप को देखकर महारानी साहिबा निहाल हो जाती थीं। योगीराज को सुख-समृद्धि की कोई कमी नहीं थी। वे मोटर पर सैर करते, बढ़िया कपड़े पहनते और त्याग व तपस्या का उपदेश करते थे। वे कहते थे—"यह सांसारिक जीवन केवल माया है, इसके जंजाल से छूटकर जो लोग त्याग-तपस्या का जीवन बिताते हैं, वे ही वास्तविक आनन्द को प्राप्त करते हैं।" उनके उपदेश में मुझे सचाई का अनुभव होता था। मैं सोचता था, जो लोग गृहस्थ के जाल में फंसे हैं, बच्चों के पालन-पोषण में तत्पर हैं, रुपया कमाने के लिये संघर्ष कर रहे हैं, उनको वह सुख कहां, जो योगीराज कुवलयानन्द और स्वामी सच्चिदानन्द को प्राप्त है। मुझसे एक दिन योगीराज ने कहा, मेरे जीवन का अधिकांश भाग हिमालय की कन्दराओं में व्यतीत हुआ है। हिमालय के शिखरों पर मैंने वर्षों तक तपस्या की है। आप मेरी आग [illegible] आप [illegible] आयु का [illegible]

होंगे ? पर इससे अधिक समय तो मैं योगाभ्यास में बिता चुका हूं। काठिया-वाड़ के कितने ही राजा-महाराजा मेरे शिष्य हैं। अब मैं परोपकार में अपना शेष जीवन बिता रहा हूं। मेरी यही इच्छा है, कि लोग मानव-जीवन के असली उद्देश्य को समझें, वे माया-जाल को तोड़कर मोक्ष की प्राप्ति के लिये तत्पर हों।

यह ठीक है, कि महारानी साहिबा को परम पुरुष के प्रेम में मस्त रहने का उपदेश परोपकार ही था। पर क्या योगीराज कुवलयानन्द अपने परोपकार का क्षेत्र उन गरीबों की झोंपड़ियों को नहीं बना सकते थे, जो शारीरिक व्याधि और मानसिक आधि दोनों के ही शिकार थे, जिनके लिये पेट भर भोजन और तन ढंकने के लिये कपड़ा भी प्राप्त नहीं होता था ? पर इनकी ओर तो योगीराज का ध्यान ही नहीं जाता था। मैंने एक दिन योगीराज से कहा—"संसार में मुझे तो सबसे बड़ी समस्या गरीबी की प्रतीत होती है। ये जो लाखों-करोड़ों नर-नारी भूख से हाहा-कार कर रहे हैं, इन्हें जब तक पेट भर भोजन नहीं मिलेगा, ये आध्यात्मिक बातों की ओर ध्यान ही कैसे दे सकेंगे ?" पर योगीराज को मेरी बात समझ नहीं आई। वे कहने लगे—"प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों का फल प्राप्त कर रहा है। पूर्वजन्म के सुकृतों के कारण कोई आज राजा है, और कोई अपने पापों के कारण रंक है। सबको अपने-अपने भाग्य के अनुसार सुख-दुःख उठाना है। इसमें मनुष्य का वश ही क्या है ?" मेरी इच्छा थी, कि मैं योगी राज से कहूं, कि इसी भाग्यवाद ने भारत को इस अधोगति तक पहुंचा दिया है। आप-जैसे महात्मा बिना कोई मेहनत किये अच्छे से अच्छे भोजन वस्त्र व अन्य सांसारिक सुख प्राप्त करना चाहते हैं, और इसीलिये आप महारानियों और सेठों के साथ रहते हैं। कर्मफल और भाग्य की बात कह कर आप सर्वसाधारण जनता को अन्धकार में रखना चाहते हैं। पर अब यह हालत देर तक कायम नहीं रह सकेगी। धीरे-धीरे मानव जाग रहा है, और अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करने लगा है। अब वह समय

दूर नहीं है, जब न कोई राजा रहेगा न कोई रंक, पेट भरने के लिये सब को मेहनत करना अनिवार्य होगा । पर योगीराज मेरे होटल में मेहमान थे, मैं उनका हृदय नहीं दुखाना चाहता था । मैंने अपने विचार उनके सम्मुख नहीं कहे ।

## (१९)

## प्रोफेसर रामचरण और डाक्टर मालती शुक्ला

जून के महीने में जो बहुत-से मेहमान होटल मॉडर्न में ठहरे, उनमें प्रोफेसर रामचरण और डाक्टर मालती शुक्ला ने मुझे विशेष रूप से आकृष्ट किया । श्री रामचरण शुक्ला आगरा के एक कालिज में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे । उनकी पत्नी डाक्टर मालती एम० बी० बी० एस० पास थीं, और प्राइवेट प्रैक्टिस करती थीं । उनके तीन बच्चे थे, जिनकी आयु क्रमशः सात, पांच और दो साल की थी । बच्चों की देखभाल के लिये उनके साथ एक आया थी, और खिदमतगारी के लिये एक पहाड़ी नौकर । मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ, कि प्रोफेसर रामचरण और डाक्टर मालती एक कमरे में ठहरे हुए होने पर भी एक दूसरे से अलग रहते थे । मैंने उन्हें कभी एक साथ घूमने जाते हुए नहीं देखा । भोजन के समय भी वे बहुधा अलग मेजों पर बैठते थे । मुझे इस परिवार के जीवन में कुछ विचित्रता नजर आती थी, और यही कारण है, कि उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने का मेरा कौतूहल निरन्तर बढ़ता गया । कभी-कभी प्रोफेसर शुक्ला मेरे पास आ बैठते थे । अपने एकाकी और शून्य जीवन में मेरा संग उन्हें बड़ा अच्छा लगता था । यही कारण है, कि मेरे साथ उनकी घनिष्ठता निरन्तर बढ़ती गई । वे खुलकर मुझसे अपने पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में बात करने लगे । डा० मालती को भी मुझसे बात करने में संकोच नहीं होता था । मर्दों से मिलने-जुलने का उन्हें अच्छा अभ्यास था, और वे अपने विषय में बहुधा मुझसे बात किया करती थीं ।

आर्थिक दृष्टि से प्रोफेसर शुक्ला को कोई कष्ट नहीं था। उन्हें ६०० रुपया मासिक वेतन मिलता था। मैट्रिक और इन्टर की अंग्रेजी की टेक्स्ट-बुकों पर उन्होंने नोट लिखे थे, जो विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी थे। वे अच्छी बड़ी संख्या में बिकते थे, और इनसे उन्हें खासी आमदनी हो जाती थी। कई यूनिवर्सिटियों के अंग्रेजी के पर्चे भी उनके पास मार्किंग के लिये आते थे, और इससे भी उनकी आमदनी में सहायता मिलती थी। सब मिलाकर उन्हें १२०० रु० मासिक के लगभग पड़ जाता था। डाक्टर मालती की प्रैक्टिस अच्छी चलती थी। उनकी आय अपने पति के मुकाबले में कुछ अधिक ही थी। रोगियों को विजिट करने के लिये उन्होंने एक मोटर-कार भी खरीद ली थी, जो प्रधानतया डा० शुक्ला के ही काम आती थी। रुपये-पैसे के लिहाज से इस परिवार को कोई कमी नहीं थी, पर प्रोफेसर रामचरण अपने दाम्पत्य जीवन से सन्तुष्ट नहीं थे। जब वे थके-मांदे कालिज से घर लौटते, तो उनकी इच्छा होती, कि मिसेज शुक्ला उनका स्वागत करने के लिये घर पर मौजूद हों, कुछ देर साथ बैठकर उनसे बात करें, उनके साथ चाय पिएं और वे दोनों साथ मिलकर बच्चों के साथ विनोद करें। पर डाक्टर मालती शुक्ला को अपनी प्रेक्टिस से बहुत कम फुरसत मिलती थी। सुबह ८ से ११ बजे तक और शाम को ४ से ६ बजे तक वे घर पर मरीजों को देखतीं, और दिन-रात में कई बार उन्हें मरीजों के घर विजिट पर जाना पड़ता। इस दशा में उनके लिये यह कैसे सम्भव था, कि वे अपने प्रीतम के घर लौटने की बाट जोहती रहती, और पति के घर लौटने का समय नजदीक आने पर बालों में कंघी कर और कपड़े बदलकर मुस्काती हुई उनका स्वागत करने के लिये तैयार हो जातीं। जो समय प्रोफेसर रामचरण का कालिज से लौटने का था, वही डाक्टर मालती का विश्राम करने का था।

इसमें सन्देह नहीं, कि विवाह के बाद कुछ वर्षों तक प्रोफेसर रामचरण और डाक्टर मालती का दाम्पत्य जीवन बड़े सुख से व्यतीत हुआ। वे दोनों

एक दूसरे को दिल से प्रेम करते थे। प्रोफेसर शुक्ला को गर्व था, कि उनकी पत्नी एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत महिला है। आर्थिक दृष्टि से वह आत्मनिर्भर है, और अन्य भारतीय नारियों के समान अपने पति पर बोझ नहीं है। प्रोफेसर शुक्ला अपनी पत्नी को हृदय से प्रेम करते थे और डाक्टर मालती भी अपने पति के लिये अपना सर्वस्व तक न्योछावर करने को तैयार रहती थीं। दोनों एक दूसरे के प्रेम में आत्मविस्मृत-से रहते थे। प्रोफेसर रामचरण अपने मित्रों से कहा करते थे—"गृहस्थ-जीवन में पति-पत्नी को दो मित्रों या दो साथियों के समान रहना चाहिये। पत्नी पुरुष के लिये न तो भोग की वस्तु है, और न इसकी स्थिति एक दासी के ही समान है। उसे सच्चे अर्थों में पुरुष की संगिनी या सहधर्मिणी होना चाहिये, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसके साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर आगे बढ़े। इस बीसवीं सदी में यह सम्भव नहीं है, कि स्त्री केवल घर की चीज बनकर रह सके। उसे भी संसार में संघर्ष करना होगा, आर्थिक क्षेत्र में भी उसे अपने पति की सहायता करनी होगी।" मित्र व बान्धव प्रोफेसर शुक्ला से ईर्ष्या करते थे और सोचते थे, कि वे कितने सौभाग्यशाली हैं, जो उन्हें इतनी सुसंस्कृत और योग्य पत्नी मिली है। वस्तुतः डाक्टर मालती जैसी पत्नी को पाकर प्रोफेसर रामचरण गौरव और गर्व अनुभव करते थे। पर कुछ साल बाद परिस्थिति ने पलटा खाया। धीरे-धीरे प्रेम का जोश ठण्डा पड़ने लगा और युवावस्था का शारीरिक आकर्षण भी कम होने लगा। डाक्टर मालती अपनी मेडिकल प्रैक्टिस से थककर विश्राम चाहतीं। एक तरफ बच्चे उन्हें आराम न लेने देते, और दूसरी तरफ प्रोफेसर शुक्ला समझते, कि उनकी पत्नी को अपना कुछ समय उन्हें भी देना चाहिये। बच्चों की देखभाल के लिये तो आया का इन्तजाम कर लिया गया था। वह आया अपने काम में अच्छी प्रवीण थी, और साफ सुथरे ढंग से रहती थी। उसकी देख-रेख में बच्चों के पालन-पोषण में कोई विशेष त्रुटि नहीं रहने पाती थी। पर प्रोफेसर रामचरण की समस्या को सुलझा सकना सुगम

नहीं था। वे सोचते थे, मालती का उनके प्रति भी तो कोई कर्तव्य है। यदि वही मेरी आवश्यकताओं को नहीं समझेगी, तो कैसे काम चलेगा। पर डाक्टर मालती अपनी मेडिकल प्रैक्टिस से इतना अधिक थक जाती थी, कि उसके लिये यह सम्भव ही नहीं रह जाता था, कि वह प्रोफेसर रामचरण के मनोरंजन के लिये समय निकाल सकती। पति-पत्नी दोनों काम से थक-कर चुपचाप अपने-अपने कमरे में लेट जाते। दोनों आर्थिक संघर्ष में तत्पर थे, दोनों की अपनी-अपनी समस्यायें थीं। किसी को इतना अवकाश न मिलता, कि दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समय निकाल सके। धीरे-धीरे उनकी यह हालत हो गई, कि एक मकान में रहते हुए भी वे एक दूसरे से अलग-अलग रहने लगे और उनके पारिवारिक जीवन में रस या सामञ्जस्य नहीं रह गया।

प्रोफेसर शुक्ला बहुधा मेरे पास बैठकर विवाह-सम्बन्ध और गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध में विवेचन शुरू कर देते। उनका कहना था, कि अब वह युग तो रहा नहीं, जब विवाह को एक आध्यात्मिक सम्बन्ध माना जाता था। जब स्त्री यह समझती थी, कि पति के साथ उसका सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का है। वर्तमान समय में स्त्री पुरुष की दासी बनकर भी नहीं रह सकती। पर जब तक विवाह और परिवार की संस्था कायम है, यह कैसे सम्भव है, कि स्त्री का अपना पृथक् व स्वतन्त्र जीवन हो। विवाह के मूल में लैङ्गिक भूख, प्रेम, अन्योन्याश्रयिता और साथीपन—ये सब तत्त्व काम करते हैं। मनुष्य किसी से प्रेम करना चाहता है, किसी से अपनी लैङ्गिक भूख को शान्त करना चाहता है, और किसी को साथी बनाकर अपना जीवन बिताना चाहता है। इसीलिये विवाह-संस्था का प्रादुर्भाव हुआ है। पर पारिवारिक जीवन की सफलता के लिये यह आवश्यक है, कि स्त्री पुरुष पर आश्रित होकर रहे, उसकी सहधर्मिणी बने। समकक्षता, समानता और सहधर्मिता एक साथ नहीं रह सकतीं। यदि स्त्री भी पुरुष के समान आर्थिक संघर्ष के झंझट में फंस जाय, आर्थिक दृष्टि से उसकी भी

पृथक् व स्वतन्त्र सत्ता हो जाय, तो दाम्पत्य जीवन में सामञ्जस्य कायम नहीं रह सकता। स्त्री का कार्यक्षेत्र घर है, उसे गृहिणी बनना चाहिये, उसके जीवन का प्रयोजन बच्चों का पालन-पोषण और पति की सेवा होना चाहिये। मानव-सभ्यता श्रम-विभाग पर आश्रित है, स्त्री और पुरुष में भी श्रम-विभाग का होना अनिवार्य है।

मुझे प्रोफेसर रामचरण के ये विचार समय व युग की प्रवृत्तियों के अनुकूल प्रतीत नहीं होते थे। मैं उनका विरोध करने का प्रयत्न करता। मैं उन्हें कहता, इस बीसवीं सदी में यह कैसे सम्भव है, कि स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त न करें। यदि वे पुरुषों के समान ही उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगी, तो इस शिक्षा का प्रयोग वे क्रियात्मक जीवन में भी करना चाहेंगी। इसलिये यदि पुरुषों के समान वे भी चिकित्सा, वकालत, अध्यापन आदि पेशों को अख्तियार करें, तो यह सर्वथा स्वाभाविक व उचित है। अपनी शिक्षा का उपयोग कर आर्थिक कमाई करनेवाली स्त्री पति के साथ मित्र व साथी के समान तो रह सकेगी, पर उसके वशवर्ती होकर जीवन बिता सकना उसके लिये सम्भव नहीं होगा। यह क्योंकर सम्भव नहीं है, कि पति-पत्नी दोनों आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हों, समाज में दोनों की अपनी पृथक् स्थिति हो, पर घर में वे दो मित्रों व साथियों के समान मिलकर रहें और गृहस्थ-धर्म का पालन करें।

पर प्रोफेसर रामचरण मेरी बात से सहमत नहीं थे। वे कहते थे, विवाह-संस्था उस युग में विकसित हुई, जब स्त्री पुरुष की दासी मानी जाती थी, जब पति से पृथक् उसकी कोई स्थिति ही नहीं थी। आधुनिक युग में स्त्री-स्वातन्त्र्य का आन्दोलन शुरू हुआ। स्त्रियों ने न केवल राजनीतिक अधिकार प्राप्त किये, पर शिक्षा प्राप्त करने और आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र जीवन बिताने में भी वे प्रवृत्त हुईं। पर इस प्रवृत्ति का यह परिणाम अवश्यम्भावी है, कि पारिवारिक जीवन का अन्त हो जाय। पाश्चात्य देशों में जो अब तक भी पारिवारिक जीवन कायम है, उसका कारण यह है, कि अभी तक

वहां स्त्रियां क्रियात्मक दृष्टि से पुरुषों के समकक्ष नहीं हुई हैं। सिद्धान्ततः वे स्वतन्त्र हैं, पर क्रिया में अभी तक भी वे पुरुषों के मनोरंजन व भोग का विषय बनी हुई हैं। वे नाना प्रकार से शृंगार कर पुरुषों को रिझाने का प्रयत्न करती हैं, और उनकी सबसे बड़ी सम्पत्ति उनका रूप ही होता है। जब स्त्री अपना शरीर व रूप बेचकर (चाहे इसे वह एक पुरुष को बेचे और चाहे बहुतों को) गुजारा करने के बजाय किसी अन्य प्रकार से कमाई करने के लिये प्रवृत्त हो जायगी, तो गृहस्थ-जीवन का अन्त हो जायगा।

मुझे प्रोफेसर रामचरण के ये विचार बड़े विचित्र प्रतीत होते थे। वे मुझे कहते थे, कि जो युग अब आ रहा है, उसमें न विवाह-संस्था कायम रहेगी, और न पारिवारिक जीवन। पढ़ी-लिखी और आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र महिलायें बच्चों का पालन झंझट की बात समझती हैं। पति की सेवा में अपना सब जीवन खपा देना उन्हें अच्छा नहीं मालूम पड़ता। जिसे प्रेम कहते हैं, वह शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह शारीरिक आकर्षण तो विवाह के कुछ साल बाद ही नष्ट हो जाता है। उसके बाद भी जो स्त्री-पुरुष एक दूसरे के साथ रहते हैं, परस्पर प्रेम करते हैं, उसका कारण यह है, कि वे बच्चों के बोझ से लद जाते हैं, बच्चों के प्रति प्रेम और उत्तरदायिता की भावना उन्हें एक दूसरे से पृथक् नहीं होने देती। आर्थिक अन्योन्याश्रयिता भी उन्हें एक दूसरे के साथ रहने के लिये विवश करती है। अभ्यासवश स्त्री-पुरुष दाम्पत्य जीवन बिताते रहते हैं, यद्यपि उनमें पारस्परिक आकर्षण का प्रायः अभाव हो जाता है। पर स्त्रियों में जिस ढंग से शिक्षा बढ़ रही है, जिस प्रकार वे स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के लिये प्रवृत्त हो रही हैं उसके कारण भविष्य में पारिवारिक जीवन की सत्ता सम्भव नहीं रहेगी। वह समय दूर नहीं है, जब प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिये सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक नहीं समझा जायगा, जब कुछ स्त्रियां पेशे के रूप में सन्तान पैदा करने का कार्य किया करेंगी। अब सन्तान की उपयोगिता व्यक्ति की अपेक्षा समाज के लिये कहीं अधिक होती जाती है।

समाज व राज्य अपनी स्थिति व उन्नति के लिये नागरिकों की आवश्यकता समझता है । क्यों न राज्य यह यत्न करे, कि उसके सब नागरिक स्वस्थ, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट हों । आप घोड़ों और बैलों की नसल में सुधार का यत्न करते हैं, क्योंकि अच्छे घोड़े और अच्छे बैल समाज के लिये उपयोगी हैं । इसी तरह मनुष्यों की नसल की उन्नति के लिये भी यत्न क्यों न किया जाय ? केवल उन पुरुषों और उन स्त्रियों को सन्तान उत्पन्न करने का अवसर दिया जाय, जिनसे स्वस्थ, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना हो । जो स्त्रियां माता बनना स्वीकार करें, उन्हें राज्य की ओर से वेतन मिले, और राज्य केवल उन स्त्रियों से ही यह कार्य ले, जो इसके लिये उपयुक्त समझी जावें । सन्तान के पालन-पोषण और शिक्षा की जिम्मेदारी भी राज्य पर ही रहे । ऐसा युग आना अवश्यम्भावी है, क्योंकि मनुष्यों की नसल में उन्नति करना घोड़ों और बैलों की नसल की उन्नति की अपेक्षा अधिक जरूरी है । जब यह युग आ जायगा, तो प्रत्येक पुरुष व प्रत्येक स्त्री के लिये विवाह और सन्तान उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी । तब सब पुरुष भी स्वतन्त्र रहेंगे, और स्त्रियां भी पुरुषों के समान ही अपनी पृथक् व स्वतन्त्र स्थिति रखेंगी । यह ठीक है, कि सब मनुष्यों में लैङ्गिक सुख की भूख होती है, वे प्रेम भी करना चाहते हैं, पर इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विवाह ही तो एकमात्र साधन नहीं है । विज्ञान के इस युग में लैङ्गिक सुख, प्रेम और सन्तानोत्पत्ति को अलग-अलग रख सकना कठिन नहीं है । वर्तमान युग की प्रवृत्तियां मानव-समाज को इसी दिशा की ओर ले जा रही हैं ।

प्रोफेसर रामचरण अपने विचारों को प्रगट करते हुए बहुत आवेश में आ गये थे । मैंने उनसे कहा—"मनुष्य की तुलना गौवों और घोड़ों से नहीं की जा सकती । मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है, जो इहलोक और परलोक दोनों में उन्नति के लिये प्रयत्न करता है । सांसारिक अभ्युदय और निःश्रेयस, दोनों ही उसके जीवन के उद्देश्य हैं । मनुष्य का पूर्ण विकास तभी सम्भव है, जब वह [illegible] में ही पूर्णता का प्रयत्न करे । यह गृहस्थ-

आश्रय के बिना सम्भव नहीं। 'एकोऽहं बहु स्याम प्रजायेय इति' (मैं एक हूँ, पर बहु होना चाहता हूँ, इसलिये सन्तानोत्पत्ति करता हूँ), यह मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा होती है। प्रत्येक स्त्री का जीवन तभी पूर्ण रूप से विकसित होता है, जब वह माता बने। यही बात पुरुष के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। मनुष्य केवल समाज-रूपी मशीन का पुर्जा मात्र ही नहीं है, वह समाज से पृथक् भी अपना व्यक्तित्व रखता है।" पर प्रोफेसर रामचरण मेरी इस बात से सहमत नहीं थे। वे फिर आवेश में आकर कहने लगे---समाज के सम्मुख व्यक्ति की स्थिति ही क्या है? आधुनिक वैज्ञानिक युग में व्यक्ति समाज के हाथ में एक खिलौना मात्र है। राज्य द्वारा बनाये गये कानून उसके जीवन के प्रत्येक अंग को नियन्त्रित करते हैं। जिन मामलों पर राज्य कानून नहीं बनाता, उनमें भी व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं होता। समाज मनुष्य के लिये आचरण की जो मर्यादा निश्चित करता है, व्यक्ति उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। यह ठीक है, कि एक से बहु होने की प्रवृत्ति मनुष्यों में विद्यमान है। माता-पिता का अपनी सन्तान के प्रति स्नेह भी स्वाभाविक होता है। पर मानव-समाज के विकास की वर्तमान दशा में समाज व्यक्ति पर जितना अधिक अधिकार रखता है, उसके कारण व्यक्ति की सत्ता सर्वथा अगण्य हो गई है। समाज या समष्टि के लिये व्यक्ति को बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने के लिये विवश होना पड़ता है। युद्ध के समय माता-पिता जवान लड़कों को सैनिक बनाकर भेजने में गौरव अनुभव करते हैं, यह जानते हुए भी कि वे अपने बच्चों को मौत के मुख में धकेल रहे हैं। यदि लोग अपने बच्चों को कटने-मरने के लिये रणक्षेत्र में भेजने की कुर्बानी कर सकते हैं, अपने जिगर के टुकड़ों को देश के लिये बलिदान कर सकते हैं, तो वे समाज और देश के हित की दृष्टि से यह त्याग क्यों नहीं कर सकते, कि वे वात्सल्य के सुख से वंचित रहें। सन्तान-रहित रहना उतना कष्टप्रद नहीं हो सकता, जितना कि सन्तान की मृत्यु का समाचार सुनना। अतः वह समय अब दूर नहीं है, जब कि मानव-समाज में प्रत्येक

पुरुष या स्त्री के लिये गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना व सन्तान उत्पन्न करना आवश्यक नहीं रहेगा, जब कि सन्तान पैदा करना एक बाकायदा पेशा माना जाने लगेगा, और इस पेशे को केवल वे स्त्री-पुरुष ही कर सकेंगे, जो कि इस पेशे के लिये सबसे अधिक योग्य पाये जावेंगे, जिनकी सन्तान गुणसम्पन्न ऐसी होगी, जिससे कि देश के मनुष्यों की नसल उन्नत हो सके।

प्रोफेसर रामनारायण के इन विचारों को सुनते हुए मैं सचमुच ग्लानि-सी अनुभव कर रहा था। मैंने उनसे कहा, आपका अपना गृहस्थ-जीवन सुखी नहीं है, इसीलिये शायद आप इस प्रकार की बातें कर रहे हैं। मेरे इस कथन से प्रोफेसर साहब ने बुरा नहीं माना। उन्होंने फिर कहना शुरू किया—यह ठीक है, कि मेरा पारिवारिक जीवन सुखी नहीं है, पर ज्यों-ज्यों स्त्रियों में शिक्षा बढ़ती जायगी और स्त्रियां आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये कमाई करने लगेंगी, त्यों-त्यों पति-पत्नी में सौमनस्य का कायम रहना अधिक-अधिक कठिन होता जायगा। तब स्त्रियों को अन्य पुरुषों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलेगा। पुरुष भी अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के सम्पर्क में आयेंगे। गृहस्थ-जीवन में पत्नी अपने पति को सर्वश्रेष्ठ पुरुष मानती है, इसी प्रकार पुरुष अपनी पत्नी को सर्वश्रेष्ठ स्त्री मानता है। वस्तुतः पति अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री से परिचय ही नहीं रखता। इसी तरह स्त्री को किसी अन्य पुरुष से परिचय पाने का अवसर ही नहीं मिलता। पर यदि पुरुषों और स्त्रियों को अपनी पत्नी या पति के अतिरिक्त अन्य स्त्री-पुरुषों से मिलने-जुलने का खुला अवसर मिले, तो यह कैसे सम्भव है, कि पत्नी में किसी अन्य पुरुष के प्रति या पति में किसी अन्य स्त्री के प्रति प्रशंसा की भावना, लगाव और आकर्षण न उत्पन्न हो? यह आकर्षण उत्पन्न हो जाने से पति-पत्नी में सौमनस्य व प्रीति कैसे कायम रह सकती है? इस समय स्त्रियों में शिक्षा तो अवश्य बहुत बढ़ रही है, पर अभी सुशिक्षित स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने का उद्योग नहीं कर रही हैं। बहुसंख्यक शिक्षित स्त्रियां अब भी नाना प्रकार के शृंगार करके

अपने रूप को निखारने और पुरुषों को रिझाने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझती हैं। वे आर्थिक दृष्टि से अब भी अपने पति पर आश्रित हैं, इसीलिये विवाह और पारिवारिक जीवन की संस्थायें अभी तक सुरक्षित हैं। पर उस समय की कल्पना कीजिये, जब स्त्रियों में आत्मगौरव और स्वतन्त्रता की भावना प्रबल रूप धारण कर लेगी। वे अपने खर्च के लिये किसी अन्य व्यक्ति पर आश्रित रहना आत्मसम्मान के विपरीत समझने लगेंगी। तब क्या पारिवारिक जीवन कायम रह सकेगा? भारत के जिन शास्त्रकारों ने 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' (स्त्री कभी स्वतन्त्रता की अधिकारिणी नहीं होती), इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, वे मेरे इस तथ्य को भली भांति अनुभव करते थे। वे जानते थे, कि स्त्री-स्वातन्त्र्य का परिणाम विवाह-संस्था और पारिवारिक जीवन के लिये अत्यन्त घातक होगा। यदि हम व्यक्तिवाद को छोड़कर समाजवाद या समष्टिवाद को अपनावें, तो या तो हमें समष्टि के हित के लिये स्त्रियों की स्वतन्त्रता को कुर्बान करना होगा और या वैवाहिक जीवन व पारिवारिक संस्था को बलि चढ़ाना होगा। स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र रहे, और पारिवारिक जीवन भी कायम रहे, यह असम्भव है।

प्रोफेसर रामचरण के विचारों को सुनते हुए मैं थकान अनुभव करने लगा था। किसी काम का बहाना करके मैंने उनसे विदा ली और प्रोफेसर साहब के विचारों को अधिक विस्तार से सुनने का मुझे अवसर नहीं मिल सका। प्रोफेसर रामचरण और डाक्टर मालती शुक्ला कोई एक मास तक होटल मॉडर्न में रहे। इतना समय बीत जाने के बाद आज भी जब मुझे उस दम्पती का ध्यान आता है, तो मैं सोचा करता हूं, कि क्या विवाह संस्था का वही भविष्य है, जो प्रोफेसर रामचरण मुझे बताते थे? महाभारत में उस युग का उल्लेख आता है, जब स्त्रियां 'स्वैच्छाचारविहारिणी' हुआ करती थीं, जब अनेक पुरुष 'गोधर्म' को सिद्ध कर स्वच्छन्द रूप से सन्तान उत्पन्न किया करते थे, जब विवाह द्वारा स्त्रियों और पुरुषों के बीच में एक

'आवरण' नहीं डला होता था। क्या इतिहास फिर अपने को दोहरायेगा और वही युग फिर नहीं आ जायगा ? मुझे मालूम है, कि गृहस्थ-जीवन फूलों की शय्या नहीं होता। स्त्री पुरुष के प्रति ममता रखती है, और पुरुष पत्नी के प्रति। दोनों बच्चों के प्रति ममता रखते हैं। हमारे शास्त्रों के अनुसार यह ममता या मोह-बुद्धि ही सब दुःखों का मूल होती है, इसी कारण हमारे देश के सन्त-महात्मा मोह-माया का जाल तोड़कर 'केवली' या 'एकाकी' हो जाने में ही श्रेय समझते थे। जब परिवार की संस्था नहीं रह जायगी, तो मनुष्यों में इस मोह-बुद्धि का स्वयमेव अन्त हो जायगा। वे किसी से ममता नहीं रखेंगे, अतः उन्हें किसी के वियोग का कष्ट भी नहीं सहना पड़ेगा। सर्वसाधारण मनुष्य भी उसी प्रकार का निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व जीवन बिताने लगेंगे, जिससे आकृष्ट होकर हमारे योगी और महात्मा लोग पर्वत-कन्दराओं का आश्रय लिया करते थे।

## (२०)

## हड़ताल की आशंका

जून के महीने में जब होटल यात्रियों से ठसाठस भरा हुआ था, एक दिन यह समाचार सुनने को मिला, कि रामनगर म्युनिसिपल बोर्ड के कर्मचारी आज हड़ताल करने का इरादा कर रहे हैं। यह समाचार मेरे लिये बहुत अधिक चिन्ताजनक था। यदि म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी, तो रामनगर में न बिजली की रोशनी रह जायगी, और न नलकों से पानी ही मिल सकेगा। यदि भंगी लोग भी हड़ताल में शामिल हो गये, तो सड़कों की सफाई हो सकनी असम्भव हो जायगी, और सब जगह गन्द के ढेर दिखाई देने लगेंगे। इस हालत में कौन यात्री रामनगर में ठहरेगा ? रामनगर जैसे पहाड़ी स्थान पर लोग किसी [illegible] के लिये तो आते नहीं, न वहां कोई सरकारी दफ्तर ही है, जिसके [illegible]

आदमियों का आना-जाना रहता है। यहां तो लोग सिर्फ गरमी से बचाव और स्वास्थ्य की उन्नति के लिये आते हैं। म्युनिसिपल कर्मचारियों की हड़ताल से जो स्थिति पैदा हो जायगी, उसमें यात्रियों के लिये वहां ठहरना असम्भव हो जायगा। सब लोग अपने-अपने घर वापस चले जायेंगे, और रामनगर का कारोबार एकदम चौपट हो जायगा। रामनगर के स्थिर निवासी अपनी आजीविका के लिये प्रधानतया यात्रियों पर ही निर्भर रहते हैं, और जून के एक महीने की कमाई से वे साल भर का खर्च चलाते हैं। यदि जून में ही यात्री लोग रामनगर से चले गये, तो मेरे जैसे कारोबारी लोगों की क्या दशा होगी?

मैं इसी चिन्ता में मग्न था, कि कुछ सज्जन मुझसे मिलने के लिये आये। बातचीत से मालूम हुआ, कि ये रामनगर-म्युनिसिपल-कर्मचारी-संघ के पदाधिकारी हैं, और हड़ताल के मामले में जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये रामनगर के प्रमुख नागरिकों से भेंट कर रहे हैं। इन्होंने मुझे बताया कि म्युनिसिपल-कर्मचारियों की अनेक ऐसी शिकायतें हैं, जिन्हें दूर कराने के लिये वे उत्तर-प्रदेश के लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट मिनिस्टर साहब तक से मिल चुके हैं। पर अब उन्होंने अनुभव कर लिया है, कि आवेदन-पत्रों या मिलने-जुलने से कोई लाभ नहीं। कोई उनकी शिकायतों पर ध्यान नहीं देता। अब हड़ताल ही एक ऐसा उपाय है, जिससे वे सरकार का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं। इसीलिये उन्होंने निश्चय किया है, कि १५ जून से रामनगर में आम हड़ताल कर दी जाय। जब दो-तीन दिन रामनगर में सड़कों तक की सफाई नहीं होगी, नलकों में पानी तक नहीं रहेगा, तब सरकार का ध्यान गरीब म्युनिसिपल-कर्मचारियों की ओर आकृष्ट होगा, और वे उनकी शिकायतों पर ध्यान देंगे। हड़ताल के मामले में जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये १२ जून को एक आम सभा की जा रही है, जिसमें अनेक नेताओं के भी भाषण होंगे। क्योंकि मैं रामनगर के सबसे बड़े होटल का संचालक था, अतः कर्मचारी संघ के

पदाधिकारियों ने मुझसे भी निवेदन किया, कि मैं भी इस सभा में अवश्य सम्मिलित होऊं, और अपने विचार प्रगट करूं।

१५ जून को तीसरे पहर म्युनिसिपल-कर्मचारियों ने शहर भर में अपना जलूस निकाला, और सायंकाल छः बजे के लगभग उनकी सभा शुरू हुई। मेरे अन्दाज में सभा में उपस्थित लोगों की संख्या २०० से अधिक नहीं थी, इनमें बहुसंख्या म्युनिसिपैलिटी के जमादारों (भंगियों) और चपरासियों की थी। आठ-दस क्लार्क भी इसमें सम्मिलित हुए थे। सभा में ऊंची वेदी पर कोई एक दर्जन प्रतिष्ठित व सम्पन्न व्यक्ति विराजमान थे, जिन्हें इस अवसर पर विशेष आग्रह द्वारा निमन्त्रित किया गया था। इस सभा का आयोजन म्युनिसिपल-कर्मचारी-संघ की ओर से किया गया था, जिसके अध्यक्ष श्री रामअवतार पाण्डे थे, जो रामनगर में चिकित्सा का कार्य करते थे। डाक्टर पाण्डे एल० एम० पी० पास थे, और प्राइवेट प्रेक्टिस से अपना गुजारा करते थे। उनकी प्रेक्टिस खूब चलती थी। दो हजार रुपया मासिक के लगभग उनकी आमदनी थी, और रामनगर में उन्होंने तीन-चार कोठियां भी खरीद ली थीं। इनके किराये से भी उन्हें पांच-छः हजार रुपया वार्षिक मिल जाता था। किसी समय वे जिला-कांग्रेस-कमेटी के प्रमुख नेताओं में गिने जाते थे। पर स्वराज्य स्थापित होने के बाद जब ब्रिटिश युग के जी-हुजूर लोग कांग्रेस के सदस्य बनकर कांग्रेस-कमेटियों पर कब्जा करने में तत्पर हो गये, तो डा० पाण्डे ने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया, और रामनगर में सोशलिस्ट पार्टी का संगठन शुरू किया। उन्हें राजनीति और सार्वजनिक जीवन का बहुत शौक था। म्युनिसिपल-कर्मचारियों को उन्होंने एक संघ में संगठित किया, और स्वयं उसके अध्यक्ष बने। सभा के प्रारम्भ होने पर डा० पाण्डे ने म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों की शिकायतों को जनता के सम्मुख रखा। ये शिकायतें निम्नलिखित थीं—(१) जमादारों को महंगाई भत्ता मिलाकर कुल २९ रु० मासिक वेतन मिलता है, जो बहुत कम है। उनका न्यूनतम वेतन

५० रु० मासिक होना चाहिये, साथ ही उन्हें कम्बल और वर्दी भी दी जानी चाहिये। (२) कमेटी के चपरासियों का वेतन ४५ रुपया मासिक है, और महंगाई व पहाड़ के एलाउन्स मिलाकर उन्हें कुल ६८ रु० मासिक मिलता है, जो बहुत कम है। उनका न्यूनतम वेतन ८० रु० होना चाहिये। (३) म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों को पहले बिजली-पानी मुफ्त दिया जाता था, वे जितना चाहें बिजली-पानी खर्च कर सकते थे। पर अब उन्हें केवल २० यूनिट बिजली और ५००० गैलन पानी प्रति मास मुफ्त मिलता है। अधिक खर्च करने पर उन्हें उसकी कीमत देनी पड़ती है, जो उन पर घोर अन्याय है। इसी प्रकार की कुछ अन्य शिकायतें भी पाण्डे साहब ने सभा के सम्मुख पेश कीं, और जनता से निवेदन किया, कि म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारी प्रार्थना-पत्र दे-देकर और डेपुटेशन ले जाकर थक गये हैं। इन उपायों से उनकी शिकायतें दूर नहीं की जा सकतीं। अब उनके सम्मुख केवल यह उपाय शेष रह गया है, कि वे हड़ताल करें। यद्यपि इससे जनता को कुछ असुविधा अवश्य होगी, पर अपने गरीब भाइयों की उन्नति के पुनीत उद्देश्य को दृष्टि में रखकर आप सब लोगों को हड़ताल में उनका साथ देना चाहिये।

पाण्डेजी के बाद अनेक अन्य वक्ताओं के भाषण हुए। इनमें म्युनिसिपैलिटी का कर्मचारी एक भी नहीं था। कर्मचारी लोग तो मूक पशुओं के समान चुपचाप बैठे थे, और अपने नेताओं के गरमागरम भाषणों को सुनकर यह अनुभव कर रहे थे, कि अब वह युग शीघ्र ही आनेवाला है, जब हम भी सम्पन्न सफेदपोश लोगों के समान जीवन व्यतीत करने में समर्थ होंगे। पर सभा में उपस्थित सब लोग हड़ताल के समर्थक नहीं थे। नगर कांग्रेस कमेटी के उपप्रधान श्री किशोरीलालजी से भी प्रार्थना की गई, कि वे भी अपने विचार प्रगट करें। पण्डित किशोरीलालजी सोशलिस्ट दल के नेतृत्व में की गई इस सभा में केवल 'आब्जर्वर' (द्रष्टा) के रूप में सम्मिलित हुए थे। पर जनता के अनुरोध को वे नहीं टाल सके। उन्होंने

अपने भाषण में कहा, कि अभी स्वराज्य स्थापित हुए पूरा एक साल भी व्यतीत नहीं हुआ है। हमारी सरकार को स्वराज्य के बाद कितनी ही विकट समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। देश के विभाजन के कारण रिफ्यूजी लोगों की जो समस्या उपस्थित हो गई है, उसी को हल करने में सरकार की सब शक्ति लग रही है। साथ ही रूस के कम्युनिस्ट चीन में निरन्तर अपनी शक्ति को बढ़ा रहे हैं। जब चीन में कम्युनिस्ट शासन स्थापित हो जायगा, तो रूस भारत पर भी आक्रमण करेगा; और इतनी कुर्बानियों के बाद जो स्वतन्त्रता हमने प्राप्त की है, वह खतरे में पड़ जायगी। भारत सब ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ है। इस समय हमें अपनी [illegible] पेश कर सरकार के मार्ग में रोड़े नहीं अटकाने [illegible] यही निवेदन है, कि आप देश के दुश्मनों की चाल में न आवें। सरकार के साथ पूरी तरह सहयोग करें और हड़ताल के इरादे को छोड़ दें। उत्तर-प्रदेश के मिनिस्टरों से मेरा बहुत अच्छा परिचय है। आप अपनी सब शिकायतों को लिखकर मुझे दे दें, मैं उन्हें सरकार के सम्मुख रख दूंगा। मुझे विश्वास है, कि सरकार उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।

पण्डितजी के बाद ठाकुर विश्वपालसिंह खड़े हुए। ठाकुर साहब रामनगर के प्रतिष्ठित नागरिक थे, और सार्वजनिक मामलों में अच्छी दिलचस्पी लिया करते थे। उन्होंने कहा, आप लोग मुझे माफ करें, यदि मैं हड़ताल का विरोध करूं। यह ठीक है, कि म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता, और उनकी दशा सन्तोषजनक नहीं है। पर यह तो सोचिये, कि जो लोग म्युनिसिपैलिटी या सरकार की नौकरी में नहीं हैं, उनकी क्या हालत है। कमेटी अपने [illegible] को ३९ रुपया वेतन देती है, पर जो मेहतर कमेटी [illegible] हैं, उनका वेतन २५ और ३० के बीच में है। जिस वर्ग के लोग कमेटी के [illegible] हैं, उसी वर्ग के लोग गैर-सरकारी नौकरी में [illegible] ४५ रुपए से अधिक प्राप्त नहीं

करते। जिन लोगों को आज कमेटी का चपरासी बनने का सौभाग्य प्राप्त है, यदि बदकिस्मती से वे नौकरी से अलग हो जावें, तो उन्हें ६८ रुपया मासिक अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकेगा। प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों को महंगाई का भत्ता मिलाकर ८७ रु० मिलते हैं। चपरासियों की हालत तो अध्यापकों से भी अच्छी है। जब हमारा देश ही गरीब है, और उसके करोड़ों आदमियों को भर पेट भोजन भी नहीं मिलता, तो आप यह आशा कैसे कर सकते हैं, कि आपको अपने वर्ग के अन्य लोगों के मुकाबले में बहुत अधिक वेतन मिले? मैं तो देखता हूँ, कि सरकारी कर्मचारी बहुत मजे में हैं, चाहे कोई आदमी सरकारी अफसर हो, चाहे सरकारी चपरासी, वह अपनी योग्यता के अन्य व्यक्तियों के मुकाबले में बहुत अधिक आमदनी प्राप्त करता है। एम० ए० पास करके जिस आदमी को प्रान्तीय सिविल सर्विस या इण्डियन सिविल सर्विस में नौकरी मिल गई, उसके लिये धन पद प्रतिष्ठा शक्ति——सबका मार्ग खुल जाता है। उसी शिक्षा व योग्यता के अन्य आदमी उसके मुकाबले में बहुत पीछे रह जाते हैं। यही बात क्लर्कों, चपरासियों व कुलियों तक के बारे में कही जा सकती है। रेलवे और पोस्टआफिस तक के कर्मचारियों को कितनी ही ऐसी सुविधायें मिलती हैं, जो देश के अन्य निवासियों की कल्पना से भी बाहर हैं। उनके बच्चों की शिक्षा के लिये सरकार विशेष व्यवस्था करती है, बीमार पड़ने पर उनका मुफ्त इलाज होता है, सफर के लिये उन्हें भत्ता मिलता है, रेल के टिकट उन्हें मुफ्त मिलते हैं। आप रामनगर की म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों की दशा को ही देखिये। आप लोगों को १५ यूनिट बिजली मुफ्त दी जा रही है, क्या आपके लिये यह कम है? अच्छे-अच्छे सम्पन्न लोग भी १५ यूनिट से अधिक बिजली एक महीने में खर्च नहीं करते। आप यह न समझिये, कि मैं आपसे सहानुभूति नहीं रखता। मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी, यदि भारत में वह समय आ जाय, जब यहां का साधारण मजदूर भी अमेरिकन मजदूरों के समान सुखी और सम्पन्न जीवन बिता

सके। पर यह दशा तभी आ सकेगी, जब इस देश की सर्वसाधारण जनता की आमदनी में वृद्धि होगी। सरकार के पास न कारूं का खजाना है, और न अलाउद्दीन का चिराग। टैक्सों से उसे जो आय होगी, उसे ही वह अपने कर्मचारियों पर खर्च कर सकेगी। जब तक जनता की आर्थिक उन्नति नहीं होगी, तब तक उनसे ज्यादा टैक्स कैसे वसूल होंगे ? सोशलिस्ट पार्टी के जो नेता म्युनिसिपल-कर्मचारियों को संगठित कर उन्हें हड़ताल के लिये प्रेरित कर रहे हैं, उनका ध्यान रामनगर के उन मेहतरों की ओर क्यों नहीं जाता, जो २५-३० रुपये पर काम कर रहे हैं ? और यह काम भी उन्हें केवल पांच या छः महीने के लिये मिलता है। घरों में काम करनेवाले नौकरों, प्राइवेट कारोबारों के मुनीमों व चपरासियों और मजदूरी से गुजर करनेवाले लोगों की दशा कमेटी के कर्मचारियों से बहुत ही हीन है। पर क्या कभी आपने इस बात पर विचार किया है, कि पाण्डेजी-जैसे नेता क्यों आप लोगों को संगठित करने में तत्पर हैं ? क्या उन्हें गरीबों से सच्ची सहानुभूति है ? आप जानते ही हैं, कि रामनगर में उनकी कितनी कोठियां व मकान हैं। इनके साथ जो नौकरों के क्वार्टर हैं, उनको किराये पर देते हुए वे गरीबों से जरा भी रियायत नहीं करते। उनसे वे कसकर किराया वसूल करते हैं, और किराया अदा करने में जरा भी देरी हुई, तो फौरन बेदखली का मुकदमा दायर कर देते हैं। इन्हीं सर्दियों में रामनगर-म्युनिसिपल-कमेटी के चुनाव होनेवाले हैं। और क्योंकि कमेटी के कर्मचारियों व उनके कुटुम्बियों के वोट २००० से कम नहीं हैं, अतः वे उनके वोट प्राप्त करने के लिये ये सब हरकतें कर रहे हैं। आप उनके धोखे में न आइये। वे आपके हितैषी नहीं हैं। यदि आपने हड़ताल कर दी, और [illegible] री से बर्खास्त कर दिया, तो आपकी जगह लेने के [illegible] भी नहीं होगी, और नये कर्मचारी आपसे भी कम वेतन में काम करने के लिये तैयार हो जावेंगे। आप केवल अपने वेतनों को न देखिये, अपने ही समकक्ष अन्य लोगों की हालत पर भी गौर

कीजिये। आप खुशकिस्मत हैं, जो सरकारी नौकरी आपको प्राप्त है।

ठाकुर साहब के भाषण से सभा में सनसनी-सी फैल गई। पाण्डेजी बगलें झांकने लगे और उनके अन्य साथी गुस्से से दांत पीसने लगे। ठाकुर साहब की बातें सुनकर मैं सोच रहा था, इसमें सन्देह नहीं, कि सरकारी कर्मचारी अन्य लोगों के मुकाबले में बहुत अधिक मजे में हैं, पर फिर भी उनकी मांगों का कोई अन्त नहीं है। रेलवे में सफर करते हुए उन्हें फर्स्ट क्लास का टिकट चाहिये, यदि वे अफसर हों। मामूली सरकारी मिस्त्री भी इण्टर क्लास से नीचे सफर नहीं कर सकता। यदि इन्हीं सज्जनों को अपनी जेब से खर्च करके यात्रा करनी हो, तो ये शायद तीसरे दर्जे का टिकट खरीदेंगे। शहरों में रहने के लिये सर्वसाधारण लोग दो कमरे के फ्लैट से सन्तुष्ट हो जाते हैं, पर सरकारी नौकरी के क्लार्कों तक को ऐसे क्वार्टर चाहियें, जिनमें सहन हो, चार-पांच कमरे हों और रसोई, गुसलखाना आदि कायदे से बने हों। सरकारी कर्मचारियों की मांगें पूरी होनी ही चाहियें, यदि रुपये की कमी है, तो टैक्सों में वृद्धि की जा सकती है, नये टैक्स लगाये जा सकते हैं। देश में एक नया वर्ग उत्पन्न होता जाता है, जिसका पेशा सरकारी नौकरी है। यह वर्ग स्वयं अपने हितों की रक्षा के लिये जागरूक है, और विविध राजनीतिक दलों के नेता भी इसकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिये इसे संगठित करने में तत्पर हैं। सर्वसाधारण जनता की शिकायतों का किसी को भी ध्यान नहीं है। अगर सरकार खर्च में कमी करने के लिये कुछ कर्मचारियों को नौकरी से अलग करना चाहती है, तो राजनीतिक दलों के नेता उनकी मदद के लिये आ पहुंचते हैं। आन्दोलन शुरू हो जाता है, और जो आदमी एक बार सरकारी नौकरी में आ गया, उसे अपने कार्य से पृथक् कर सकना असम्भव हो जाता है।

हड़ताल का प्रस्ताव सभा में स्वीकृत नहीं हो सका। कांग्रेसी नेताओं के प्रयत्न से इस आशय का एक प्रस्ताव सभा ने स्वीकृत किया, कि पं० किशोरीलालजी के नेतृत्व में एक डेपुटेशन लखनऊ जाकर प्रधान मन्त्री

और स्थानीय स्वशासन के मन्त्री महोदय से मिले, और म्युनिसिपल-कर्मचारियों की शिकायतों को दूर कराने का प्रयत्न करे। यह डेपुटेशन लखनऊ गया भी था नहीं, मुझे नहीं मालूम। १९४८ के अन्त में रामनगर में म्युनिसिपैलिटी का जो नया चुनाव होनेवाला था, वह अज्ञातकाल के लिये स्थगित कर दिया गया और डा० पाण्डे जो सरगरमी दिखा रहे थे, उसमें शिथिलता आ गई। इसी कारण हड़ताल की समस्या स्वयमेव हल हो गई।

## (२१)

## गवर्नर साहब की पार्टी

जून के अन्तिम दिनों में एक प्रान्त के गवर्नर महोदय भी रामनगर पधारे। वे केवल सात दिन के लिये रामनगर आये थे, पर उनके कारण होटल मॉडर्न में अच्छी रौनक आ गई थी। उनके निवास के लिये सर्किट हाउस में प्रबन्ध किया गया था, जो अंग्रेजी राज के जमाने में वायसराय, कमाण्डर-इन-चीफ, गवर्नर आदि के ठहरने के काम आता था। बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी कभी-कभी शिमला, नैनीताल आदि के निवास से ऊबकर रामनगर आ जाया करते थे, और उन्हीं के लिये वहां सर्किट हाउस का निर्माण किया गया था। यह विशाल महल साल भर में केवल पन्द्रह-बीस दिन काम में आता था, बाकी समय यह खाली पड़ा रहता था। इसके 'अपकीप' पर उत्तर-प्रदेश के बजट में एक लाख से ऊपर रकम हर साल रखी जाती थी। इसका सुन्दर पुष्पोद्यान रामनगर में एक दर्शनीय स्थान था। जब कोई बड़ा अफसर सर्किट हाउस में न ठहरा हुआ हो, तो जनता को भी इस बात का मौका दिया जाता था, कि वह सर्किट हाउस की फुलवारियों और अन्य साज-सामान को देखकर अपनी आँखों को तृप्त करे, और साथ ही यह भी अनुभव करे, कि अंग्रेज महाप्रभु किस ठाठ से निवास

करते हैं, उसके मुकाबले में उनके अपने मकानों की क्या हैसियत है। १९४७ में भारत में स्वराज्य स्थापित हो गया था, अंग्रेज देश छोड़कर चले गये थे। पर रामनगर के सर्कट हाउस की शान-शौकत में कोई कमी नहीं आई थी। इस पर अब भी हजारों रुपया प्रति मास खर्च होता था, और इसके शानदार भवन उस अवसर की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते रहते थे, जब नये कृष्ण महाप्रभु पधारकर उन्हें कृतार्थ करेंगे। पाकिस्तान के निर्माण के कारण लाखों हिन्दू और सिक्ख बे-घरबार हो गये थे। सरकार के सम्मुख यह विकट समस्या विद्यमान थी, कि इन शरणार्थी लोगों को धूप और वर्षा से बचाने के लिये मकानों की क्या व्यवस्था करे। रामनगर में कई हजार शरणार्थी आये हुए थे, जो बड़े कष्ट से अपना जीवन बिता रहे थे। जिन लोगों को अपने परिवार के लिये कहीं कोई कोठरी मिल गई थी, वे अपने को सौभाग्यशाली समझते थे। बहुत-से लोग ऐसे भी थे, जो तम्बुओं में या टाट के बनाये हुए खेमों में गुजर करते थे—स्त्रियों और छोटे-छोटे बच्चों के साथ। पर सरकार का ध्यान इस बात की ओर नहीं गया था, कि ७० से भी अधिक कमरों-वाला विशाल सर्कट हाउस रिफ्यूजी लोगों के निवास के लिये भी प्रयुक्त किया जा सकता है। उसमें चार-पांच सौ आदमी मजे में रह सकते थे। उसके नौकरों के क्वार्टर तक इस योग्य थे, जिनमें रहने का अवसर मिलने पर उच्च मध्यश्रेणी के लोग अपने को सौभाग्यशाली समझते। पर यह शानदार सर्कट हाउस उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था, जब भारत के कोई नये कृष्णाङ्ग गवर्नर या उन्हीं की स्थिति का कोई उच्च पदा-धिकारी रामनगर पधारे और उनकी चरण-धूलि से यह महल पवित्र हो।

ऐसी शुभ घड़ी अब उपस्थित हो गई थी। गवर्नर महोदय अपने दल-बल के साथ रामनगर के सर्कट हाउस में पधार गये थे, और उनसे भेंट करने की इच्छा लेकर बहुत-से धनी-मानी लोग रामनगर के विविध होटलों में एकत्र हो गये थे। होटल मॉडर्न में भी ऐसे अनेक लोग आये, और उनके कारण

मेरे होटल में एक भी कमरा खाली नहीं रह गया। उत्तर-प्रदेश के अनेक मन्त्री व आई० सी० एस० अफसर भी इस अवसर पर रामनगर आये, और इनके कारण रामनगर में खूब रौनक हो गई। यह स्वाभाविक था, कि रामनगर के सम्पन्न लोग इस अवसर से लाभ उठाते, और प्रान्त के शासक-वर्ग से परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करते। रामनगर के नागरिकों में चौधरी गौरीशंकर साहब बहुत प्रतिष्ठित थे। वे बहुत बड़े जमींदार थे और जंगलात के ठेकों द्वारा भी उन्होंने अच्छी बड़ी रकम पैदा की थी। पेशे से वे वकील थे, पर वकालत की अपेक्षा ठेकेदारी पर उनका ध्यान अधिक था। 'शंकर एण्ड कम्पनी' नाम से उन्होंने एक फर्म कायम की हुई थी, जिसके मैनेजिंग डाइरेक्टर उनके छोटे भाई श्री भवानीशंकर थे। यह फर्म जंगलात के ठेके लेती थी और अन्य अनेक प्रकार के कारोबार करती थी। एक दिन चौधरी गौरीशंकर मेरे पास आये, और गवर्नर साहब के सम्मान में एक बड़ी डिनर-पार्टी की व्यवस्था करने की बात मुझसे कही। उन्होंने मुझसे कहा, कि वे गवर्नर साहब के सम्मान में एक पार्टी देना चाहते हैं, जिसमें २०० के लगभग नर-नारी सम्मिलित होंगे। कोई दूसरा होटल इतनी बड़ी पार्टी का इन्तजाम नहीं कर सकता, अतः यह कष्ट आपको ही स्वीकृत करना होगा। डिनर इतना बढ़िया होना चाहिये, कि सब प्रकार के [illegible]। देसी और अंग्रेजी, सामिष और निरा[illegible] [illegible]ना होगा, क्योंकि सब किस्म के लोग डिनर में निमन्त्रित किये गये हैं। पहले होटल मॉडर्न का इन्तजाम यूरोपियन लोगों के हाथों में रहा है। अब पहला मौका है, जब यह होटल एक हिन्दुस्तानी के हाथों में है। अतः भोजन की व्यवस्था में बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता है। डिनर में कुछ अंग्रेज लोग भी आयेंगे, अतः सफाई भी बहुत अच्छी होनी चाहिये। रही खर्च की बात। आप जानते ही हैं, कि यह डिनर पब्लिक की ओर से हो रहा है। और अब तो भारत में स्व-राज्य स्थापित है, गवर्नर अपने देसी भाई हैं, उनका सम्मान करना हम

सबका कर्तव्य है । अतः जो कम से कम रेट सम्भव हो, वह उस डिनर-पार्टी के लिये चार्ज की जाय । मैंने गौरीशंकरजी को बताया, कि जिस ढंग का डिनर आप चाहते हैं, उसके लिये दिल्ली या लखनऊ का कोई होटल सात रुपया प्रति व्यक्ति से कम स्वीकार नहीं कर सकता । पर मैं सात के बजाय पांच रुपया स्वीकार कर लूंगा । चौधरी साहब को पांच रुपये का रेट बहुत अधिक मालूम हुआ । उनके लिये गवर्नर साहब के सन्निकट सम्पर्क में आने के लिये हजार रुपया खर्च कर देना कोई बड़ी बात नहीं थी । इस डिनर-पार्टी को संगठित करने में उनका उद्देश्य गवर्नर साहब का सम्मान उतना नहीं था, जितना कि अफसरों की निगाह में अपने महत्त्व को बढ़ाना। अफसरों की निगाह में ऊंचा उठ जाने से उन्हें अपने कारोबार में बहुत अधिक मदद मिलती थी । वे कुछ सौ रुपये खर्च करके लाखों कमाने का नुस्खा तैयार करने में लगे थे । बहुत भाव-ताव के बाद उन्होंने साढ़े तीन रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से रेट देना स्वीकार किया । यद्यपि यह रेट बहुत कम था, पर मैं इससे सहमत हो गया, क्योंकि मैं गवर्नर साहब, प्रान्तीय मन्त्रिवर्ग व अन्य धनी-मानी सज्जनों को नजदीक से देखना चाहता था, और इसके लिये इससे अधिक उत्तम अवसर मिल सकना सम्भव नहीं था ।

होटल मॉडर्न के विशाल डाइनिंग हॉल में डिनर पार्टी की व्यवस्था कर दी गई । होटल में ठहरे हुए अनेक नागरिकों को भी इस डिनर में शामिल होने के लिये निमन्त्रण दिया गया था । होटल के सब कर्मचारी इस डिनर-पार्टी से अत्यधिक प्रसन्न थे, उन्होंने बड़े शौक से सब इन्तजाम किया । होटल मॉडर्न के खानसामों और बैरों को वे दिन याद थे, जब अंग्रेजी वायसराय और गवर्नर आदि के सम्मान में [illegible] जाती थीं । वे मुझे बताते थे, कि एक बार गवर्नर [illegible] राम से इतने खुश हुए, कि एक हजार रुपया नौकरों को इनाम दे गये । सौ दो सौ रुपयों का इनाम तो ऐसे मौकों के लिये मामूली बात होती है । [illegible]

थी, कि इस पार्टी के बाद भी उन्हें खूब इनाम मिलेगा, और इसीलिये वे जी-जान से इसकी तैयारी में व्यग्र थे। उन्हें क्या मालूम था, कि इस डिनर के लिये जो रेट तय हुआ है, वह साढ़े तीन रुपया प्रति व्यक्ति है, जो रेट होटल मॉडर्न में मामूली लंच के लिये लिया जाता है, और इस रेट को भी चौधरी गौरीशंकर ने घण्टों की झकझक के बाद स्वीकार किया है। खान-सामा ने इस डिनर के लिये दिल खोलकर खर्च किया। ८ रुपया सेर के हिसाब से ३० सेर कीम मंगवाई गई, कराची की फिश और कम उमर के चिकनों (मुर्गी के बच्चों) का खास तौर से इन्तजाम किया गया। आदमी भेजकर लखनऊ से बढ़िया ताजे फल मंगवाये गये और जून के महीने में फूलगोभी, मटर आदि दुर्लभ सब्जियों का प्रबन्ध किया गया। होटल के बटलर ने टेबलों को सजाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। खुशबूदार फूलों के गुलदस्ते प्रत्येक मेज पर सजाये गये और और रंग-बिरंगी बत्तियों से होटल मॉडर्न का विशाल डाइनिंग हॉल जगमग कर दिया गया। होटल में फर्नीचर की कमी नहीं थी, पर सब मेहमानों के लिये एक किसम की कुर्सियां हों, इसके लिये बहुत-सी कुर्सियां किराये पर मंगाई गईं। डिनर-पार्टी में शामिल होने का निमन्त्रण-पत्र मेरे पास भी आया था, पर मैंने यही उचित समझा, कि मैं इस डिनर का प्रबन्ध अपने कर्मचारियों पर न छोड़ दूं। मैं स्वयं प्रबन्ध के निरीक्षण में व्यग्र था, और इसीलिये चौधरी गौरीशंकर साहब के निमन्त्रण को मैं स्वीकार नहीं कर सका।

डिनर-पार्टी का समय सायंकाल साढ़े आठ बजे रखा गया था, पर आठ बजे से ही निमन्त्रित मेहमान आने शुरू हो गये। कुछ ही देर में डिनर-हॉल खचाखच भर गया। ठीक साढ़े आठ बजे तीन बढ़िया मोटरकारें होटल मॉडर्न के दरवाजे के सामने आ खड़ी हुईं। एक मोटर में गवर्नर साहब हिज एक्सेलेन्सी [illegible] अपनी पत्नी के साथ आये, दूसरी में उनके ए० डी० सी०, सेक्रेटरी और [illegible] थे। तीसरी कार में [illegible] मन्त्री महोदय थे, जो इस समय [illegible] में [illegible] थे। इन मेहमानों के यथा-

रने पर होटल मॉडर्न में सनसनी-सी पैदा हो गई। सब मेहमान चौकन्ना होकर खड़े हो गये। चौधरी गौरीशंकर ने हिज एक्सेलेन्सी, हर एक्सेलेन्सी, कुमारी साहिबा और मन्त्री महोदयों को पुष्पमालायें पहनाईं। होटल मॉडर्न के बैण्ड ने राष्ट्रीय गीत को अंग्रेजी धुन के अनुसार बजाना शुरू किया, और जब गवर्नर साहब अपनी मण्डली के साथ टेबलों पर बैठ गये, तो प्लेटों और पिरच-प्यालियों की खनखन और खटर-पटर में बैण्ड की आवाज डूबने लग गई। पर चौधरी गौरीशंकर के इशारे पर टेबल-बेयरों ने अपना काम बन्द कर दिया। उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण द्वारा गवर्नर साहब व अन्य प्रतिष्ठित मेहमानों का स्वागत किया। दो मिनट की स्पीच में हिज एक्सेलेन्सी ने उसका जवाब दिया। दोनों भाषण अंग्रेजी में हुए। चौधरी गौरीशंकर की अंग्रेजी वस्तुतः दयनीय थी। यद्यपि अब स्वराज्य स्थापित हो गया था, और गवर्नर महोदय हिन्दी भली भांति जानते थे, पर चौधरी साहब ने अंग्रेजी में भाषण देना ही इस महत्त्वपूर्ण अवसर के लिये उपयुक्त समझा था। उनकी अंग्रेजी स्पीच सुनते हुए मुझे एक यूरोपियन महिला की यह बात स्मरण आ रही थी, कि भारत में इंगलिश भाषा ने एक नया रूप धारण कर लिया है, जिसे समझने में शायद बहुत से अंग्रेजों और अमेरिकनों को भी कठिनता हो। गवर्नर साहब का अंग्रेजी का ज्ञान बहुत ऊंचे दर्जे का था। उनकी स्पीच सुनकर यही अनुभव होता था, कि अंग्रेजी उनकी मातृभाषा है।

गवर्नर साहब की डिनर-पार्टी में शामिल हुए मेहमानों को मैं ध्यान से देख रहा था। हिज एक्सेलेन्सी विशुद्ध अंग्रेजी पहरावे में थे, विलायत का सिला हुआ डिनर-सूट पहने हुए। हर एक्सेलेन्सी ने बढ़िया ज्यार्जेट की साड़ी पहनी हुई थी, [illegible]। उनकी पुत्री फ्राक पहने हुए थीं, और उनके रूप-रंग व वेश-भूषा से वे यूरोपियन महिला प्रतीत होती थीं। गवर्नर साहब के स्टाफ के सब अधिकारी अंग्रेजी पोशाक पहने हुए थे। अंग्रेजी राज समाप्त हो जाने पर और महात्मा गांधी के आदर्शों के

अनुसार कांग्रेसी राज स्थापित हो जाने पर भी गवर्नर के ए० डी० सी०, सेक्रेटरी आदि की वेश-भूषा, बोल-चाल और रंग-ढंग में कोई अन्तर नहीं आया था। हां, हिज एक्सेलेन्सी के साथ जो अर्दली था, उसके सिर पर गांधी-टोपी अवश्य विद्यमान थी, और अर्दली को देखकर इस बात का अनुमान किया जा सकता था, कि अब स्वराज्य स्थापित हो गया है, और गांधी-टोपी का प्रवेश गवर्नमेण्ट हाउस में भी हो चुका है। कुमायूं के कमिश्नर, गढ़वाल के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट, सिविल सर्जन, सिटी मजिस्ट्रेट आदि जो अन्य उच्च पदाधिकारी इस डिनर-पार्टी में शामिल होने के लिये आये थे, वे सब भी अंग्रेजी पोशाक में थे, केवल इस भेद के साथ कि उनके सिरों पर फेल्ट हैट न होकर सोला हैट थे। यूरोप में लोग सिर पर फेल्ट हैट पहनते हैं, पर भारत की गरमी से अपने सिर और दिमाग की रक्षा करने के लिये अंग्रेजों ने इस देश में सोला हैट को अपनाया था। भारतीय लोगों ने इसे ही अंग्रेजी टोपी समझ लिया और अंग्रेजी पढ़े-लिखे सब लोग इसी का उपयोग करने लग गये। रामनगर-जैसे ठण्डे स्थान में भी सरकारी अफसर सोला हैट का ही प्रयोग करते थे। शायद वे इस बात को जानते ही नहीं थे, कि असली अंग्रेजी पोशाक में सिर पर फेल्ट हैट को धारण किया जाता है। गवर्नर साहब की डिनर-पार्टी में २०० से ऊपर मेहमान शामिल थे। इनमें दस से अधिक ऐसे नहीं थे, जिनके सिर पर गांधी-टोपी हो या जो खादी के कपड़े पहने हुए हों। इन दस में से चार उत्तर-प्रदेश के मन्त्री थे, जो काश्मीरी पशमीने की अचकन और श्वेत खादी की टोपी पहनकर पार्टी में शामिल हुए थे। ये चारों सज्जन स्वराज्य-संग्राम के वीर सैनिक थे, अनेक बार जेल जा चुके थे और खादी की उपयोगिता पर सैकड़ों व्याख्यान दे चुके थे। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता था, कि इनके उदाहरण का अन्य लोग क्यों कर अनुसरण नहीं करते? हिज एक्सेलेन्सी भी डिनर-सूट पहनने में ही क्यों गौरव अनुभव करते हैं, और सरकार के उच्च पदाधिकारियों ने अब तक भी भारतीय वेश भूषा को क्यों नहीं

अपनाया है ? अपने देश के शासकवर्ग और धनी-मानी लोगों के इस जमाव को देखकर कौन यह अनुभव कर सकता था, कि देश में एक भारी निश्शस्त्र क्रान्ति हो चुकी है, और अंग्रेजों के प्रभुत्व का अन्त होकर जनता का राज्य स्थापित हो गया है ? सब बड़े लोग आपस में अंग्रेजी में बात कर रहे थे, अंग्रेजी ढंग से पूड़ी और परौंठों को छूरी कांटे से काटकर खाने के असफल प्रयत्न में संलग्न थे। मेरे लिये यह एक नया दृश्य था। अंग्रेजी भोजन का लोगों को अभ्यास नहीं था, अतः उन्होंने कोल्ड मीट और स्टीक्स के बजाय पूरी-परौंठा खाना उचित समझा था, पर वे इस डिनर पार्टी में हाथ से ग्रास तोड़कर उसे मुंह में ले जाना सभ्यता के विपरीत समझते थे।

जिन अन्य कतिपय व्यक्तियों ने इस डिनर-पार्टी में गांधीटोपी धारण की हुई थी, उनमें एक नवाब सादुल्ला खां साहब भी थे। ये अवध के एक बड़े ताल्लुकेदार थे, और होटल मॉडर्न में ठहरे हुए थे। मैं इनसे भली भांति परिचित था, और बहुधा इनसे मिलता रहता था। ये अंग्रेजी पोशाक में रहते थे और सिर पर तुर्की टोपी पहना करते थे। पाकिस्तान के निर्माण के बाद भारत के बहुसंख्यक मुसलमानों ने तुर्की टोपी का परित्याग कर दिया था, क्योंकि उसे मुसलिमलीगी होने की निशानी समझा जाता था। बहुत-से मुसलमान लोग तो गांधीटोपी भी पहनने लग गये थे। पर नवाब साहब की दशा अन्य मुसलमानों से भिन्न थी। जब कभी वे लखनऊ, दिल्ली, रामनगर आदि जाते थे, तो बड़े होटलों में ठहरा करते थे, जहां उन सर्वसाधारण लोगों का प्रवेश भी निषिद्ध था, जिनसे किसी भी प्रकार की आशंका हो सकती थी। यही कारण है, कि वे रामनगर-जैसे हिन्दू-प्रधान शहर में भी तुर्की टोपी पहनकर रहते थे। जनाब जिन्ना में उनकी आज भी अगाध भक्ति थी, और उनकी मुसलिम-लीगी मनोवृत्ति में जरा भी अन्तर नहीं आया था। बातचीत के सिलसिले में वे बहुधा मुझसे कहा करते थे, कि हिन्दू लोग सदियों से गुलाम हैं, पहले वे मुसलमानों के अधीन रहे और बाद में अंग्रेजों के। हिन्दू सब बनिये हैं,

और उनका राज्य कायम रह सकना असम्भव है। पाकिस्तान में तो मुसलमानों का राज्य स्थापित हो ही गया है। वह समय दूर नहीं है, जब भारत में भी मुसलमानों का प्रभुत्व हो जायगा। जिस तरह इण्डोनीसिया, मलाया आदि में हिन्दू-धर्म का ह्रास होकर सब लोगों ने इस्लाम को स्वीकृत कर लिया, वैसे ही भारत में भी होगा। नवाब साहब के इन विचारों को सुनकर मुझे क्रोध आता था, पर वे मेरे होटल में ठहरे हुए थे, अतः मैं उनका निरादर नहीं कर सकता था। पर गवर्नर साहब की डिनर-पार्टी में नवाब साहब को मोटे खद्दर की अचकन और गांधीटोपी पहने देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। उत्तर-प्रदेश के एक मन्त्री महोदय उनसे भली भांति परिचित थे। नवाब साहब ने उनसे हाथ मिलाया और 'वन्दे मातरम्' कहकर उन्हें प्रणाम किया। यदि वे 'आदाब अर्ज' या 'जय हिन्द' कहकर उनसे मिलते, तो मुझे अधिक आश्चर्य न होता। पर नवाब साहब के मुख से 'वन्दे मातरम्' सुनकर मेरे अचम्भे का ठिकाना नहीं रहा। मन्त्री महोदय ने भी उनसे भेंट कर गौरव अनुभव किया। वे उनके साथ पांच-सात मिनट तक खड़े रहकर बात करते रहे। शायद वे दिल में सोचते होंगे, कि महात्मा गांधी के सिद्धान्तों और कांग्रेस की नीति की कितनी भारी विजय है, जो नवाब सादुल्ला खां जैसा कट्टर मुसलिम लीगी नेता अब खादी के वस्त्र पहनने लगा है, और 'वन्दे मातरम्' द्वारा उनका अभिनन्दन करता है। कोई आदमी गिरगिट की तरह कितनी आसानी से रंग बदल सकता है, मेरे लिये तो यही बात आश्चर्य की थी।

साढ़े दस बजे रात तक गवर्नर साहब की डिनर-पार्टी चलती रही। भोजन तो जल्दी ही समाप्त हो गया था, पर गपशप में एक घण्टे से अधिक बीत गया। खाने के अंग्रेजी ढंग में लंच और डिनर के बाद काफी पीने का रिवाज है। काफी की छोटी-छोटी प्यालियों के सहारे हिज एक्सेलेन्सी श्री [illegible] गपशप करते जब जाने पर [illegible] हुए, तो मूसलाधार पानी पड़ना शुरू हो चुका था।

जून के अन्तिम सप्ताह में हिमालय में वर्षा शुरू हो जाती है। उस दिन आसमान काली घटाओं से घिरा हुआ था, जोर-जोर से बिजली चमक रही थी। पौने दस के करीब जोर से हवा चलने लगी, और पानी बरसने लगा। पर गवर्नर साहब की डिनर-पार्टी के मेहमानों के मार्ग में तूफान और वर्षा कोई रुकावट नहीं डाल सकती थीं। हिज एक्सेलेन्सी और आनरेबल मिनिस्टरों के लिये मोटर-कारें तैयार खड़ी थी। वे उन पर जा बैठे, और शक्तिशाली मोटरें आंधी और तूफान को चीरती हुई होटल से विदा हो गई। बहुत-से मेहमान उस दिन रिक्शाओं पर आये थे, उनकी रिक्शायें तैयार खड़ी थीं। वर्षा का प्रकोप देखकर कुछ और कुली भी अपनी रिक्शायें लेकर होटल मॉडर्न पहुंच गये थे। दो आदमियों के बैठने की जगह पर रिक्शा खींचनेवाले पांच-पांच कुली सिकुड़े हुए बैठे थे, इस इन्तजार में कि साहब लोग आयें, और उन्हें उनके घर पहुंचाकर वे डेढ़-दो रुपया मजदूरी प्राप्त करें। साढ़े दस बजे जब साहब लोग डिनर खतम कर बाहर आये, तो कुली लोग कूदकर खड़े हो गये। क्षण भर में वे पानी से तर-बतर हो गये, उनके कपड़ों से पानी की धाराएं बहने लगीं। हवा के थपेड़े उनके मार्ग को रोकने का प्रयत्न करते थे। पर उन्हें इसकी रत्ती भर भी परवा नहीं थी। मेम साहब, साहब लोग, खद्दरधारी देशभक्त——सब एक-एक करके रिक्शाओं पर सवार हो गये और देखते-देखते होटल मॉडर्न का विशाल मैदान सूना हो गया। कुछ रिक्शा-कुली होटल मॉडर्न के क्वार्टरों में भी रहते थे। रात को बारह बजे के करीब वे साहब लोगों को उनके घर पहुंचाकर वापस लौटे। उनके क्वार्टर छोटे गन्दे और सीले थे। उनके फर्श भी कच्चे थे। मैं अभी जाग रहा था, और गवर्नर साहब की डिनर-पार्टी के खर्च का हिसाब लिखने में व्यग्र था। कुलियों का जमादार हाथ जोड़कर मेरे पास आया और कहने लगा, अगर हजूर का हुकुम हो, तो होटल के दफ्तर के बरामदे में रात बिता लें। उसने मुझे बताया, कि उनके क्वार्टरों में पानी आ गया है, और एक भी ऐसा कोना नहीं बचा है, जो सूखा हो। मैंने उन

लोगों को बरामदे में रात बिताने की अनुमति दे दी । इससे वे कृतकृत्य हो गये । कुछ देर बाद दस-बारह कुली होटल मॉडर्न के बरामदे में सोने के लिये आ गये । उनके पास पहनने के लिये सूखे कपड़ों का अभाव था । उन्होंने गीले कपड़ों का उतार दिया, और उन्हें निचोड़कर फैला दिया । अब वे नंगे बदन सोने के लिये तैयार हो गये । मुझे यह देखकर हैरानी हुई, कि इन कुलियों के पास बिछौने के तौर पर न दरी थी और न कम्बल । मूंज के टाट के टुकड़े बिछाकर वे आपस में सटकर लेट गये और बोरों को ऊपर ओढ़ लिया । पहाड़ी बरसाती सरदी से बचने के लिये एक दूसरे के शरीर की गरमी के अतिरिक्त इनके पास अन्य कोई साधन नहीं था । रामनगर के वे कुली, जो दिन भर रिक्शा खींचते हैं और मुसा-फिरों से बख्शीश के लिये तरह-तरह से विनय करते हैं, कितने गरीब हैं, इसका मुझे अब साक्षात् अनुभव हुआ । सुबह पांच बजे होटल मॉडर्न के हेड खिदमतगार चन्दनसिंह ने उन्हें जगा दिया, ताकि फटे-पुराने चीथड़ों में लिपटे हुए इन कुलियों को देखकर होटल के साहब लोग नाराज न हो जावें । पांच घण्टे की नींद ले कुली लोग अपने गीले कपड़ों को पहिनकर रिक्शा खींचने के लिये तैयार हो गये ।

पहाड़ी कुलियों की दरिद्रता के इस नग्न नृत्य को मैंने जून १९४८ में देखा था । चार साल बीत जाने पर भी इस दृश्य को मैं भूला नहीं पाया हूं । इस बीच में भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान पा लिया है । हमारे नेता यह कहते हुए नहीं थकते, कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद पांच साल के थोड़े से समय में भारत ने जो उन्नति की है, वह सचमुच आश्चर्य-जनक है । पर, रामनगर जैसे पहाड़ी स्थानों के कुलियों की दशा में भी कोई सुधार हुआ है या नहीं, मैं नहीं जानता । स्वराज्य भारत के मध्यवित्त वर्ग के लिये नवयुग लाने में चाहे समर्थ हुआ हो, पर कुलियों और मजदूरों की दशा में शायद अभी तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । वोट देने का अधिकार उन्हें अवश्य मिल गया है, पर वोट से उनका पेट भर सकता है ?

और न उनके शरीर को वर्षा और सर्दी से बचा सकता है। गवर्नर साहब की डिनर-पार्टी की उस सायंकाल को स्मरण कर अब भी मेरे शरीर में एक कंपकंपी-सी पैदा हो जाती है। कैसा अद्भुत दृश्य था वह ? जिस समय हिज एक्सेलेन्सी अपने मिनिस्टरों के साथ होटल मॉडर्न के डाइनिंग रूम में गरमागरम काफी की चुस्कियां लेते हुए देश की विविध समस्याओं पर गपशप लड़ा रहे थे, उनके केवल बीस गज के फासले पर दर्जनों कुली मूसला-धार वर्षा से अपने शरीर को तर-बतर हो जाने से बचाने का निरर्थक प्रयत्न करते हुए उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब कि साहब और मेमसाहब लोग होटल से बाहर निकलेंगे और उनकी रिक्शाओं पर बैठकर अपने-अपने घर वापस लौटेंगे। घण्टों की इन्तजार, मूसलाधार वर्षा और ऊंचे-नीचे पहाड़ी रास्तों पर दो-ढाई मन के बोझ के साहब लोगों को खींच ले जाने की मेहनत—इन सबकी जरा भी परवाह न कर जब उन्हें आठ-दस आने प्राप्त होंगे, तो उन्हें संभाल कर वे अपनी अण्टी में रख लेंगे——बरफ के दिनों में पेट की भूख को शान्त करने के लिये, अपनी प्रेयसी के लिये चांदी का एक हल्का-सा गहना खरीद लेने के लिये या अपने बच्चों के लिये गुड़ की एक थैली ले आने के लिये। सम्भवतः, हिज एक्सेलेन्सी और उनके आनरेबल मिनिस्टर देश की अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने में तत्पर थे। देश के करोड़ों मजदूरों और कुलियों की भी कोई समस्या है, इस पर विचार करने का शायद उन्हें अभी अवकाश नहीं था।

## (२२)
## कुछ गरजमन्द यात्री

जून के महीने में जो बहुत-से लोग होटल मॉडर्न में ठहरे हुए थे, उनमें से कुछ ऐसे भी थे, जो किसी गरज से रामनगर आये थे। गरमी के दिनों में उत्तर-प्रदेश के अनेक बड़े सरकारी पदाधिकारी छुट्टी लेकर रामनगर आये हुए थे। कुछ ऐसे अफसर भी थे, जो रामनगर में रहते हुए भी 'आन

रखती' थे। ग्रीष्म ऋतु में लखनऊ, दिल्ली आदि में जब तापमान ११० डिग्री से ऊपर पहुंच जाता है, तो सरकारी अफसरों का दिमाग ठिकाने नहीं रहने पाता, उनके कार्य में शिथिलता आने लगती है। खस की टट्टियां, बिजली के पंखे और कोल्ड ड्रिंक जब शरीर और मन को आराम देने में असमर्थ हो जाते हैं, तो साहब लोगों को पहाड़ों पर जाने की सूझती है। यही कारण है, कि अंग्रेजों ने नैनीताल, शिमला, रांची आदि को ग्रीष्मकालीन राजधानी के रूप में चुना था, और कुछ महीनों के लिये सब सरकारी दफ्तर इन पहाड़ी नगरों में आ जाया करते थे। इसमें सरकार का करोड़ों रुपया खर्च हो जाता था, और इसीलिये स्वराज्य-आन्दोलन के नेता गरमियों में सरकारी दफ्तरों के पहाड़ों पर भेजे जाने के खिलाफ थे। जब देश में आंशिक रूप से स्वायत्त-शासन का प्रारम्भ हुआ, तो सरकारी दफ्तरों का गरमियों के लिये पहाड़ी नगरों में जाना बन्द कर दिया गया, और शिमला, नैनीताल आदि का महत्त्व कम होने लगा। पर जब तक भारत के मैदानों में तापमान ११० डिग्री से ऊंचा होता रहेगा और देश के सम्पन्न व धनी लोग गरमी से बचने के लिये पहाड़ों पर जाते रहेंगे, यह कैसे सम्भव है, कि सरकारी अफसर व मिनिस्टर लोग लखनऊ, पटना व दिल्ली में रहते हुए अपनी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जिम्मेवारियों को कुशलतापूर्वक निभा सकें, और गरमियों में पहाड़ों पर जाने की आवश्यकता न समझें? यही कारण है, कि स्वराज्य की स्थापना के बाद भी हिज एक्सेलेन्सी गवर्नर महोदय, आनरेबल मिनिस्टर व उच्च सरकारी वर्ग मई-जून आदि गरमियों के महीनों में पहाड़ों पर चले जाते हैं, न गरमी के प्रकोप से बचने के लिये और न ही ऐश-आराम के लिये। वे वहां जाते हैं, इस पुनीत उद्देश्य से कि देश और जनता की अधिक अच्छी तरह से सेवा कर सकें। गवर्नर और मिनिस्टरों को जनता के साथ सम्पर्क कायम करना ही चाहिये, और भारत की जनता का अच्छा बड़ा भाग पहाड़ों पर भी बसता है। गरमियों में नैनीताल, रामनगर आदि रहकर ये नेतागण पहाड़ी जनता से सम्पर्क

स्थापित करने व उनके सुख-दुःख की जानकारी प्राप्त करने का सुवर्णीय अवसर प्राप्त करते हैं।

यद्यपि रामनगर उत्तर-प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी नहीं था, पर फिर भी अनेक बड़े सरकारी पदाधिकारी वहां आये हुए थे। बोर्ड आफ रेवेन्यू, प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन, बोर्ड आफ हाई स्कूल एण्ड इण्टरमीडियेट एजुकेशन आदि के अनेक सदस्य जून के महीने में रामनगर आये थे और होटल मॉडर्न में ठहरे हुए थे। इनके अर्दलियों और चपरासियों से होटल मॉडर्न में अच्छी खासी रौनक आ गई थी। जब ये अर्दली सुनहरी झालरवाली पगड़ी और लाल रंग की लम्बी अचकन पहनकर होटल मॉडर्न के बरामदों में मोटी-मोटी फाइल उठाये हुए इधर-उधर टहलते हुए नजर आते थे, तो ऐसा प्रतीत होता था, कि लखनऊ की सेक्रेटरियेट कुछ समय के लिये रामनगर आ गई है। होटल मॉडर्न में फर्नीचर की कमी नहीं थी, प्रत्येक कमरे में मेज-कुर्सी आदि अच्छी बड़ी संख्या में विद्यमान थीं। पर कुछ अफसर लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने अपने बैठने के लिये आरामकुर्सियां लखनऊ से डाक-पार्सल द्वारा मंगवाई थीं। डाकिये लोग इन अफसरों की कुर्सियां व अन्य सामान ढोते हुए बेहद परेशानी अनुभव करते थे। पर उन अर्धशिक्षित गरीब पोस्टमैनों को यह क्या मालूम था, कि साहब लोग हर किसी कुर्सी पर बैठकर काम नहीं कर सकते ? उन्होंने जिन अत्यन्त महत्वपूर्ण व गम्भीर समस्याओं पर विचार करना होता है, उनके लिये यह आवश्यक है कि हर जगह वही कुर्सी उपलब्ध हो, जिस पर बैठने की उन्हें आदत है। अगर इसके लिये सरकार के दस-बीस रुपये डाक-व्यय में खर्च हो गये, तो कौन-सा नुकसान हो गया। यह ठीक है, कि रेलवे पार्सल से कुर्सी मंगाने पर आधे खर्च में काम चल जाता, पर रेलवे द्वारा कुर्सी आने में एक-दो दिन की देर हो जाती। उससे साहब लोगों के काम में जो भारी विघ्न पड़ता, उसकी कीमत उन आठ-दस रुपयों से बहुत अधिक होती, जो डाक द्वारा कुर्सी मंगाने में अधिक खर्च हुए थे। एक पोस्टमैन ने मुझे

बताया, कि आप तो डाक पार्सल से कुर्सी मंगाने पर आश्चर्य करते हैं, पहले जब भारत में साहब लोगों का राज्य था, तो कई बार फोल्डिंग पलंग तक डाक द्वारा आया करते थे । अब अफसरों की वह शान कहां रह गई, जो पहले थी ?

एक दिन सुबह दो सज्जन मेरे दफ्तर में आये, और श्री पारसनाथ के बारे में पूछने लगे । श्री पारसनाथ होटल मॉडर्न के ११८ नम्बर कमरे में ठहरे हुए थे, और मुझसे उनका कोई विशेष परिचय नहीं था । चपरासी ने बताया, कि श्री पारसनाथ सुबह से अपने कुछ मित्रों के साथ बाहर गये हुए हैं, और दो बजे से पहले होटल वापस नहीं लौटेंगे । मैंने इन सज्जनों से कह दिया, कि आप दो बजे बाद फिर पधार जावें । पर वे सज्जन टस से मस नहीं हुए और दफ्तर में ही धरना देकर बैठ गये । बातचीत करने पर मालूम हुआ, कि वे सहारनपुर जिले के एक गांव से आज सुबह ही पधारे हैं, और शाम तक उन्हें वापस लौट जाना है । मैं उन्हें कहना चाहता था, कि होटल मॉडर्न के दफ्तर को 'वेटिंग रूम' के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, पर उनके भोलेभाले मुख और खादी के कपड़ों को देखकर मुझे उन पर रहम आ गया । मैंने चाहा, कि वे होटल के किसी खाली कमरे में जाकर विश्राम कर लें । इसके लिये उनसे कोई किराया नहीं लिया जाता था, पर वे इसके लिये तैयार नहीं हुए, और दफ्तर के एक कोने में बैठकर श्री पारसनाथ के लौटने की प्रतीक्षा करते रहे । कोई ढाई बजे श्री पारस-नाथ पिकनिक-पार्टी से वापस आये । अभी उन्हें लंच खाना था, और इसके लिये उन्हें बहुत देरी हो गई थी । पर जब उन्हें यह कहा गया, कि दो सज्जन सुबह नौ बजे से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तो वे लंच से पहले ही उनसे बात करने के लिये बैठ गये । श्री पारसनाथ ने होटल मॉडर्न के दफ्तर में ही एक कुर्सी पर अपना आसन जमा लिया, और [illegible] पूछा—कहिये आप कहां से पधारे हैं, और मुझसे आपको क्या काम है ? देहाती सज्जन उनसे प्राइवेट में बात करना चाहते थे, पर श्री पारसनाथ से वे यह

स्पष्ट रूप में नहीं कह सके। ये सज्जन श्री पारसनाथ के नाम एक बन्द लिफाफा लेकर आये थे, जिसे उनके एक मित्र ने उन्हें दिया था। श्री पारस-नाथ पत्र पढ़कर असमंजस में पड़ गये। उन्हें यह समझ नहीं पड़ा, कि इस पत्र का क्या जवाब दें। श्री पारसनाथ के एक मित्र सहारनपुर के प्रतिष्ठित वकील थे, उन्हीं से सिफारिशी पत्र लेकर ये देहाती सज्जन रामनगर आये थे। पत्र में लिखा गया था, कि इस पत्र के वाहक श्री देवी-प्रसाद पाठक दुनियापुर गांव के जमींदार हैं, और उनके सुपुत्र श्री रामप्रसाद पाठक ने इस साल प्रान्तीय सिविल सर्विस की परीक्षा दी है। इण्टरव्यू के लिये चुने गये उम्मीदवारों में उनका नाम आ गया है, और चार जुलाई को रामनगर में पब्लिक सर्विस कमीशन के सम्मुख उन्हें उपस्थित होना है। कमीशन के अन्यतम सदस्य श्री उमाचरण आपके घनिष्ठ मित्र हैं, अतः आपसे अनुरोध है, कि आप उनसे रामप्रसाद पाठक के बारे में कह दें। आपके अनुरोध को श्री उमाचरण नहीं टाल सकेंगे। रामप्रसाद चुनाव में आ जायेंगे, और आप मित्रता के नाते इस काम को अवश्य स्वीकार करें।

इसमें सन्देह नहीं, कि श्री पारसनाथ और श्री उमाचरण परस्पर मित्र थे। श्री उमाचरण भी होटल मॉडर्न में ठहरे हुए थे, और मैंने उन्हें अनेक बार पारसनाथजी के साथ हंसी-मजाक करते और एक साथ पिकनिक पर जाते देखा था। यदि पारसनाथजी का कोई अपना आदमी पब्लिक सर्विस कमीशन के सम्मुख इण्टरव्यू के लिये बुलाया जाता, तो उसके लिये वे उमाचरणजी से सिफारिश करते या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। पर एक अपरिचित व्यक्ति के लिये केवल एक मित्र के चिट्ठी लिख देने पर उसकी सिफारिश करने के लिये वे उद्यत नहीं हुए। उन्होंने श्री देवीप्रसाद पाठक से साफ-साफ कह दिया, कि उमाचरणजी से मेरा परिचय अवश्य है, पर वे मेरी सिफारिश को कोई महत्त्व देंगे या नहीं, यह मैं नहीं जानता। वकील साहब के लिये मेरे हृदय में बहुत आदर है, उनकी बात को मैं कभी नहीं टाल सकता। पर आपको यह बात भली भांति समझ लेना चाहिये, कि सिफारिश

ऐसे आदमी की होनी चाहिये, जिसका पूरा-पूरा असर हो, नहीं तो इसका उलटा असर भी हो सकता है। पाठकजी श्री पारसनाथ की बात सुनकर स्तब्ध-से रह गये। वे बड़ी आशाओं और उमंगों को लेकर रामनगर आये थे। वे स्वप्न ले रहे थे, कि श्री पारसनाथ की सिफारिश कभी बेकार नहीं हो सकती। उमाचरणजी उनके कहने को पूरा-पूरा महत्त्व देंगे। उनका लड़का अवश्य सिलेक्शन में आ जायगा। जमींदारी नष्ट हो रही है, तो क्या हुआ। जब लड़का पी० सी० एस० होकर कहीं डिप्टी कलेक्टर या डिप्टी सुपरिन्टेंडेन्ट आफ पुलीस हो जायगा, तो उन्हें किस बात की कमी रहेगी। उनका मुख पीला पड़ गया और जवाब में वे एक शब्द भी नहीं बोल सके।

श्री पारसनाथ कोमल हृदय के आदमी थे, दूसरों के लिये वे दर्द अनुभव करते थे। यद्यपि लंच के लिये उन्हें देरी हो रही थी, पर उन्होंने समझाकर कहा—पाठकजी, आप बुरा न मानें। मैं जानता हूं, कि सिफारिश सब जगह चलती है। पर सचमुच मेरी उमाचरणजी के साथ इतनी घनिष्ठता नहीं है, कि मैं उनसे आपके लड़के के लिये कह सकूं। हो सकता है, कि वे मेरी बात से बुरा मान जावें, और सरकार को यह रिपोर्ट कर दें, कि मैं किसी की सिफारिश लेकर उनसे मिला था। आप चाहें तो मैं आपको यह बता सकता हूं, किन सज्जनों की सिफारिश श्री उमाचरण के लिये महत्त्व रखती है। कानपुर के ठाकुर रिपुदमनसिंह के साथ उमाचरणजी की दांतकाटी रोटी है। वे भी इन दिनों रामनगर में ही हैं, उनसे जाकर मिलिये। पब्लिक सर्विस कमीशन में जब उमाचरणजी की नियुक्ति हुई थी, तो श्री दुर्गाशंकर शर्मा आई० सी० एस० ने उनकी बहुत मदद की थी। उन्हीं की कोशिश से उमाचरणजी कमीशन के सदस्य बन सके थे। आप शर्माजी से मिलिये, उनकी बात को श्री उमाचरणजी कभी नहीं टाल सकेंगे।

पर बेचारे पाठकजी की ठाकुर रिपुदमनसिंह या श्री दुर्गाशंकर शर्माजी तक पहुंच नहीं थी। वे निराश होकर रामनगर से वापस चले गये।

मुझे मालूम नहीं, कि उनके सुयोग्य पुत्र पी० सी० एस० के सिलेक्शन में आये या नहीं। पर अब तक भी जब कभी मुझे पाठकजी के पीले मुंह का स्मरण हो आता है, तो मैं सोचने लगता हूं, कि जो लोग इन कॉम्पिटीटिव सर्विसों के लिये चुने जाते हैं, क्या सचमुच उनका चुनाव केवल योग्यता के आधार पर ही होता है, या कुछ ऐसे सौभाग्यशाली महानुभाव भी होते हैं, जो ठाकुर रिपुदमनसिंह जैसे लोगों की सिफारिश करवाकर अपने पुत्रों को इन सर्विसों के लिये चुनवा सकने में समर्थ हो जाते हैं ?

इन्हीं दिनों एक अन्य सज्जन उत्तर-प्रदेश के बोर्ड आफ हाई स्कूल एण्ड इण्टरमीडिएट एजुकेशन के अन्यतम सदस्य श्री भैरोंप्रसाद वर्मा से भेंट करने के लिये होटल मॉडर्न पधारे। इन सज्जन का नाम पण्डित रामावतार तिवारी था, और ये आगरा के एक प्रकाशन-मन्दिर (पब्लिकेशन हाउस) की ओर से आये थे। श्री भैरोंप्रसाद वर्मा कानपुर के एक कालिज में अर्थशास्त्र के अध्यापक थे, और आगरा यूनिवर्सिटी की सीनेट के सदस्य होने के साथ-साथ बोर्ड आफ हाई स्कूल एण्ड इण्टरमीडिएट एजुकेशन के भी सदस्य थे। वे रामनगर की एक आलीशान कोठी में ठहरे हुए थे, और रुपये को पानी की तरह बहाते थे। दो-चार बार वे अपने मित्रों के साथ होटल मॉडर्न में डिनर खा चुके थे और इस कारण मैं उन्हें पहचानता था। उनके रहन-सहन को देखकर कोई यह अनुमान नहीं कर सकता था, कि वे एक डिग्री कालिज के प्रोफेसर हैं, और उन्हें केवल ४५० रुपया मासिक वेतन मिलता है। उन्हें अपनी पुस्तकों से अच्छी आमदनी थी। हाई स्कूल और एफ० ए० के लिये उनकी लिखी हुई अर्थशास्त्र और नागरिक-शास्त्र-विषयक पुस्तकें कोर्स में थीं, और इनसे उन्हें हजारों रुपया वार्षिक रायल्टी के रूप में प्राप्त हो जाता था। आगरा यूनिवर्सिटी के विविध 'बोर्ड्स आफ स्टडीज' और हाई स्कूल के बोर्ड में उनकी पार्टी बहुत जबर्दस्त थी, और उनकी सम्मति की उपेक्षा कर सकना किसी अन्य सदस्य के लिये सुगम नहीं था। श्री रामावतार तिवारी इस उद्देश्य से रामनगर आये थे, कि वे वर्माजी से मिलें,

और अपने प्रकाशन-मन्दिर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों को इण्टरमीडिएट कक्षा के कोर्स में लगवाने का प्रयत्न करें। तिवारीजी स्वयं लेखक नहीं थे, और न ही उन्हें विद्या से कोई अनुराग ही था। उन्होंने केवल बिजनेस के रूप में प्रकाशन के कार्य को शुरू किया था। यदि वे जनरल मर्चेन्ट (बिसात-खाना), मिष्ठान्न-भण्डार या फल-मेवे की दुकान करते, तो उसे भी उतनी ही योग्यता व क्षमता के साथ कर सकते थे, जैसे कि वे पुस्तक-प्रकाशन के कार्य को कर रहे थे। १९४९ से उत्तर-प्रदेश के हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट कालिजों के लिये नया कोर्स लागू होना था, और तिवारीजी ने इसके लिये चार पुस्तकें तैयार कराई थीं। आगरा के एक बड़े कालिज के इतिहास के प्रोफेसर से वे इस उद्देश्य से मिले थे, कि वे उनके लिये भारतवर्ष के इतिहास पर एक पुस्तक लिख दें, जो हाई स्कूल के कोर्स में रखी जा सके। ये प्रोफेसर महोदय एम० ए० के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे, और स्कूल की कक्षाओं के अध्यापन का उन्हें जरा भी अनुभव नहीं था। उन्होंने तिवारीजी से कहा, पुस्तक आप किसी अन्य व्यक्ति से लिखवा लीजिये, मैं उसे देख लूंगा। तिवारीजी यही तो चाहते थे। वे केवल इस बात के लिये उत्सुक थे, कि प्रोफेसर महोदय अपना नाम पुस्तक के लेखक के रूप में दे दें। उन्होंने एम० ए० के एक विद्यार्थी से भारतवर्ष का इतिहास अंग्रेजी में लिखवा लिया। इसके लिये लेखक को २०० रुपया पारिश्रमिक दे दिया गया। एम० ए० के विद्यार्थी महोदय के लिये यह पारिश्रमिक भी कम नहीं था। आठ महीने एक घण्टा रोज ट्यूशन करके यह रकम उन्हें प्राप्त हो सकती थी। उसने मेहनत करके दो-ढाई महीने में पुस्तक लिख डाली और प्रोफेसर साहब ने सरसरी निगाह डालकर कहीं-कहीं उसमें परिवर्तन कर दिये। अंग्रेजी में पुस्तक तैयार हो गई। अब तिवारीजी ने १०० रुपये देकर एम० ए० (हिन्दी) के एक अन्य विद्यार्थी द्वारा उसका हिन्दी अनुवाद करवा लिया। यह पुस्तक तिवारीजी के प्रकाशन-मन्दिर की ओर से छपकर तैयार हो गई, और इस पर लेखक के रूप में नाम दिया गया

डा० श्यामाप्रसाद चटर्जी एम० ए०, पी० एच० डी० (आक्सफोर्ड), डी० लिट० (लण्डन) का। इतने प्रकाण्ड ऐतिहासिक द्वारा 'लिखित' पुस्तक के उपयोगी होने में सन्देह करने का साहस किसे हो सकता था। प्रोफेसर चटर्जी को पुस्तक के लेखक के रूप में १५ प्रतिशत रायल्टी दिये जाने का इकरारनामा कर लिया गया, और २००० रुपया इस मद में उन्हें पेशगी प्रदान कर दिया गया।

पर तिवारीजी यह भली भांति जानते थे, कि केवल डा० चटर्जी का नाम प्राप्त कर लेने से ही वे पुस्तक को कोर्स में नहीं रखवा सकेंगे। इसके लिये उन्हें अभी और अधिक हाथ-पैर पटकने की आवश्यकता होगी। जब तक वे 'बोर्ड आफ हाई स्कूल एण्ड इण्टरमीडियट एजुकेशन' के किसी प्रभावशाली सदस्य को अपने साथ न मिला लें, वे अपने उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकेंगे। इसीलिये वे अब रामनगर पधारे थे, और श्री भैरोंप्रसाद वर्मा से भेंट करने के लिये प्रयत्नशील थे। वर्माजी से मिलने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि वर्माजी न किसी जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे, और न ही उनकी अर्दल में लाल अचकन और सुनहरी झालरदार पगड़ी धारण किये हुए चपरासी ही रहता था। तिवारीजी ने डा० चटर्जी द्वारा लिखित 'भारतवर्ष का इतिहास' की वर्माजी के सम्मुख भूरि-भूरि प्रशंसा की। पर इसका प्रोफेसर भैरोंप्रसाद साहब पर कोई असर नहीं पड़ा। अब तिवारीजी ने 'काम की बात' शुरू की। वस्तुतः वे काम की बात करने के लिये ही रामनगर आये थे। वर्माजी ने उन्हें साफ-साफ कह दिया, कि इस काम के लिये ३००० रुपया खर्च करने की जरूरत पड़ेगी। यह रकम तिवारीजी को कुछ अधिक मालूम हुई। जब वे सौदे की बात करने लगे, तो वर्माजी ने झिड़ककर कहा, यह कोई गाजर-मूली का सौदा तो है नहीं। जिस ढंग से आपका काम बन सकता है, वह आपको बता दिया गया है, आगे आप खुद सोच लीजिये। दो-चार मिनट तक इधर-उधर की बातें करके तिवारीजी ३००० रुपया वर्माजी की भेंट कर देने के लिये तैयार हो गये। पर अब

प्रश्न यह था, कि यह रकम कब और किस ढंग से दी जाय। वर्माजी इसे पेशगी लेना चाहते थे। पर तिवारीजी का कहना था, कि यदि पुस्तक कोर्स में न हो सकी, तो मेरे पास इस बात का क्या सबूत होगा, कि आपको यह रकम दी गई है, और मैं आपसे इसे कैसे वापस ले सकूंगा? इस पर वर्माजी ने कहा—आपको मुझ पर विश्वास करना चाहिये। यह मेरे 'आनर' का सवाल है। आपकी रकम मेरे पास अमानत के तौर पर रहेगी। यदि पुस्तक कोर्स में हो गई, तो रकम मेरी होगी, अन्यथा आपको लौटा दी जायगी। पर तिवारी-जी कारोबार के मामले में भोलेभाले नहीं थे। उन्होंने कहा—यदि मैं आप पर विश्वास कर सकता हूं, तो आपको भी मुझ पर विश्वास करना चाहिये। आप पुस्तक कोर्स में करवा दीजिये, मैं तुरन्त ३००० रुपये आपकी भेंट कर दूंगा। यदि मैंने आपको धोखा दिया, तो भविष्य में मेरी कोई भी पुस्तक कोर्स में नहीं आ सकेगी। मैं बदनाम हो जाऊंगा, आखिर काठ की हांडी एक ही बार तो आग पर रखी जा सकती है। बहुत देर तक विचार-विनिमय के बाद यह तय हुआ, कि तीन हजार रुपये के पांच-पांच रुपये के नोट एक ऐसे मित्र के पास रखवा दिये जायं, जिन पर दोनों सज्जन विश्वास कर सकें। तिवारीजी और वर्माजी दोनों ही इस निर्णय से सन्तुष्ट हुए। तिवारीजी का काम बन गया। उत्तर-प्रदेश की हाई स्कूल परीक्षा में लाख से ऊपर विद्यार्थी बैठते हैं। यदि दस हजार विद्यार्थियों ने भी तिवारीजी द्वारा प्रकाशित पुस्तक खरीदी, तो उन्हें कम से कम १० हजार रुपया वार्षिक का मुनाफा होगा। पुस्तक तीन-चार साल तक तो कोर्स में रहेगी ही। चालीस हजार के मुनाफे की आशा में चार पांच हजार रुपये का सट्टा खेलने में उन्हें कोई हानि प्रतीत नहीं होती थी।

इन दिनों बोर्ड आफ हाई स्कूल एण्ड इण्टरमीडियट एजूकेशन के कुछ अन्य सदस्य भी रामनगर में ठहरे हुए थे। 'नागरिक शास्त्र' विषयक अपनी पुस्तक को कोर्स में रखाने के लिये तिवारीजी ने प्रोफेसर स्वरूपनारायण कंसल से भेंट की। तिवारीजी ने 'नागरिक शास्त्र' पर जो पुस्तक प्रकाशित

की थी, उसे उन्होंने लखनऊ युनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर महोदय से 'लिखवाया' था। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ, कि कंसलजी ने न उनसे रुपया मांगा और न ही किसी अन्य प्रकार की कोई मांग की। उन्होंने साफ-साफ कह दिया, कि आपकी पुस्तक भी मेरे पास आई हुई है, अन्य पुस्तकों के साथ-साथ मैं उसे भी अवश्य पढ़ूंगा। यदि पुस्तक सन्तोषजनक हुई, तो मुझे उसकी सिफारिश करने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होगी। कंसल साहब की बात सुनकर तिवारीजी को बहुत निराशा हुई। उन्होंने अनेक प्रकार से कंसलजी के दिल की टोह लेने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा—भारत में शिक्षकों के वेतन बहुत कम हैं। आपकी योग्यता का व्यक्ति यदि कहीं इंगलैण्ड या अमेरिका में प्रोफेसर होता, तो लोग उसकी कदर समझते। पर इस देश में गुणी की तो कोई कदर नहीं करता। अध्यापकों को न ऊपर की आमदनी का कोई मौका है, और न सरकार ही उनकी आवश्यकताओं पर ध्यान देती है। देश के बच्चों और नवयुवकों का भविष्य शिक्षकों पर ही निर्भर है। पुस्तकों का व्यवसाय करनेवाले मेरे-जैसे लोगों की रोटी आप सदृश महानुभावों के कृपा-कटाक्ष पर ही निर्भर है। हमारा भी यह कर्तव्य है, कि आप लोगों की सेवा में कोई कसर न उठा रखें। 'सेवा' का शब्द सुनकर कंसलजी भड़क गये। उन्होंने चिल्लाकर कहा—आप मुझे रिश्वत देना चाहते हैं। मैं आपकी रिपोर्ट शिक्षा-विभाग को कर दूंगा। पर तिवारीजी को इस ढंग की बातें सुनने की आदत थी। उन्होंने समझा, प्रोफेसर लक्ष्मीनारायण केवल बातें [illegible] नहीं हैं। भेंट-पूजा से तो भगवान् भी प्रसन्न हो जाते हैं। फिर कंसल साहब किस गिनती में हैं। उन्होंने अपने कोट की जेब से एक मोटा-सा लिफाफा बाहर निकाला, और उसे मेज पर इस ढंग से रख दिया, कि उसमें भरे हुए सौ-सौ रुपये के नोट साफ-साफ दिखाई देते थे। पर तिवारीजी का माया-जाल कंसलसाहब पर अपना जादू नहीं कर सका। उन्हें निराश होकर वापस लौट जाना पड़ा। लखनऊ युनिवर्सिटी के प्रोफेसर सुरे[illegible]

एम० ए० पी० एच० डी० महोदय द्वारा हिन्दी-भाषा में लिखित 'नागरिक शास्त्र' को हाई स्कूल के कोर्स में रखवा सकने में वे असमर्थ रहे।

पण्डित रामावतारजी तिवारी बड़े मिलनसार व्यक्ति थे। वे बहुधा मेरे पास आ बैठते और अपनी दिन भर की कारगुजारी की कहानी मुझे सुना देते। एक सप्ताह के लगभग वे होटल मॉडर्न में रहे। अनेक बार उन्होंने रामनगर में ठहरे हुए बड़े-बड़े प्रोफेसरों व शिक्षा-विभाग के उच्च अधिकारियों को चाय या डिनर के लिये भी निमन्त्रित किया। इन पार्टियों पर वे दिल खोलकर खर्च करते थे। वे कहते थे, यह तो बिजनेस का 'इन्वेस्टमेण्ट' है। जो बीज मैं आज बखेर रहा हूं, वे साल दो साल में फल लावेंगे। अपनी पुस्तकों को कोर्स में कराने का यह बहुत सरल नुसखा है, कि शिक्षा-विभाग के महत्त्वपूर्ण अधिकारियों से 'कन्टैक्ट' कायम किया जाय। जब वे रामनगर से वापस गये, तो मुझसे कहते थे, कि अपनी दो पुस्तकों के बारे में उन्होंने सब बातें तय कर ली हैं, और उनकी रामनगर-यात्रा असफल नहीं कही जा सकती। होटल मॉडर्न में उन्हें जो आराम मिला, उससे वे भली भांति सन्तुष्ट थे, और अपना स्थिर पता मेरे पास छोड़ गये थे।

तिवारीजी से भेंट हुए अब कोई चार साल बीत गये हैं। पर उनकी बातचीत को स्मरण कर मैं बहुधा सोचने लगता हूं, कि क्या कभी वह समय भी आयेगा, जब हमारे देश में कम से कम शिक्षा और पुस्तकों को 'बिजनेस' से पृथक् किया जा सकेगा? हमारी युनिवर्सिटियों के बड़े-बड़े प्रोफेसर हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिये पाठ्य पुस्तकें लिखते हैं, या कालिज के विद्यार्थियों के उपयोग के लिये टैक्स्टबुकों पर नोट्स या हैण्डबुक लिखने में समय लगाते हैं। क्या कारण है, जो हमारे युनिवर्सिटी प्रोफेसर आक्सफोर्ड, पेरिस, बर्लिन आदि की युनिवर्सिटियों के अध्यापकों के समान मौलिक और गम्भीर पुस्तकें नहीं लिखते? इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन, विज्ञान आदि पर हमारे यहां न मौलिक पुस्तकें [illegible]

पाश्चात्य देशों में प्रकाशित होती हैं। हमारे देश में इन विषयों का उच्च अध्ययन प्रारम्भ हुए पचासों साल बीत चुके हैं, पर हमारे विद्वान् अब तक भी कोई ऐसी पुस्तकें लिखने में समर्थ नहीं हुए, जिनका देश-विदेश में सर्वत्र आदर हो। जो थोड़ी-बहुत मौलिक व गम्भीर पुस्तकें हमारे विद्वानों ने लिखी हैं, उनकी गिनती उंगलियों पर की जा सकती है। हमारे प्रोफेसरों की तो सब शक्ति इस बात में लग जाती है, कि उनके नाम से ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हों, जिन्हें कोर्स में रखा जा सके, और जिनकी रायल्टी से उन्हें हजारों रुपया मासिक की अतिरिक्त आमदनी होती रहे। हमारे पुस्तक-प्रकाशकों ने अपने व्यवसाय को मामूली ठेकेदारों और दूकानदारों के स्तर तक पहुंचा दिया है, जो रिश्वत देने में जरा भी संकोच नहीं करते और रुपये को पानी की तरह बहाकर अपनी थर्ड क्लास पुस्तकों को कोर्स में रखवा लेते हैं। पर इस अन्धकार में भी मुझे तब आशा की एक उज्ज्वल किरण दिखाई देने लगती है, जब मैं श्री लक्ष्मीनारायण कंसल जैसे व्यक्तियों का स्मरण करता हूं, जिन्होंने तिवारीजी के नोटों से भरे गुलदस्ते को पैर से ठुकरा दिया और जो अपने उदात्त सिद्धान्तों व कर्तव्य से विचलित नहीं हुए। पर दुःख की बात यही है, कि प्रोफेसर कंसल जैसे व्यक्ति हमारे शिक्षा-विभाग में अधिक नहीं हैं।

## (२३)

## चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात

जून का महीना खतम होने से पहले ही रामनगर में वर्षा शुरू हो गई थी। जुलाई के पहले सप्ताह में मान्सून का जोर बहुत अधिक बढ़ गया, और लोग अपने-अपने घरों को लौटने लग गये। दस जुलाई तक यह दशा हो गई, कि होटल मॉडर्न में केवल एक दर्जन मेहमान रह गये। जून में होटल मॉडर्न में ठहरे हुए यात्रियों की संख्या २०० से भी अधिक थी, वहां स्थान

प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन था। कितने ही लोग दफ्तर के बाहर बरामदे में असबाब रखकर जगह ढूंढ़ने के लिये इधर-उधर भटकते फिरते थे, और जब उन्हें रामनगर के किसी भी होटल, सराय या धर्मशाला में जगह नहीं मिलती थी, तो होटल मॉडर्न के लॉन्ज या बरामदे में ही कहीं फर्श पर बिस्तर बिछाकर रात गुजारने के लिये विवश हो जाते थे। पर वर्षा ऋतु के शुरू होते ही हालत एकदम बदल गई। सब होटल एकदम खाली हो गये और रामनगर की सड़कों पर उल्लू बोलने लग गये। पहाड़ी नगरों के कारोबारी लोग जून के महीने की कमाई से साल भर का गुजर करते हैं। अब जून बीत चुका था, और सब लोग हाथ पर हाथ धरकर बैठ गये थे। जब कोई मोटरगाड़ी रामनगर के मोटर-अड्डे पर रुकती, तो होटलों के दर्जनों 'गाइड' उसे मक्खियों की तरह से घेर लेते। बहुधा तो इन मोटर-गाड़ियों में एक भी ऐसा व्यक्ति न उतरता, जो किसी होटल में ठहरनेवाला होता। पर यदि सौभाग्य से कोई ऐसा यात्री आ भी जाता, तो गाइड लोग उसे परेशान करने में कोई कसर उठा न रखते। रेट के बारे में वे कम्पटीशन शुरू कर देते—साहब, मेरे यहां बढ़िया कमरा चार रुपये रोज पर मिल जायगा, भोजन खाना आपकी इच्छा पर है। दूसरा कहता, हजूर, मेरे यहां भोजन के साथ सात रुपये रोज पर बढ़िया कमरा हाजिर है। तीसरा कहता, सरकार, मैं आपको दो रुपये रोज पर कमरा दे दूंगा। आखिर, मुसाफिर एक रुपया या बारह आने रोज पर कमरा तय करके किसी गाइड के साथ चला जाता, अन्य सब गाइड निराश होकर रह जाते। इन गाइडों के मारे मैं परेशान था; कोई यात्री होटल मॉडर्न में नहीं आ पाता था। जब बारह आने रोज पर बिना भोजन के या पांच रुपये दैनिक पर भोजन के साथ दूसरे होटलों में कमरे मिलते हों, तो बारह रुपये प्रति दिन का रेट देकर कौन [illegible] मेरे यहां आता? होटल मॉडर्न में बे-रौनकी आ गई थी। जिस डाइनिंग हॉल में कई सौ आदमी एक साथ बैठकर भोजन खा सकते थे, वहां अब [illegible] मूर्तियां दिखाई देती थीं। बेयरे और खिदमतगार

हाथ पर हाथ धरे बैठे थे, किसी के पास कोई काम नहीं था। वेतन से तो उनका काम नहीं चलता था, टिप उन्हें तभी मिलती, जब मुसाफिर होते। होटल मॉडर्न के सब कर्मचारी उन सुवर्णीय दिनों की याद करके ठण्डी सांस लेते थे, जब भारत में साहब लोगों का राज था, जब बरसात में भी रामनगर में तिल रखने को जगह नहीं मिलती थी। मैं खुद भी परेशान था, क्योंकि दस-बारह मेहमानों से इतनी भी आमदनी नहीं थी, कि कर्मचारियों की तनख्वाहें भी दी जा सकती। पर प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त मेरे सम्मुख अन्य कोई उपाय नहीं था। मैंने सुन रखा था, कि बरसात के बाद सितम्बर-अक्टूबर के महीनों में रामनगर में फिर रौनक होती है, दसहरे की छुट्टी में एक बार फिर साहब लोग पहाड़ों पर आते हैं।

जुलाई-अगस्त में मेरे पास फुरसत की कमी नहीं थी। सच पूछिये तो इन दिनों मेरे पास काम ही कोई नहीं था। इसीलिये जो कोई यात्री होटल मॉडर्न में आ जाता, उसका मैं उत्साहपूर्वक स्वागत करता, और उसके साथ बातचीत करके अपने मन को बहलाने का प्रयत्न किया करता। १७ जुलाई को एक सज्जन मेरे पास आये, जो देखने-भालने में बहुत साधारण आदमी प्रतीत होते थे। खुले गले का कमीज, पुराना स्वेटर और खाकी पतलून—यह इनका परिधान था। नमस्कार के बाद वे मेरे पास बैठ गये और होटल मॉडर्न में कोई कमरा किराये पर लेने की बात करने लगे। जिस ढंग के लोगों को अपने होटल में स्थान देने की मुझे आदत थी, स्पष्टतया ये उनमें से नहीं थे। बातचीत के सिलसिले में मालूम हुआ, कि शुक्लाजी स्थानीय हायर सेकेण्डरी स्कूल में सेकण्ड मास्टर हैं। कोई सात सालसे वे रामनगर में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। उन्हें मंहगाई मिलाकर १३५ रु० मासिक वेतन मिलता है। तीस-पैंतीस रुपया वे टयूशन द्वारा कमा लेते हैं। १९४१ में जब वे रामनगर में आये थे, तो २२५ रुपया साल पर एक छोटा-सा मकान उन्होंने किराये पर ले लिया था। यद्यपि मकान बहुत छोटा था, कुल मिलाकर उसमें तीन कमरे थे, पर उसमें उनका निर्वाह भली भांति

हो जाता था। महायुद्ध के समय में जब जापान की सेनायें बरमा तक पहुंच गईं, और बहुत-से अंग्रेज वहां से भागकर भारत में आ गये, तो रामनगर में मकानों की मांग बहुत अधिक बढ़ गई। शर्माजी के मकान-मालिक श्री प्यारेलाल साह थे, जिनकी रामनगर में बहुत अधिक जायदाद थी। उनकी किराये की आमदनी एक लाख रुपया वार्षिक के लगभग थी, और किराया वसूल करने के अतिरिक्त उनका अन्य कोई पेशा नहीं था। साहजी अनुभव करते थे, कि जो मकान शर्माजी को उन्होंने १९४१ में २२५ रु० वार्षिक पर दे दिया था, उससे १९४२ में कम से कम ५०० रुपया वसूल हो सकता था। वे चाहते थे, कि जिस तरह भी सम्भव हो, शर्माजी को बेदखल कर दें। पर वे बेबस थे, क्योंकि १९४२ में सरकार ने भारत-रक्षा-कानून (डिफेन्स आफ इण्डिया ऐक्ट) के अधीन यह व्यवस्था कर दी थी, कि किसी किरायेदार को न बेदखल किया जा सके और न उस किराये से अधिक ही वसूल किया जा सके, जो कि १९४२ के शुरू में मिलता था। महायुद्ध के दौरान में साहजी 'पंजरबद्ध कीर' के समान छटपटाते रहे, और शर्माजी पर वार करने का उन्हें कोई मौका नहीं मिला। महायुद्ध की समाप्ति पर, भारत-रक्षा-कानून के अधीन जो आर्डिनेन्स जारी किये गये थे, उन्हें रद्द कर दिया गया। पर शहरों में मकानों की अब भी बहुत कमी थी। अतः उत्तर-प्रदेश की सरकार ने एक नया कानून पास किया, जिसका प्रयोजन यह था, कि मकान-मालिक अपने उन किरायेदारों को बेदखल न कर सकें, जो नियम-पूर्वक अपना किराया समय पर अदा कर देते हैं। पर इस कानून में यह गुंजाइश रखी गई थी, कि यदि किसी मकान मालिक को खुद अपने इस्तेमाल के लिये किसी मकान की जरूरत हो, तो वह [illegible] मजिस्ट्रेट से उस मकान के किरायेदार को बेदखल करा सकने की अनुमति प्राप्त कर सकता है। १९४७ में भारत का विभाजन हुआ, और पश्चिमी पाकिस्तान से लाखों हिन्दू व सिख शरणार्थी बनकर भारत आने लगे। बहुत-से शरणार्थी ऐसे थे, जो अपने जेवरात व नकद रुपया साथ

से आने में समर्थ हुए थे, और दुगुना-चौगुना किराया देकर कहीं भी सिर ढंकने की जगह प्राप्त कर लेने के लिये उत्सुक थे। रामनगर की स्वास्थ्य-प्रद जलवायु से आकृष्ट होकर हजारों शरणार्थी वहां भी आ गये थे, और इसके कारण वहां मकानों के किरायों में बहुत अधिक वृद्धि हो गई थी। श्री प्यारेलाल साह के लिये इससे बढ़िया मौका और कौन-सा हो सकता था। दूसरों की मुसीबत उनके लिये सुवर्णीय अवसर था। उनके जो मकान खाली थे, उन्हें वे चौगुने-पंचगुने किराये पर शरणार्थियों को चढ़ा रहे थे। इस दशा में यह सर्वथा स्वाभाविक था, कि वे शर्माजी को बेदखल करने के लिये कोई कसर न उठा रखें। जिस मकान का अब उन्हें सात-आठ सौ रुपया किराया सुगमता से मिल सकता था, उसे सवा दो सौ रुपये पर दिये रखना उन्हें सर्वथा अनुचित व व्यवहार-विरुद्ध प्रतीत होता था। शर्माजी की तरह ही अन्य भी अनेक किरायेदार थे, जिन्हें श्री प्यारेलाल साह बेदखल करना चाहते थे, ताकि उनके मकानों को ज्यादा किराये पर दूसरे लोगों को दिया जा सके। उन्होंने अपने वकील से सलाह ली। वकील ने कहा, आप जिला मजिस्ट्रेट साहब की अदालत में एक दरख्वास्त दे दीजिये, जिसमें यह लिखिये कि इन मकानों की अपने निजी इस्तेमाल के लिए जरूरत है, अतः उनमें किरायेदारों को बेदखल करने की अनुमति प्रदान की जाय।

वकील साहब के परामर्श के अनुसार साहजी की तरफ से आवश्यक दरख्वास्त जिला-मजिस्ट्रेट साहब की खिदमत में पेश कर दी गई। किराये-दारों के नाम नोटिस जारी हो गये, और १५ जून की तारीख पेशी के लिये डाल दी गई। साहजी केवल अदालती कार्रवाई से ही सन्तुष्ट होनेवाले आदमी नहीं थे। वे भली भांति समझते थे, कि हाकिमों के साथ मेल-मुलाकात बढ़ाने से [illegible] ती है, और अदालती काम में भी मदद मिल [illegible] ों से वे अवसर मिलते रहते थे, उनकी खिदमत व आरजू-मिन्नत में भी वे कोई कसर बाकी नहीं रखते थे। १० जून के लगभग जब इन्टरमीडियेट परीक्षा के परिणाम प्रकाशित हुए,

तो साहजी के सुपुत्र श्री रामलाल साह का नाम भी उन सौभाग्यशाली परीक्षार्थियों में था, जो एफ० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। यद्यपि रामलाल थर्ड डिवीजन में पास हुए थे, पर एक लक्षाधीश के सुपुत्र के लिये यह भी मामूली बात नहीं थी, कि उसने एफ० ए० जैसी उच्च परीक्षा को पास कर लिया था। साहजी ने सोचा, जिला-मजिस्ट्रेट साहब की आवभगत करने का यह अच्छा मौका है। उन्होंने लड़के के पास होने की खुशी में एक बड़े भोज का आयोजन किया। शहर के सब रईसों व धनी-मानी लोगों को इसमें शामिल होने का निमन्त्रण दिया गया। मजिस्ट्रेट साहब की सेवा में साहजी खुद हाजिर हुए, और उनसे सानुरोध प्रार्थना की, कि वे भोज में अवश्य सम्मिलित हों, और इस शुभ अवसर पर मेम साहब को भी अवश्य साथ लावें। भारत में अब स्वराज्य स्थापित हो चुका था। बड़े सरकारी अफसर भी यह अपना कर्तव्य समझते थे, कि जनता के साथ सम्पर्क में आने के किसी अवसर को हाथ से न जाने दें। जिला-मजिस्ट्रेट साहब ने साहजी के निमन्त्रण को स्वीकृत कर लिया। १२ जून को साहजी के पुत्र के पास होने की खुशी में जो शानदार भोज हुआ, मजिस्ट्रेट साहब उसमें सपरिवार शामिल हुए। साहजी ने उनकी आवभगत में कोई कसर नहीं उठा रखी। रामलाल साह की छोटी बहन ने मजिस्ट्रेट साहब के गले में एक पुष्पमाला पहनाई, जिसमें फूलों के साथ-साथ सोने का सच्चा गोटा भी गुंथा हुआ था। प्यारेलाल साहजी की धर्मपत्नी ने अपने हाथ से मजिस्ट्रेट साहब के लिये चाय बनाई। भोज की समाप्ति पर साहजी ने मिठाई और फलों से भरे हुए दो टोकरे मजिस्ट्रेट साहब की कोठी पर भी भिजवा दिये।

१५ जून को जिला-मजिस्ट्रेट साहब की अदालत में शर्माजी को बेदखल करने का मामला पेश हुआ। साहजी के अन्य अनेक किसानों की [?] बेदखली का मामला भी इसी दिन पेश किया गया। साहजी खुद अदालत में हाजिर नहीं हुए। [illegible] वकील पेश

हुए, और उन्होंने निवेदन किया, कि साहजी शरणार्थी महिलाओं की मदद के लिये एक दस्तकारी स्कूल खुलवाना चाहते हैं। इसमें विधवा व असहाय शरणार्थी स्त्रियों को कपड़े सीने, स्वेटर बुनने व इसी तरह के शिल्प की मुफ्त शिक्षा दी जायगी। साहजी ने अपनी एक आलीशान कोठी इस पुनीत उद्देश्य से स्कूल को बिना किराये के दे दी है। पर स्कूल के अध्यापकों के निवास के लिये कोई समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी है। यही कारण है, कि वे शर्माजी व कतिपय अन्य किरायेदारों से मकान खाली कराना चाहते हैं। जब साहजी के वकील अपना बयान खतम कर चुके, तो शर्माजी ने मजिस्ट्रेट साहब को सम्बोधन कर कहा—हुजूर, साहजी के पास लाख से ऊपर किराये की जायदाद रामनगर में है। उनकी कितनी ही कोठियां अब भी खाली पड़ी हैं। पहाड़ की चोटी पर स्थित एक पुरानी कोठी, जो दस साल से कभी किराये पर नहीं चढ़ी, उन्होंने स्कूल के निमित्त दे दी है। उसके समीप ही उनकी अन्य भी कितनी ही कोठियां हैं, जहां अध्यापकों के निवास के लिये जगह दी जा सकती है। साहजी ने बेदखली की जो दरख्वास्तें दी हैं, उनका उद्देश्य केवल यह है, कि इन मकानों को खाली कराके इन्हें ज्यादा किराये पर चढ़ाया जाय। शर्माजी ने असली बात अदालत के सम्मुख रख दी थी, पर मजिस्ट्रेट साहब साहजी के खिलाफ इस आरोप को नहीं सह सके। उन्होंने डांटकर कहा—"जानते हो, तुम किसके सामने बोल रहे हो?" शर्माजी मुझे कहते थे, कि वे मजिस्ट्रेट साहब से कहना चाहते थे—"हुजूर, मैं भली भांति जानता हूं, कि मैं एक ऐसे सार्वजनिक सेवक (पब्लिक सर्वेन्ट) के सम्मुख बोल रहा हूं, जिसे जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित सरकार की ओर से न्याय करने के लिये नियुक्त किया गया है, पर जिसकी आंखें साहजी की खुशामद, आवभगत और रिश्वत के कारण अन्धी हो गई हैं।" पर वे अपने मन के भाव को शब्दों द्वारा प्रगट नहीं कर सके। वे चुप हो गये। उन्हें यह भी भय था, कि कहीं अदालत की तौहीन (कन्टम्प्ट आफ कोर्ट) के अभियोग में उनके हाथों में उसी समय हथकड़ियां न डाल

दी जावें। मजिस्ट्रेट साहब को फैसला सुनाने में एक मिनट की भी देर नहीं लगी। शर्माजी व उनके समान अन्य दर्जनों किरायेदारों को बेदखल करने का हुकुम उसी समय सुना दिया गया। मजिस्ट्रेट साहब से बेदखली की अनुमति प्राप्त कर शाहजी ने तुरन्त सब किरायेदारों को एक-एक महीने का नोटिस मकान खाली कर देने के लिये दे दिया, और रामनगर के ये निम्न-मध्य-श्रेणी के लोग बात की बात में बे-घरबार हो गये।

शर्माजी मकान की समस्या के कारण बेहद परेशान थे। १८ जुलाई को उन्हें अपना मकान खाली कर देना था। रामनगर के सब छोटे मकान शरणार्थियों या यात्रियों द्वारा घिरे हुए थे। शहर से दूर किसी पुरानी कोठी में बाल-बच्चों के साथ रह सकना उनकी शक्ति में नहीं था। बड़ी कोठी का किराया भी वे कैसे देते? वे मेरे पास इसीलिये आये थे, कि होटल मॉडर्न के नौकरों के क्वार्टरों में यदि कोई स्थान उन्हें मिल जाय, तो वहां रहकर वे अपने बच्चों की हवा-पानी और ठण्ड से रक्षा कर सकें। शर्माजी की करुण कथा को सुनकर मेरा हृदय पिघल गया। मैंने उनसे कहा, आप चिन्ता न करें, होटल के सब कमरे इन दिनों खाली पड़े हैं, आप एक तरफ के दो कमरे ले लीजिये। उनका किराया मैं कुछ नहीं लूंगा, पर बिजली और पानी के खर्च के पांच रुपये प्रति मास आपको देने होंगे। शर्माजी को मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। इस बीसवीं सदी में कोई ऐसा भी आदमी हो सकता है, जो होटल मॉडर्न जैसे शानदार होटल के दो कमरे निम्न मध्यवर्ग के परिवार के लिये मुफ्त दे सके—यह बात उनकी कल्पना से भी परे थी। उन्होंने समझा, मैं मजाक कर रहा हूं। पर मैं मजाक नहीं कर रहा था। १८ जुलाई को शर्माजी होटल मॉडर्न में पधार गये, और जब तक मैं रामनगर में रहा, मुझे शर्माजी आशीर्वाद देते रहे। ब्राह्मण होने के कारण आशीर्वाद देना उनका स्वाभाविक अधिकार था।

हां, यहां मैं यह भी लिख देना चाहता हूं, कि शाहजी की स्वप्नकारी स्कूल की योजना क्रिया में परिणत नहीं हो सकी। न उन्हें उपयुक्त अध्या-

पक मिल सके, और न ही शरणार्थी महिलाओं ने स्कूल से लाभ उठाने की उत्सुकता ही प्रदर्शित की। परिणाम यह हुआ, कि दो-तीन सप्ताह तक स्कूल के लिये आगे दिल से हाथ-पैर पटककर शाहजी ने अपने मकानों को मौंगने किराये पर शरणार्थियों व अन्य किरायेदारों को दे दिया। शर्माजी ने मुझे बताया था, कि जिस मकान के लिये वे २२५ रु० वार्षिक किराया देते थे, उस पर पचास-सौ रुपया मरम्मत आदि में खर्च कर शाहजी ने उसे ९०० रु० वार्षिक पर चढ़ा दिया था।

## ( २४ )

## स्वतन्त्रता-दिवस

१५ अगस्त, १९४८ को भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्रथम वार्षिकोत्सव था। यह दिवस भारत में सर्वत्र बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। रामनगर में भी इस उत्सव को समारोह-पूर्वक मनाने का आयोजन किया गया। १० अगस्त को जिला-मजिस्ट्रेट साहब की ओर से एक मीटिंग उनके दफ्तर में बुलाई गई, जिसमें उच्च सरकारी कर्मचारियों, स्थानीय संस्थाओं के पदाधिकारियों और रामनगर के प्रमुख नागरिकों को बुलाया गया। इस मीटिंग का नोटिस रामनगर के एस० डी० एम० साहब की ओर से जारी किया गया था। मैं भी निमन्त्रित सज्जनों में था, क्योंकि मैं रामनगर के सबसे बड़े होटल का मालिक या संचालक था। मीटिंग का समय तीसरे पहर ढाई बजे रखा गया था, क्योंकि हमारे जिला-मजिस्ट्रेट साहब को लंच खाने के बाद घण्टा भर आराम करने की फुरसत भी मिल जाती थी। पौने तीन बजे तक दस-बारह सज्जन कलेक्टर्स बंगलो में पहुंच गये, और अर्दली के इत्तला देने पर करीब तीन बजे जिला-मजिस्ट्रेट साहब भी मीटिंग में शामिल हो गये। उपस्थित सज्जनों में केवल दो ऐसे थे, जिनके सिर पर गांधीटोपी थी। इनमें से एक के कपड़े भी खादी के थे। ये दोनों

महानुभाव रामनगर-कांग्रेस-कमेटी के प्रधान और मन्त्री थे । शेष सब सज्जन विशुद्ध विदेशी पोशाक में थे, कोट-पतलून और नेकटाई धारण किये हुए । अंग्रेजी भाषा में मीटिंग की कार्रवाई शुरू हुई । शुरू में एस० डी० एम० साहब ने प्रान्तीय सरकार का वह सर्क्युलर पढ़कर सुनाया, जो १५ अगस्त के स्वतन्त्रता-दिवस के मनाने के सम्बन्ध में सब सरकारी अफसरों को भेजा गया था । यह सर्क्युलर भी अंग्रेजी में था । इसके बाद जिला-मजिस्ट्रेट साहब ने फरमाया, कि आप लोग १५ अगस्त के दिन को समारोहपूर्वक मनाने के सम्बन्ध में अपने-अपने परामर्श दें । कुछ सज्जनों ने कुछ बातें कहीं, पर एकदम उत्साह या जोश से शून्य । कोई पौन घण्टे में सभा की कार्रवाई समाप्त हो गई । शहर के प्रमुख नागरिकों की इस सभा में यह निश्चय हुआ, कि १५ अगस्त को सुबह एक जुलूस कचहरी से शुरू हो और रामनगर के सब बाजारों का चक्कर काटकर पुलीस-स्टेशन पर समाप्त हो । नौ बजे कलेक्टर साहब कोतवाली पर राष्ट्रीय पताका फहरायें; और सायंकाल चार बजे चौक में एक सार्वजनिक सभा हो, जिसके सभापतित्व के लिये जिले के किसी सम्मान्य नेता से प्रार्थना की जाय । दिन में स्कूलों के बच्चों को मिठाई बांटी जावे, और गरीब लोगों को भोजन वितरण किया जाय । रात के समय सब जगह दिवाली हो, सब सार्वजनिक इमारतों पर राष्ट्रीय झण्डे फहराये जावें, और जनता से भी अनुरोध किया जाय, कि वह अपने मकानों व दूकानों को झण्डों से सजाये व दिवाली मनाये ।

स्वतन्त्रता-दिवस का प्रोग्राम बनकर तैयार हो गया, और एस० डी० एम० साहब को आदेश दे दिया गया, कि वे इस प्रोग्राम को क्रिया में परिणत करने के लिये सब मुनासिब कार्रवाई कर लें । एस० डी० एम० साहब को अपने कार्य में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई । उन्होंने कोतवाली, कचहरी, पोस्ट-आफिस, स्कूल आदि सर्वत्र स्वतन्त्रता-दिवस के कार्यक्रम की सूचना भेज दी और जनता को इस उत्सव के प्रोग्राम की सूचना देने के

लिये मुनादी करवा दी। १५ अगस्त का दिन आया, और मैं भी सुबह ही नित्यकर्मों से निवृत्त होकर बाजार में एक स्थान पर आ खड़ा हुआ। कोई दस मिनट की प्रतीक्षा के बाद मैंने देखा, कि स्वतन्त्रता-दिवस का जुलूस चला आ रहा है। सबसे आगे फौजी जवानों की एक टुकड़ी थी, अपनी नियत वर्दी पहने हुए। उनके पीछे पुलीस के सिपाही थे, खाकी कपड़े और लाल पगड़ी धारण किये हुए। पुलीस के पीछे रामनगर के विविध स्कूलों की लड़कियां और लड़के थे, अपने-अपने शिक्षकवर्ग के साथ। रामनगर में अनेक ऐसे भी स्कूल थे, जिनका संचालन यूरोपियन ढंग से होता था, और जिनके विद्यार्थियों में बहुसंख्या विदेशी या एंग्लोइण्डियन विद्यार्थियों की थी। ये सब भी इस जुलूस में शामिल थे, क्योंकि एस० डी० एम० साहब का हुकुम उन्हें भी पहुंच गया था। स्कूलों के छात्रों के बाद रामनगर के विविध सरकारी अफसर व उच्च कर्मचारी चल रहे थे, सोला हैट या फेल्ट कैप पहने हुए। सबसे पीछे नगर के तीस-पैंतीस नागरिक थे, जिनमें बहुसंख्या स्थानीय कांग्रेस-कमेटी के सदस्यों की थी। रामनगर की स्थिर आबादी दस हजार से कम नहीं थी, और अगस्त के महीने में भी बाहर से आये हुए यात्रियों की संख्या वहां आठ हजार के लगभग थी। मुझे यह देखकर अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ, कि १८ हजार की जनता में से केवल तीस-पैंतीस आदमी स्वतन्त्रता-दिवस के जुलूस में शामिल हुए थे। जुलूस में कोई उत्साह नजर नहीं आता था। फौज के जवान चुपचाप चल रहे थे, शान्त वातावरण में उनके जूतों की खटखटाहट दूर-दूर तक सुनी जा सकती थी। पुलीस के सिपाही 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम' धीरे-धीरे गाते हुए चल रहे थे। एंग्लोइण्डियन स्कूलों के विद्यार्थी एक दूसरे से गप्पें मारते हुए जा रहे थे। छुट्टी के कारण वे खुश थे और जुलूस में चलना उन्हें एक तमाशा-सा प्रतीत हो रहा था। केवल देसी स्कूलों के विद्यार्थी ऐसे थे, जो उमंग से भरकर देशभक्ति के गाने गा रहे थे। उनके पीछे जो सरकारी अफसर चल रहे थे, वे एकदम गम्भीर मुद्रा में थे, या तो उनके सिर

पर यह चिन्ता अवश्य थी, कि कहीं इस मौके पर शान्ति भंग न हो जाय। देश के बड़े नेता बार-बार अपने व्याख्यानों में कहा करते थे, कि हमें दो शत्रुओं से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करनी है, कम्युनिस्टों से और कम्युनलिस्टों से। रामनगर के सरकारी अफसरों को भय था, कि कोई कम्युनिस्ट (साम्यवादी) या कम्युनलिस्ट (सम्प्रदायवादी) जलूस पर हमला न कर दे। इसलिये वे गम्भीर मुद्रा बनाये चल रहे थे, इस इरादे के साथ कि. अगर किसी आदमी ने जुलूस में किसी किसम का विघ्न डाला, तो उचित कार्रवाई करने में क्षण भर की भी देर नहीं की जायगी। जुलूस में सबसे पीछे जो कांग्रेसी सज्जन चल रहे थे, वे उत्साह के साथ 'महात्मा गांधी की जय', 'पण्डित जवाहरलाल जिन्दाबाद', 'मौलाना आजाद जिन्दाबाद' आदि के नारे लगा रहे थे। सर्वसाधारण लोग दूकानों पर या मकानों के बरामदों में खड़े होकर इस जुलूस को उसी ढंग से देख रहे थे, जैसे कि वे जैनियों की रथयात्रा के या हिन्दुओं की रामलीला के जुलूस को देखा करते हैं। उनमें स्वतन्त्रता-दिवस के लिये न कोई उत्साह था, न कोई उमंग। यूरोप की यात्रा करते हुए मैंने फ्रांस में 'स्वतन्त्रता-दिवस' का समारोह देखा था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति को हुए डेढ़ सदी से करीब समय बीत चुका है। पर आज तक भी वहां के लोग उस दिन को कितनी उमंग के साथ मनाते हैं, जिस दिन कि उन्होंने बूर्बो वंश के निरंकुश शासन का अन्त कर लोकतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। [illegible] था, कि ब्रिटिश शासन का अन्त कर भारतीयों ने १५ अगस्त के दिन [illegible] प्राप्त किया, उसके लिये सर्वसाधारण जनता में [illegible] है ? १५ अगस्त के इस जुलूस को देखकर मुझे वे दिन याद आ रहे थे, जब भारत में स्वराज्य-संग्राम चल रहा था, सरकार जुलूसों पर पाबन्दी लगाती थी, पर सत्याग्रही स्वयंसेवक सरकार के हुकुम को तोड़कर जुलूस निकालते थे। जनता [illegible] दर्शनों के लिये टूटी पड़ती थी। बात की बात में हजारों नर-नारी एकत्र हो जाते थे। सत्याग्रही आगे-आगे चलते थे, और

जनता उनके साथ-साथ । पुलीस लाठी चलाती थी, मजिस्ट्रेट साहब गोली चलाने का हुक्म देते थे । पर लाठियां और गोलियां स्वराज्य के सैनिकों के मार्ग को रोक सकने में असमर्थ रहती थीं । उन दिनों के जुलूसों के मुकाबले में १५ अगस्त का यह जुलूस कितना फीका और उमंग-शून्य था ?

साढ़े नौ बजे कोतवाली पर नया राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया । जिला-मजिस्ट्रेट साहब ने झण्डा फहराते हुए एक छोटा-सा भाषण दिया, ठीक उस तरह जैसे कि वे कचहरी में किसी मुकदमे का फैसला सुना रहे हों । सांझ को रामनगर के चौक में जो सार्वजनिक सभा हुई, उसमें उपस्थिति अच्छी थी । कोई दो हजार व्यक्ति उसमें शामिल हुए थे । सभा में जो भाषण हुए, उनमें इस बात पर जोर दिया गया कि स्वराज्य की प्राप्ति के बाद अब जनता का प्रमुख कर्तव्य यह है, कि वह सरकार के साथ सहयोग करे । वे दिन अब बीत गये, जब कि सरकारी अफसरों के कामों की आलोचना करना देशभक्ति की बात समझी जाती थी । अब तो अफसर लोग उन नेताओं के आदेशों का पालन करने में तत्पर हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व स्वाहा कर देश को स्वतन्त्र कराया है । रात के समय सरकारी इमारतों पर दीपक जलाये गये, कुछ सम्पन्न लोगों ने भी अपने प्रासादों में दिवाली मनाई । पर सर्वसाधारण जनता के मकानों पर पुन कहीं भी दीपक नहीं दिखाई दिये । सरकार की ओर से इस अवसर पर दिवाली मनाने के लिये खास तौर पर खर्च मंजूर हुआ था । अफसर लोगों को उसे खर्च करना ही था । शहर के बड़े आदमी अपने घरों में दीपक जलाकर सरकार की निगाह में देशभक्त बनने के लिये उत्सुक थे । उन्होंने भी सरकार के आदेश का पालन करना ही था । जब महायुद्ध की समाप्ति पर 'वी डे' (विजय-दिवस) मनाया गया, तब भी उन्होंने ब्रिटिश प्रभुओं को खुश करने के लिये दिवाली मनाई थी । यह कैसे सम्भव था, कि अब कांग्रेसी प्रभुओं को खुश करने में वे पीछे रहते ? उन्होंने इस अवसर पर दिल खोलकर खर्च किया । स्थानीय कांग्रेस-कमेटी के पदाधिकारी इस बात से सन्तुष्ट थे, कि

शहर के धनी-मानी लोग स्वतन्त्रता-दिवस मनाने में पूरी तरह सहयोग कर रहे हैं। उस दिन रामनगर की क्लब में स्पेशल डान्स और कैबरे (नृत्य-प्रदर्शन) की भी व्यवस्था की गई थी। धनी व बड़े आदमियों ने इस 'फंक्शन' में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। क्लब में तो वे प्रायः रोज ही जाते थे; रोज ही वे वहां डान्स करते थे, कैबरे देखते थे, और सुरा-पान द्वारा अपनी प्यास को शान्त करते थे। पर १५ अगस्त को क्लब में रात बिताना उत्कट देश-प्रेम का परिचायक था। उस दिन क्लब की एंग्लो-इण्डियन सिंगर (गायिका) ने अंग्रेजी गीतों के साथ-साथ हिन्दी में भी एक गीत गाया। जब उसने फिल्मी स्वर में 'चल चल रे नौजवान' गाना शुरू किया, तो क्लब में उपस्थित साहब और मेम साहब हर्ष से नाच उठे, क्लब का विशाल भवन करतल-ध्वनि से गूंज उठा, और लोगों ने अनुभव किया, कि अब भारत में सचमुच स्वराज्य स्थापित हो गया है। इस दिन रामनगर-क्लब द्वारा मनाये गये स्वतन्त्रता-महोत्सव में अनेक देशभक्त कांग्रेसी नेता भी शामिल हुए थे। खादी के श्वेत वस्त्र पहने हुए ये सज्जन गोरों की मण्डली में हंसों के समान प्रतीत होते थे। शराबबन्दी का आन्दोलन करनेवाले ये सज्जन आज ह्विस्की के 'छोटा पेग' का आर्डर देकर उसके रसास्वादन में तत्पर थे। मैं उन्हें इसके लिये दोष नहीं देता। आज स्वातन्त्र्य-दिवस की खुशी में वे अपनी सुध-बुध भूल गये थे। जिस स्वराज्य-संग्राम के लिये वे अनेक बार जेल गये, अपने तन-मन-धन को अर्पण किया, उसकी सफलता की खुशी में यदि वे एक दिन अपने सिद्धान्त व आदर्श से च्युत हो जावें, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जगन्नाथ-पुरी में ब्राह्मण तक अछूत के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने में एत-राज नहीं मानता। [illegible] में यदि रामनगर-क्लब में आकर कांग्रेसी नेता भी [illegible] —विशेष-तया उस अवसर पर जब कि एक एंग्लो-इण्डियन गायिका भी 'चल चल रे नौजवान' गा रही हो।

१५ अगस्त का दिन आया और चला गया। सर्वसाधारण जनता ने उसमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ली, कोई खास उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। इसके लिये कौन जिम्मेदार है? स्वराज्य की प्राप्ति के बाद जनता ने अपनी हालत में कोई विशेष परिवर्तन अनुभव नहीं किया, और न ही उसके हृदय में किसी नई उमंग का संचार हुआ। शायद भारत को स्वराज्य बहुत सस्ते में मिल गया था। देश के नेता कहते थे, अंग्रेजो भारत छोड़ो। अंग्रेजों ने कहा, बहुत अच्छा, हम खुद भारत से चले जाते हैं, न केवल भारत से, अपितु सीलोन, बरमा आदि अन्य एशियन देशों से भी। हां, तुम हमसे मैत्री सम्बन्ध कायम रखना। कम्युनिज्म के रूप में जो भयंकर राक्षस मानव-समाज और सभ्यता का संहार करने के लिये मुह बाये चला आ रहा है, उसका मुकाबला करने में हमारी मदद करना। अंग्रेजों को भारत से बाहर धकेलने में हमें कोई लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी। देश का शासन पहले की तरह से जारी रहा। वही फौज, वही पुलीस, वही सरकारी कर्मचारी। जो सरकारी नौकरशाही पहले अंग्रेजी सरकार के हुकुम से जनता पर लाठियां बरसाती थी, गोलियां चलाती थी, अब स्वतन्त्र भारतीय सरकार की 'देशभक्त' सेविका हो गई—केवल भारतीय अफसर ही नहीं, अपितु अंग्रेज और एंग्लो-इण्डियन अफसर भी। अदालतों में अब भी अंग्रेजी पोशाक में शान से ऐंठते हुए अफसरों का शासन था, जो हिन्दी-विषयक अपनी अज्ञता को अभिमान की बात समझते थे, और जो अशुद्ध अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा के समान धड़क होकर बोलते थे। वही कानून थे, और वही अदालतें। हां, दिल्ली और लखनऊ के गवर्नमेण्ट हाउस और सेक्रेटेरियट के दस-बारह कमरों में अब ऐसे लोगों का प्रवेश हो गया था, जिनके सिर पर गांधी-टोपी थी और जो स्वराज्य-संग्राम के सच्चे हुए वीर सैनिक थे। पर सर्वसाधारण जनता को इन मन्त्रियों का दर्शन अब दुर्लभ हो गया था, और उसकी निगाह में अब भी वही राज्य कायम था, जिसके खिलाफ प्रदर्शन करनेवाले सत्याग्रही वीरों पर वह फूलों की वर्षा किया करती थी। इस

अवस्था में यदि १५ अगस्त के स्वतन्त्रता-दिवस में जनता ने विशेष उत्साह न दिखाया हो, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता।

होटल मांउंट में ठहरे हुए एक सज्जन से अगले दिन इस विषय पर चर्चा छिड़ गई। मेरी बात सुनकर वह कहने लगे, देश में ऐसे लोग हैं ही कहां, जिन्हें सरकार का अनुभव हो। यदि आई० सी० एस०, पी० सी० एस० आदि के पुराने अफसरों को उनके पदों से हटा दिया जाय, तो उनका कार्य कौन संभाल सकेगा? देश में अव्यवस्था मच जायगी और सरकार का काम चला सकना असम्भव हो जायगा। एक अन्य महानुभाव हमारी इस बहस को ध्यान से सुन रहे थे। वे तुरन्त बोल उठे, यदि सर जे० पी० श्रीवास्तव और सर जगदीशप्रसाद की जगह अब डा० केसकर और श्री लालबहादुर शास्त्री ले सकते हैं, तो इन आई० सी० एस० अफसरों की जगह वे सुशिक्षित सत्याग्रही सैनिक क्यों नहीं ले सकते, जिन्हें जनता की सेवा का और उसे नियन्त्रण में रखने का अच्छा अनुभव है? यह जरूरी नहीं, कि अंग्रेजी सरकार की दूषित परम्परा में पले हुए सब अफसरों को एकदम उनके पदों से पृथक् कर दिया जाय। पर यदि प्रत्येक जिले में दो-एक भी ऐसे नये अफसर नियत कर दिये जावें, जो मंजे हुए देशसेवक होने के साथ सुशिक्षित भी हों, तो शासनकर्गों की मनोवृत्ति में परिवर्तन आने में बहुत देर नहीं लगेगी। हर जिले में दस-बारह उच्च अफसर होते हैं, इनमें केवल एक-दो ऐसे नये अफसर रख दीजिये, जो कांग्रेस के आदर्शों में पूरा विश्वास रखते हों और उन्हें क्रिया में परिणत करने के लिये कटिबद्ध हों। अफसरों की अपनी एक पृथक् श्रेणी होती है, वे बहुधा एक दूसरे से मिलते रहते हैं, एक दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होते हैं, आपस में खुलकर बातचीत करते हैं। जिस प्रकार थोड़ा-सा जाग सारे दूध को दही के रूप में परिवर्तित कर देता है, वैसे ही जिले में नियुक्त हुए कांग्रेसी आदर्शों के अनुयायी एक-दो अफसर भी अपने अन्य साथी अफसरों में नई भावना को उत्पन्न कर सकने में अवश्य समर्थ होंगे। यदि हमें प्रत्येक प्रान्त के लिये दस-बारह मन्त्री मिल

सकते हैं, सैकड़ों एम० एल० ए० और दर्जनों एम० पी० मिल सकते हैं, तो यह क्योंकर सम्भव नहीं है, कि उत्तर-प्रदेश जैसे विशाल प्रान्त के लिये सौ के करीब ऐसे अफसर भी मिल सकें, जिन्होंने अपने जीवन का बड़ा भाग देश-सेवा और स्वराज्य-प्राप्ति के लिये होम कर दिया हो ?

जब मेरे दफ्तर में बैठे हुए होटल के मेहमान यह बहस कर रहे थे, तो मेरे कानों में एक गीत की कुछ पंक्तियां गूंज रही थीं, जिसे मैंने १५ अगस्त के स्वातन्त्र्य-समारोह में लाउडस्पीकर द्वारा दूर-दूर तक प्रसारित किये जाते हुए सुना था। इस गीत की एक पंक्ति यह थी—"वह गोरा छोरा चला गया, अब डरने की कोई बात नहीं।" यह गीत हमारी उस मनोवृत्ति को सूचित करता था, जो स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी हमारे देश में विद्यमान थी। बेशक गोरा छोरा भारत से चला गया था, पर वह अपना गहरा असर हमारे दिलों पर छोड़ गया था, उसकी विभीषिका अभी तक भी हमारे मनों से दूर नहीं हुई थी। अगर कहीं इस देश में भी खूनी क्रान्ति हुई होती, हजारों अंग्रेज जनता के कोप के शिकार हुए होते, तो शायद जनता को लाउडस्पीकर द्वारा यह बताने की जरूरत न होती, कि अब गोरा छोरा चला जा चुका है, और अब तुम्हें उससे डरने की आवश्यकता नहीं है। तब शायद हमारे सरकारी अफसरों और धनी-मानी सज्जनों की यह हिम्मत न होती, कि वे १५ अगस्त के स्वतन्त्रता-दिवस के जुलूस में भी अंग्रेजी सूट पहनकर शामिल हों, और अंग्रेजी भाषा में स्वतन्त्रता-महोत्सव के कार्यक्रम को प्रकाशित करें। पर हमारी क्रान्ति तो शान्तिमय थी। खून की एक भी बूंद बहाये बिना हमने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्त किया था। शायद शान्तिमय उपायों से ही हम अंग्रेजों के समान अंग्रेजियत को भी इस देश से बहिष्कृत करने में समर्थ हो सकेंगे। यदि यह हो सका, तो महात्मा गान्धीजी के सिद्धान्तों की भारी विजय होगी, और हमारा देश सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र हो जायगा।

# (२९)
# चुनाव की धूमधाम

अगस्त का महीना अभी समाप्त नहीं हुआ था, कि एक बार फिर रामनगर में म्युनिसिपल-कमेटी के चुनाव की धूमधाम शुरू हो गई। अखबारों में यह समाचार प्रकाशित हुआ, कि उत्तर-प्रदेश की सरकार सन् १९४८ की समाप्ति से पूर्व ही म्युनिसिपल-कमेटियों का नया चुनाव कराने की व्यवस्था कर रही है, जो बालिग-मताधिकार के आधार पर होगा। प्रत्येक बालिग स्त्री-पुरुष को वोट देने का अधिकार होगा। अन्य शहरों के समान रामनगर में भी मतदाताओं की लिस्ट बननी शुरू हो गई, और म्युनिसिपैलिटी के बहुत-से कर्मचारी घर-घर जाकर बालिग स्त्री-पुरुषों के नाम, पते, आयु, पेशा आदि नोट करने में तत्पर हो गये। स्थानीय कांग्रेस-कमेटी ने एक नोटिस जारी किया, कि जो व्यक्ति कांग्रेस के टिकट पर म्युनिसिपल-कमेटी की सदस्यता के लिये उम्मीदवार खड़े होना चाहें, वे १५ सितम्बर तक अपने-अपने प्रार्थना-पत्र कांग्रेस-कमेटी के मन्त्री महोदय की सेवा में भेज दें। अन्य पार्टियों ने भी चुनाव के लिये सरगरमी दिखानी शुरू कर दी, और अनेक धनी सज्जन भी अपने पैसे के जोर पर जनता के वोट प्राप्त करने के लिये तैयारियां करने लगे।

न मैं राम[illegible] : [illegible] था और न मुझे वहां की म्युनिसिपल-कमेटी में कोई [illegible] र होटल मॉडर्न का मालिक होने के कारण मेरा नाम भी वोटरों की लिस्ट में आ गया था। होटल मॉडर्न के कर्मचारियों की संख्या सत्तर के लगभग थी, और प्रायः सभी कर्मचारी अपने बाल-बच्चों के साथ निवास करते थे। अतः होटल मॉडर्न के साथ सम्बन्ध रखनेवाले वोटरों की संख्या २०० से भी ऊपर थी। चुनाव के लिये इन २०० वोटरों की बहुत कीमत थी, और विविध उम्मीदवार समझते थे, कि मेरे प्रभाव को प्रयुक्त कर वे इन वोटों को सुगमता के साथ

प्राप्त कर सकते हैं। ये उम्मीदवार बड़े-बड़े आदर्शों का ढोल पीटते हुए चुनाव के मैदान में आये थे। पर वोट प्राप्त करने के लिये ये नीच से नीच उपाय का प्रयोग करने में जरा भी संकोच नहीं करते थे। २०० के लगभग वोट मेरी मुट्ठी में हैं, यह इन सबका खयाल था, अतः चुनाव की शतरंज में मेरा महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया था। विविध उम्मीदवार व उनके एजेन्ट बहुधा मेरे पास आते रहते थे, और उनसे अनेक प्रकार की बातें होती रहती थीं। बरसात के दिनों में होटल का तो कोई विशेष काम था नहीं, मेरे लिये समय काटने का यही एक अच्छा हीला बना हुआ था।

२७ अगस्त को डाक्टर रामप्रकाश जोशी बहुत सुबह मुझसे मिलने के लिये आये। डाक्टर जोशी रामनगर के अत्यन्त समृद्ध व प्रतिष्ठित चिकित्सक थे। उनके हाथों में यश था। हजारों बीमार उनसे दवा प्राप्त कर रोग से मुक्त होते और मुक्तकण्ठ से डाक्टर साहब की प्रशंसा किया करते। अपनी डिस्पेन्सरी में नब्ज देखने या बीमारी के विषय में सलाह देने के लिये उनकी फीस आठ रुपये थी। यदि कोई रोगी उन्हें अपने घर पर बुलाये, तो वे उससे सोलह रुपये फीस चार्ज करते थे, रिक्शा, टांगे या घोड़े का खर्च अलग से। डाक्टर जोशी की मासिक आमदनी तीन हजार रुपये से कम नहीं थी। उनका यश दूर-दूर तक फैला हुआ था, और बहुत से लोग गरमियों में रामनगर केवल इसलिये आते थे, कि जोशीजी से इलाज करा सकें। अपने पेशे के मामले में वे गरीबों के साथ कोई रियायत नहीं करते थे। उनका कहना था, दुकानदार अपना माल सबको एक कीमत से बेचता है, हलवाई गरीबों से मिठाई की कम कीमत नहीं लेता। जिसकी जेब में पैसे नहीं होते, वह बढ़िया मिठाई न खरीदकर तेल की जलेबियों से ही मिठाई खाने का शौक पूरा कर लेता है। इसी तरह जिन लोगों के पास नब्ज दिखाने के लिये जेब में आठ रुपये न हों, उन्हें किसी घटिया डाक्टर, वैद्य या हकीम के पास चले जाना चाहिये। वे किसी के साथ किसी ढंग की रियायत क्यों करें? फिर गरीबों के लिये सरकारी अस्पताल खुले हैं, जहां

मुफ्त दवाई मिलती है। उन्हें मेरे-जैसे बड़े डाक्टर के पास आने की क्या जरूरत है? तीस साल की प्रैक्टिस से डाक्टर जोशी ने लाखों रुपये जमा कर लिये थे। रामनगर में उनकी कई कोठियां थीं। वित्तैषणा पूरी हो जाने पर अब उनके सिर पर लोकैषणा का भूत सवार हुआ था। वे चाहते थे, कि वे म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य चुने जावें, और यदि सम्भव हो, तो चेयरमैन भी। उन्होंने कांग्रेस से टिकट प्राप्त करने की कोशिश की, पर उसमें वे सफल नहीं हुए। पर इससे उन्हें विशेष दुःख नहीं था। वे समझते थे, कि रामनगर के सम्पन्न वर्ग में उनकी जो प्रतिष्ठा व हैसियत है, उसके कारण उन्हें स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में भी अवश्य सफलता प्राप्त हो जायगी। वे रुपये को पानी की तरह बहा रहे थे, और विष्णुशर्मा के इस मन्तव्य पर उन्हें पूरा-पूरा विश्वास था—'यस्यार्थस्तस्य मित्राणि, यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः'। जिसके पास रुपया है, उसे मित्रों और बन्धु-बान्धवों की क्या कमी है। रुपये के जोर पर म्युनिसिपल चुनाव में वे अवश्य सफल हो जावेंगे, इस बात में उन्हें जरा भी सन्देह नहीं था।

डाक्टर जोशी बड़ी नम्रता के साथ मुझसे मिले। इससे पहले भी जोशीजी से चार-पांच बार मेरी भेंट हो चुकी थी। पर इतना विनय उनमें मैंने पहले कभी नहीं देखा था। एक बार मुझे खुद अपने लिये उन्हें विजिट पर बुलाने की आवश्यकता हुई थी। जब फीस के पूरे सोलह रुपये मैंने उनके हाथ पर रख दिये, तब रुपये गिनकर उन्होंने कहा था—फीस तो ठीक है, रिक्शा के तीन रुपये और दे दीजिये। मेरे पास एक रुपये का नोट नहीं था, मैंने दो-दो रुपये के दो नोट उन्हें दे दिये। उन्होंने एक रुपया वापस लौटाने की आवश्यकता नहीं समझी थी। जोशीजी की यही आदत थी। पर आज वे त्याग, जनसेवा और विनय की मूर्ति बने हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा, आप तो जानते ही हैं, मेरा सारा जीवन सेवा में व्यतीत हुआ है, पर अब मैं अपनी सेवा के क्षेत्र को अधिक विस्तृत करना चाहता हूं। इसी उद्देश्य से मैं चुनाव में खड़ा हुआ हूं। आपके सहयोग का मुझे पूरा भरोसा है।

आप कृपा करके होटल के कर्मचारियों को बुला दीजिये, मैं उन्हें भी अपना प्रयोजन समझा दूं। मैंने जोशीजी से कहा—आप वोट की भीख मांगने आये हैं, भिक्षुक दाताओं के घर पर जाता है, उन्हें अपने पास नहीं बुलाया करता। अच्छा यह होगा, कि आप होटल के बेयरों, जमादारों और खिद-मतगारों के क्वार्टरों में जाइये। वहां जाकर उनसे बात कीजिये। उन्हें यहां बुलाना उचित नहीं होगा। मेरी बात डाक्टर जोशी को अच्छी नहीं लगी। वे समझते थे, मैं भी उन्हीं के वर्ग का आदमी हूं, उन्हीं की तरह ठाठ से रहता हूं। वे मेरे पास तो वोट के लिये आ सकते थे, पर तीस-पैंतीस रुपया महीना पानेवाले बेयरों और जमादारों के गन्दे-मैले-कुचैले क्वार्टरों में जाना उनकी हैसियत के अनुकूल नहीं था। पर भीख मांगनेवाला अपनी अकड़ कायम नहीं रख सकता। मुझे साथ चलने के लिये तैयार देख वे भी उठ खड़े हुए, और मेरे साथ नौकरों के क्वार्टरों की तरफ चल पड़े। मैं उनके मनोगत भावों को भली भांति समझ रहा था। वे चाहते थे, कि मैं खुद होटल के नौकरों को उनके लिये वोट देने को कहूं। पर मैं इसके लिये तैयार नहीं था। साथ ही, मुझमें यह भी साहस नहीं था, कि डाक्टर जोशी-जैसे सम्पन्न व प्रतिष्ठित व्यक्ति को साफ-साफ कह दूं, कि हजरत, यदि आपको अपनी सेवा के क्षेत्र को विस्तृत ही करना है, तो आज से गरीबों का मुफ्त इलाज शुरू कर दीजिये, निम्न मध्यश्रेणि के लोगों से रियायती फीस लीजिये और जिनकी जेब में दवाई के भी पैसे न हों, उन्हें मुफ्त दवा दीजिये। आपकी सेवा का सही तरीका यही है। म्युनिसिपल-कमेटी में जाकर आप सेवा नहीं करना चाहते, आप वहां केवल लोकैषणा की पूर्ति के लिये जाना चाहते हैं, या म्युनिसिपैलिटी में अधि-कार प्राप्त करके अपने को और अधिक समृद्ध व सम्पन्न बनाने के लिये।

पांच मिनट में मैं और डाक्टर जोशी नौकरों के क्वार्टरों में पहुंच गये। जोशीजी वोट-भिक्षा के लिये अकेले नहीं निकले थे, उनके साथ रामनगर के कतिपय अन्य धनी-मानी नागरिक भी थे। कुछ सम्भ्रान्त व्यक्तियों को

अपने क्वार्टरों में आया देखकर होटल के नौकर बाहर निकल आये, उनकी सहधर्मिणियां किवाड़ की ओट में किसी अप्रत्याशित घटना की आशंका से सहमी-सी खड़ी हो गई। मैले-कुचैले दर्जनों बच्चों ने हम लोगों को घेर लिया। होटल के बड़े खिदमतगार चन्दनसिंह ने झुककर 'सलाम हजूर' कहा। भंगियों के जमादार ने दायें हाथ को मस्तक से छुआकर सलाम किया। मैंने डाक्टर जोशी को इन दोनों सज्जनों का परिचय कराया। इस समय तो ये सज्जन ( जेन्टलमैन ) ही थे, क्योंकि जोशीजी जैसे सम्पन्न व्यक्ति इनके दरबार में हाजिर हुए थे। इनके जीवन में यह शायद पहला अवसर था, जब इनका भी उसी ढंग से परिचय कराया जा रहा था, जैसे कि भद्र पुरुषों की पार्टियों में एक दूसरे का परिचय कराया जाता है। साहब लोगों के कायदों से होटल मॉडर्न के ये पुराने सधे हुए कर्मचारी अपरिचित नहीं थे। पर इनकी यह हिम्मत नहीं हुई, कि डाक्टर जोशी से परिचय कराने पर 'हाउ डू यू डू' कहकर उनसे हाथ मिलाते। परिचय के बाद जोशीजी ने बड़ी नम्रता से कहा, आप लोगों को शायद मालूम होगा, कि मैं म्युनिसिपैलिटी के चुनाव के लिये खड़ा हो रहा हूं। मैं तो आप सबका सेवक हूं। आपसे यही प्रार्थना है, कि मुझे अपनी सेवा का मौका दें। चन्दनसिंह साहब लोगों से बात करने का आदी था। उसने झुककर जवाब दिया, हम तो सरकार के गुलाम हैं। हजूर के हुकुम को कैसे टाल सकते हैं? चन्दनसिंह की बात सुनकर डाक्टर जोशीजी की आंखें खिल गई। उन्होंने खुश होकर कहा---अच्छा, चन्दनसिंह, और सबसे भी कह देना, कि अपना वोट मुझे दें। चन्दनसिंह ने एक बार झुककर 'सलाम हजूर' कहा, और डाक्टर जोशी नौकरों के क्वार्टरों से वापस लौट आये। उनका चित्त प्रसन्न था, उन्हें अपनी सफलता की अपार खुशी थी। उन्हें पूरा भरोसा हो गया था, कि होटल मॉडर्न के पूरे २०० वोट उन्हीं के पक्ष में पड़ेंगे। हाथ मिलाकर डाक्टर जोशी ने मुझसे विदा ली और उनकी रिक्शा धड़-धड़ाती हुई होटल मॉडर्न से बाहर चली गई।

दो दिन बाद एक और सज्जन मुझसे मिलने के लिये आये। रंग से एकदम काले और लम्बे-तगड़े जवान थे यह। इनके मुख से सस्ती शराब की बू आ रही थी, और इन्होंने अंग्रेजी ढंग के पुराने-से कपड़े पहने हुए थे। पूछने पर मालूम हुआ, कि इनका नाम फ्रांसिस जोसेफ है, और ये जंगलात के एक ठेकेदार के पास मुंशी का काम करते हैं। चुनाव का भूत इनके सिर पर भी सवार हो गया था, और ये भी म्युनिसिपल-कमेटी की सदस्यता के लिये उम्मीदवार थे। पहाड़ों में बहुत-सी अछूत जातियों का निवास है, जिनमें शिल्पकार सबसे अधिक संख्या में हैं। मिस्टर फ्रांसिस जोसेफ जाति के शिल्पकार थे, पर ईसाई मिशन के सम्पर्क में आकर भगवान् ईसा के अनुयायी हो गये थे। ईसाई बनकर उन्हें अपनी जात-बिरादरी से घृणा हो गई थी, और वे अपने को अंग्रेजों का भाई-बन्द समझने लगे थे। इतवार के दिन वे नियमपूर्वक गिरजे में जाते और वहां साहब लोगों के साथ बैठकर अपूर्व गौरव का अनुभव किया करते थे। पर चुनाव के चक्कर में पड़कर उन्हें अपनी जन्मगत जाति का ध्यान हो आया था, और जब मर्दुमशुमारी की किताबों के पन्ने उलट-पलटकर उन्हें यह मालूम हुआ, कि शामनगर के स्थिर निवासियों में ३० प्रतिशत के लगभग व्यक्ति शिल्पकार जाति के हैं, तो उनमें जाति-प्रेम की भावना अत्यन्त उग्ररूप से फूट पड़ी। वे कहने लगे, सब शिल्पकार लोग एक हैं, धर्म से चाहे वे आर्यसमाजी हों या ईसाई, सनातनी हों या मुसलमान। उन्होंने पहली बार इस सत्य को स्पष्ट रूप से अनुभव किया, कि धर्म-परिवर्तन के बाद भी अछूत अछूत ही रहता है। अछूत ईसाई मरने के बाद उस कब्रिस्तान में नहीं दफनाया जाता, जहां साहब लोग दफनाये जाते हैं। जिन अछूतों ने ईसाई धर्म को अपना लिया है, शिक्षा व सामाजिक स्थिति की दृष्टि से वे अछूत हिन्दुओं से बहुत अधिक आगे नहीं बढ़ सके हैं। अतः उन्होंने विचार किया, कि शिल्पकारों को अपना एक पृथक् संगठन बनाना चाहिये, धर्म के भेद को भुलाकर। उन्हें अपने अधिकारों के लिये संगठित रूप से आन्दोलन करना चाहिये, और

अपनी संख्या के जोर पर उन्हें म्युनिसिपल-कमेटी पर कब्जा कर लेना चाहिये। जिस बिरादरी के हाथों में ३० फीसदी के लगभग वोट हों, उसके लिये कमेटी की एक तिहाई सीटों पर कब्जा कर लेना क्या मुश्किल है। इस समय श्री फ्रांसिस जोसेफ रामनगर के शिल्पकारों के नेता बने हुए थे, और आगामी म्युनिसिपल चुनाव के लिये उन्हें संगठित करने के लिये कटिबद्ध थे।

होटल मॉडर्न के नौकरों में बहुसंख्या शिल्पकार जाति के लोगों की थी। धर्म की दृष्टि से ये शिल्पकार आर्यसमाजी थे। कुमायूं और गढ़वाल में आर्यसमाज का प्रचार बहुत अधिक है, विशेषतया अछूत जातियों में। शिल्पकार लोगों से यदि कोई पूछे, कि तुम्हारा धर्म क्या है, तो वे उत्तर देंगे, 'समाजी।' वे नमस्ते कहकर एक दूसरे का अभिनन्दन करते हैं, और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। आर्यसमाज के सिद्धान्तों से उनका परिचय केवल इतना है, कि ईश्वर एक है, और वेद चार। ऋषि दयानन्द को वे अपना गुरु मानते हैं, पर क्रिया में वेदों की शिक्षाओं का उनमें सर्वथा अभाव है। आर्यसमाजी बन जाने के बाद गोमांस का भक्षण उन्होंने छोड़ दिया है, पर गोमांस को साहब लोगों के लिये पका देने में उन्हें अब भी कोई एतराज नहीं है। वे शराब पीते हैं, और स्त्रियों का विक्रय अब तक भी उनमें प्रचलित है। आर्यसमाज के संग में आने से उनके हृदयों में हिन्दू-धर्म के लिये आस्था उत्पन्न हो गई है, और वे ईसाई व मुसल्मानों से घृणा करने लगे हैं। यही कारण है, कि जब मिस्टर फ्रांसिस जोसेफ ने होटल मॉडर्न के शिल्पकार कर्मचारियों को एकत्र कर उन्हें संगठित होने के लिये और अपना कीमती वोट अपने पक्ष में देने के लिये अनुरोध किया, तो उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। फ्रांसिस जोसेफ साहब उनके रुख को देखकर बहुत निराश हुए, और मुझसे हंस-हंसकर बातें करके अपनी निराशा को छिपाने का प्रयत्न करने लगे।

रामनगर के कांग्रेसी नेताओं को भी यह भली भांति मालूम था, कि

होटल मॉडर्न में २०० से ऊपर वोटर लोग रहते हैं। सितम्बर के शुरू में तीन-चार खद्दरधारी सज्जन मेरे दफ्तर में आये और 'जय हिन्द' करके बैठ गये। कुशल-मंगल की जाब्ते की बातों के बाद एक सज्जन ने मुझसे कहा, कर्नल साहब, आप तो सार्वजनिक जीवन से अलग-थलग रहते हैं, हमें तो पूरी आशा थी, कि आप म्युनिसिपल-कमेटी की सदस्यता के लिये खड़े होंगे, और कांग्रेस का टिकट प्राप्त करने के लिये उद्योग करेंगे। अब तो आप रामनगर के निवासी हो गये हैं, और आपको यहां के मामलों में अवश्य दिलचस्पी लेनी चाहिये। मैं इतना मूर्ख नहीं था, कि इन सज्जनों की औपचारिक बातों का जवाब देने की आवश्यकता समझता। मैं भली भांति जानता था, कि कांग्रेस का टिकट-प्राप्त करने के लिये सैकड़ों व्यक्ति लालायित हैं। नये-पुराने सब कांग्रेसियों में इसके लिये जबर्दस्त कशमकश चल रही है। अगर मैं भी चुनाव के अखाड़े में उतर आता, तो इन लोगों की ईर्ष्या का ही भाजन बनता। मेरे ऊपर सच्चे-झूठे सब प्रकार के आक्षेप शुरू हो जाते, और जनता की दृष्टि में मुझे बदनाम करने में कोई भी कसर बाकी न रखी जाती। औपचारिक ढंग से मैंने केवल इतना कह दिया, कि यह आपकी कृपा है, जो आप मुझे म्युनिसिपल-कमेटी की सदस्यता के योग्य समझते हैं, पर मैंने तो देश-सेवा के लिये कोई काम अब तक किया नहीं, यह सम्मान तो केवल उन लोगों को दिया जाना चाहिये, जो सच्चे हुए देश-सेवक हैं। अब कांग्रेसी सज्जन मतलब की बात पर आये। उन्होंने कहना शुरू किया, आप तो जानते ही हैं, कि देश ने कितनी कठिनाई से स्वतन्त्रता प्राप्त की है। पर स्वराज्य स्थापित हुए अभी एक साल भी नहीं हुआ, कि सब ओर उसके शत्रु उठ खड़े हुए हैं। सब अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, बरसाती मेंढकों के समान कितने ही राजनीतिक दल इस समय देश में पैदा हो गये हैं। भारत तभी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकता है, जब सब लोग कांग्रेस का साथ दें। यही कारण है, कि आज देश के सब समझदार लोग कांग्रेस के साथ हैं। अंग्रेजी राज्य के समय जो लोग कांग्रेस

के विरोधी थे, वे भी अब उसके पक्ष में हो गये है। पुराने जमाने के राजा, राय, खां बहादुर, राय साहब—सब अब कांग्रेस के साथ हैं। हम चाहते हैं, कि आप भी चुनाव में कांग्रेस की मदद करें। राष्ट्र के विरोध में जो शक्तियां खड़ी हो रही हैं, उन्हें कुचलना प्रत्येक देशभक्त का पुनीत कर्तव्य है। यदि आप अपने असर को प्रयुक्त करें, तो होटल मॉडर्न के २०० के करीब वोट कांग्रेस को मिल सकते हैं। कांग्रेसी नेता की लम्बी स्पीच को सुनते हुए मैं उकता गया था। उनकी बात को बीच में ही काटकर मैंने कहा—भाई साहब, लोकतन्त्रवाद का सबसे बड़ा लाभ यह है, कि चुनाव की पद्धति द्वारा जन-साधारण को राजनीतिक व सार्वजनिक मामलों की शिक्षा का अवसर मिलता है। मेरा केवल एक वोट है, आप होटल मॉडर्न के कर्मचारियों के पास जाकर उनसे बातचीत कीजिये, उन्हें कांग्रेस-पार्टी की नीति की उपयोगिता समझाइये। मेरी यह बात कांग्रेसी सज्जन को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने मुझे समझाया, कि चुनाव एक युद्ध के समान होता है, जिसमें विजय प्राप्त करने के लिये कितनी ही चालों व उचित-अनुचित उपायों को प्रयोग में लाना पड़ता है। यदि जन-साधारण को शिक्षित कर वोट प्राप्त करने का उद्योग किया जाय, तब तो हमें सफलता की आशा ही छोड़ देनी चाहिये। चुनाव में विजय प्राप्त करने के लिये हमें जनता की भावनाओं को अपने लिये इस्तेमाल करना होगा। जात-बिरादरी की भावना, मालिक का अपने नौकरों पर प्रभुत्व, जमींदार का डण्डा, मकान-मालिक की धमकियां, सरकारी अफसरों का डर, रुपये का लालच—इसी तरह की कितनी ही बातें हैं, जो चुनाव में सहायक होती हैं। हम तो आपको अपना आदमी समझकर आपके पास आये हैं। अन्य कितने ही उम्मीदवारों के मुकाबले में होटल मॉडर्न आपको मिल गया, यह इसीलिये कि सरकार की आप पर कृपा थी। भविष्य में भी आपको यह होटल अपने हाथों में रखना है।

कांग्रेसी सज्जन किस बात की तरफ इशारा कर रहे थे, यह समझने में मुझे देर नहीं लगी। मैं भली भांति जानता था, कि अब कांग्रेस का राज है,

कांग्रेस की सरकार कायम है। यदि मैं म्युनिसिपल-कमेटी के चुनाव में कांग्रेस की मदद नहीं करूंगा, तो कांग्रेसी सरकार मुझसे नाराज हो जायगी, और कोई न कोई ऐसा कारण बन जायगा, जिससे अगले साल के लिये होटल मॉडर्न मुझे 'एलॉट' नहीं होगा। जब अंग्रेजों का राज था, तो ब्रिटिश शासक यह आशा रखते थे, कि देश के सब बड़े जमींदार, व्यापारी व उच्च समाज लोग उनकी सहायता करें। चुनाव के समय धनी वर्ग के लोग कांग्रेस के खिलाफ रहते थे और सरकार के पक्षपोषकों की मदद करते थे। अंग्रेजों के भारत छोड़ देने के बाद जिस तरह कांग्रेस ने देश का शासन प्राप्त किया, वैसे ही सम्पन्न वर्ग से सहयोग की आशा भी अंग्रेजों से विरासत में पाई। अब कांग्रेस के स्थानीय नेता जन-साधारण के सहयोग की अपेक्षा जमींदारों और धनपतियों की सहायता को अधिक महत्त्व देने लग गए थे। लेखों और भाषणों में वे अब भी जनता की दुहाई देते थे, पर क्रिया में उन्हें बड़े लोगों के सहयोग को प्राप्त करके अपने को सफल बनाना अधिक सुगम प्रतीत होता था। अगस्त के महीने में मुझे दो-चार दिन के लिये रामनगर से मुरादाबाद जाना पड़ा था। वहां मेरे एक पुराने मित्र थे, जो कम से कम चार बार सत्याग्रह-आन्दोलन में जेल जा चुके थे। स्वराज्य-संग्राम में उन्होंने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया था। उनकी धर्मपत्नी एक छोटे-से स्कूल में अध्यापिका थीं, और उन्हें पचास रुपया मासिक वेतन मिलता था। इस छोटे-से वेतन में पण्डित कृष्णानन्द (मेरे सत्याग्रही मित्र का यही नाम था) अपने चार बच्चों के साथ अपना गुजर कर लेते थे। वे अपने हाथों से कते सूत के कपड़े पहनते और बहुत मोटा खा-पीकर निर्वाह करते थे। कृष्णानन्दजी से मिलने की मेरी बड़ी इच्छा थी। मैंने उन्हें चिट्ठी लिख दी थी और वे मेरा स्वागत करने के लिये रेलवे स्टेशन पर विराजमान थे। मुझे यह देखकर बहुत हैरानी हुई, कि कृष्णानन्दजी मेरे लिये एक बढ़िया मोटरकार लेकर आये थे। मैंने पूछा, भाई, यह मोटर कहां से आई? कृष्णानन्दजी ने उल्लास के साथ जवाब दिया, यह मोटर खां बहादुर सईद खां साहब की है, जो मेरे

घनिष्ठ मित्र हैं। वे कांग्रेस के कार्य में बहुत दिलचस्पी लेते हैं, और जब कभी मुझे सवारी की जरूरत होती है, वे अपनी मोटर मेरे लिये भेज देते हैं। खां बहादुर शईद खां से मैं भली भांति परिचित था, वे जून के महीने में होटल मॉडर्न में ठहर चुके थे। उन जैसा देशद्रोही और तास्सुबी आदमी मैंने कोई नहीं देखा। न उनका कोई सिद्धांत था, न कोई आदर्श। कट्टर धर्मान्ध मुसलमान होते हुए भी वे शराब के परम भक्त थे, और स्वराज्य के बाद गोमांस दुर्लभ हो जाने के कारण अपनी कोठी में ही बछड़े को जिबह करा लेते थे। अपनी जमींदारी में रैयत पर जुल्म करना वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे। सरकश किसानों की फसल में आग लगवा देना, उनकी बहू-बेटियों को पकड़वा मंगवाना और मार-पीटकर किसानों को बेदखल कर देना उनके राज में रोज की बातें थीं। जब वे शराब पीकर मस्त हो जाते, तो न उन्हें दीन की सुध रहती और न दुनिया की। वे अपने खिदमतगारों तक के साथ बहुत बुरा व्यवहार करते थे, और यही कारण है, कि उनके पास कोई नौकर टिकना नहीं चाहता था। पर नौकरों के बारे में उन्हें कभी कोई परेशानी नहीं हुई, क्योंकि अपनी जमींदारी में वे जिसे चाहते, बेगार में खिदमतगारी के लिये बुला सकते थे। इस किस्म के जालिम जमींदार के साथ भाई कृष्णचन्द्रजी की दोस्ती की बात सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। पर मैंने अपने मित्र के दिल को दुखाना नहीं चाहा, मैंने उनसे कुछ नहीं कहा। शईद खां के साथ अपनी दोस्ती की बात कृष्णचन्द्र-जी जिस ढंग से उत्साहपूर्वक सुना रहे थे, उसे सुन-सुनकर मैं यही सोच रहा था, कि दरिद्रनारायण और जनता-जनार्दन का यह सच्चा सेवक भी स्व-राज्य-प्राप्ति के बाद खां बहादुर जैसे अवसरवादी लोगों के जाल में किस ढंग से फंस गया है?

हां, मैं वोटों के लिये आये हुए कांग्रेसी सज्जनों की बातचीत का जिक्र कर रहा था। उनके इशारे को मैंने समझ तो लिया, पर उस पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। होटल मॉडर्न मेरे लिये कोई नफे का सौदा तो था नहीं।

मैंने साफ-साफ कह दिया, कि यदि आप लोग अपने प्रभाव को प्रयुक्त कर कोई ऐसा इन्तजाम कर सकें, जिससे होटल मॉर्टन अगले साल के लिये मेरे नाम एलॉट न हो, तो मैं आपका बहुत कृतज्ञ होऊंगा। कांग्रेसी सज्जन मुझसे प्रसन्न नहीं हुए। वे चाहते थे, कि मैं उनसे कहूं, यह मेरा अहोभाग्य है, जो आपने मेरे यहां पदार्पण किया है। मैं आपके साथ हूं, और होटल मॉर्टन का एक भी वोट किसी अन्य उम्मीदवार के नाम नहीं जाने पायगा। पर मैं यही समझता था, कि प्रत्येक राजनीतिक दल या उम्मीदवार का यह कर्तव्य है, कि वह वोटों के लिये सीधा मतदाताओं से मिले, उनको अपनी नीति समझावे, और उन्हें अपने कार्यक्रम की उपयोगिता समझाकर वोट प्राप्त करे। क्योंकि होटल मॉर्टन के २०० के लगभग वोटर मेरे असर में थे, आर्थिक दृष्टि से मुझ पर आश्रित होने के कारण; अतः मैं उन पर किसी दल या उम्मीदवार के लिये अनुचित ज़ोर डालूं, यह बात मुझे बिल्कुल भी पसन्द नहीं थी। यही कारण है, कि मैं कांग्रेसी सज्जनों को खुश नहीं कर सका।

सितम्बर के मध्य में लखनऊ से एक बड़े कांग्रेसी नेता रामनगर पधारे। इनका नाम श्री राधाकृष्ण अवस्थी था। अवस्थीजी इस उद्देश्य से प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी की ओर से रामनगर भेजे गये थे, ताकि म्युनिसिपल-कमेटी की सदस्यता के लिये जिन लोगों ने कांग्रेस का टिकट प्राप्त करने के लिए प्रार्थना-पत्र दिये हैं, उनके गुण-दोषों पर विचार कर ये अपनी सिफारिश पार्लियामेण्टरी बोर्ड को भेज सकें। अवस्थीजी होटल मॉर्टन में आकर ठहरे। उनके कमरे के बाहर हर समय एक दरबार-सा लगा रहता था। लोग उनसे भेंट करने के लिये बाहर बरामदे में बैठकर घण्टों इन्तजार करते रहते। जब कभी वे घूमने निकलते, तो दर्जनों आदमी उनके पीछे या अगल-बगल में साथ-साथ चलते। किसी राजा की भी कभी ऐसी शान रही होगी, जो अब अवस्थीजी की थी। शुद्ध खादी के उनके वस्त्र रेशमी कपड़ों से भी ज्यादा शानदार थे। उनके पतले चिबड़ु-से चेहरे पर एक ऐसी रौनक

आ गई थी, जो अधिकार और शक्ति के मदसे ही प्राप्त हो सकती है। उनके कृपा-कटाक्ष से कोई भी व्यक्ति म्युनिसिपल-कमेटी का सदस्य बन सकता था, क्योंकि कांग्रेस का टिकट देना उन्हीं के हाथ में था, और १९४८ में स्वराज्य-प्राप्ति के एक साल बाद कांग्रेसी उम्मीदवार को हरा सकने की हिम्मत किसमें थी ? यह बात भी हवा में थी, कि शीघ्र ही पार्लियामेण्ट और प्रान्तीय विधान-सभा के भी चुनाव होनेवाले हैं । उनके लिये कांग्रेस का टिकट प्राप्त करने के लिये भी अनेक सज्जन अभी से प्रयत्नशील हो गये थे। ये अवस्थीजी को हर समय घेरे रहते थे । इनकी बातचीत का विषय एक ही था, अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा। लोकतन्त्रवाद का यह स्वरूप मेरे लिये एक तमाशा-सा था । मैं सोचता था, दूसरों की चुगलियां करने-वाले इन्हीं लोगों में से किसी एक को रामनगर के इलाके से प्रान्तीय विधान-सभा के लिये कांग्रेस का टिकट मिल जायगा। इसी तरह के तिगड़मी लोगों से मिलकर जो विधान-सभा बनेगी, उसी के हाथ में होगा प्रान्त के लिये कानून बनाना, जनता के हित और कल्याण के लिये योजनायें बनाना और सरकार का संचालन करना । यदि इसी का नाम डेमोक्रेसी है, तो मेरा उसे दूर से ही प्रणाम है ।

रामनगर में चुनाव की धूमधाम अभी पूरी तरह से शुरू भी नहीं हुई थी, कि समाचार-पत्रों में यह खबर प्रकाशित हो गई, कि म्युनिसिपल-कमेटियों के नये चुनावों को अभी अनिश्चित काल के लिये पुनः स्थगित कर दिया गया है। जिस तरह दूध का उफान पानी के कुछ छींटों से एकदम शान्त हो जाता है, वैसे ही इस समाचार से चुनाव की सब धूमधाम एकदम खतम हो गई। डाक्टर जोशी फिर अपनी डिस्पेन्सरी में बैठकर आठ रुपये दे सकने-वाले मरीजों की नब्ज देखने लगे और कांग्रेसी उम्मीदवार अपने साथियों को यह समझाकर सन्तोष करने लगे, कि अभी देश के सम्मुख इतनी विकट समस्यायें उपस्थित हैं, कि नये चुनाव के लिये उपयुक्त वातावरण उत्पन्न नहीं हो सका है । इस दशा में चुनाव को स्थगित कर देने में ही [illegible]

का कल्याण है। हां, कांग्रेस के विरोधी यह कहते थे, कि पंजाब और सिन्ध से जो लाखों शरणार्थी [illegible] सरकार की नीति के खिलाफ आन्दोलन करते फिरते हैं, उनके कारण राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ जैसी पार्टियों की शक्ति बहुत बढ़ गई है, और शहरों में इन कांग्रेस-विरोधी पार्टियों का बहुत जोर है। इसीलिये कांग्रेस अभी नया चुनाव नहीं कराना चाहती। नया चुनाव तब तक नहीं होगा, जब तक कि कांग्रेस को अपनी सफलता का पूरा-पूरा भरोसा नहीं होजायगा।

## (२६)

## बच्चों का बोझ

सितम्बर के महीने में वर्षा समाप्त होने लग गई थी, और श्रीनगर में एक बार फिर रौनक आने लगी थी। होटल मॉडर्न पर भी इसका असर पड़ा, और बहुत-से नये यात्री वहां ठहरने के लिये आये। इनमें एक सज्जन श्री त्रिलोकीनाथ मिश्रा थे, जो कानपुर की एक मिल में इन्जीनियर थे। मिश्राजी एक महीने की छुट्टी लेकर सपरिवार श्रीनगर आये थे, और होटल मॉडर्न में दो कमरे किराये पर लेकर ठहर गये थे। भोजन का इन्तजाम उन्होंने अपना रखा था। उन दिनों होटल के बहुत से कमरे खाली पड़े थे और 'भागते भूत की लंगोटी भली' के सिद्धान्त के अनुसार मैंने दो बढ़िया कमरे इन्हें आठ रुपये रोज पर किराये पर दे दिये थे। मिश्राजी के कुल मिलाकर दस बच्चे थे, जिनकी आयु बीस वर्ष से लेकर एक वर्ष तक की थी। बारह व्यक्तियों और तीन नौकरों का यह परिवार होटल के दो कमरों में किस तरह गुजर करता था, मेरे लिये यह आश्चर्य की बात थी। मिश्राजी को १५०० रुपया मासिक वेतन मिलता था, पर इस मंहगाई के जमाने में यह आमदनी इस विशाल परिवार के लिये पर्याप्त नहीं होती थी। आठ रुपये रोज के हिसाब से किराया देना भी मिश्राजी को भारी

मालूम पड़ता था । होटल में अधिक मेहमान थे नहीं, अतः मुझे भी काफी फुरसत थी और मिश्राजी तो अपने बच्चों की चिल्ल-पों से बचने के लिये मेरे दफ्तर को एक विश्राम-स्थान-सा समझते थे । वे अक्सर मेरे पास आ बैठते, और सब तरह की बातें शुरू हो जातीं । एक दिन मिश्राजी ने मुझसे कहा, अब तो होटल मॉडर्न का स्टैण्डर्ड बहुत गिर गया है । मैंने जवाब दिया, यदि १५०० रुपया महीना पानेवाला कोई अंग्रेज इन्जीनियर रामनगर आता, तो वह होटल मॉडर्न में भोजन के साथ ठहरता । एक दर्जन आदमियों के लिये वह कम से कम पांच कमरे किराये पर लेता, और उसका बिल १०० रुपये रोज के हिसाब से बनता । उस समय होटल मॉडर्न का स्टैण्डर्ड कायम रहता । मेरी बात से मिश्राजी नाराज नहीं हुए । वे कहने लगे, अंग्रेजों की बात दूसरी थी । वे अच्छा कमाते थे और दिल खोलकर खर्च करते थे । आप देखते नहीं, मेरे दस बच्चों में छः लड़कियां भी हैं, मुझे उनका विवाह भी करना है । यदि एक-एक लड़की के विवाह में पांच-पांच हजार रुपया भी खर्च हुआ, तो तीस हजार रुपये का प्रबन्ध मैं कैसे करूंगा ? इसी वेतन में से तो मुझे ये रुपये बचाने हैं । अंग्रेजों को तो अपनी लड़कियों के विवाह के लिये दहेज देने की आवश्यकता नहीं होती । इस पर मैंने मिश्राजी से कहा, तो फिर आप होटल के स्टैण्डर्ड गिर जाने की शिकायत न कीजिये । जब अंग्रेज भारत से चले गये और उनके पद आप-जैसे लोगों को मिल गये, तो होटल मॉडर्न ही अपना स्टैण्डर्ड कैसे कायम रख सकेगा ? मिश्राजी मेरी बात से सहमत थे, और उन्हें मेरे साथ पूरी-पूरी सहानुभूति थी ।

कभी-कभी मिसेज मिश्रा भी अपने 'साहब' के साथ मेरे दफ्तर में आ बैठतीं । उनके चेहरे पर हमेशा एक परेशानी-सी छाई रहती थी । उन्हें बच्चों से बहुत कम फुरसत मिल पाती थी । वे प्रायः हर समय अपने छोटे बच्चों को लिये रहती थीं, ठीक उसी तरह जैसे कोई मुर्गी अपने चूजों को लिये रहती है । नौकर-चाकर होते हुए भी बच्चे उन्हें दम नहीं लेने देते थे । मिसेज मिश्रा काफी सुशिक्षित महिला थीं, बी० ए० की परीक्षा

में वे अपने कालिज में प्रथम आई थीं। उन्हें कहानियां लिखने का भी शौक था। विवाह के प्रारम्भिक वर्षों में मिश्राजी ने उनकी कहानियों का एक संग्रह बड़े शौक से प्रकाशित कराया था, इलाहाबाद के लॉ जर्नल प्रेस में छपवाकर। मिश्राजी स्वप्न लेते थे, कि उनकी सहधर्मिणी कभी हिन्दी-साहित्य की एक चमकती हुई तारिका मानी जायगी, और उनकी गिनती हिन्दी के महारथियों में की जाया करेगी। पर उनका यह स्वप्न क्रिया में परिणत नहीं हो सका। बच्चों के बोझ ने मिसेज कुसुम मिश्रा की सब प्रतिभा को कुचल डाला, और उनका सारा समय बीतने लगा चौके-चूल्हे और बच्चों को नहलाने-धुलाने में। बच्चों को टालकर दस मिनट के लिये आराम की सांस ले सकने की कोशिश में ही उनकी सब शक्ति लग जाती थी और अखबार तक पढ़ सकने की फुरसत उन्हें नहीं मिल पाती थी।

एक दिन सन्तति-नियमन (बर्थ-कण्ट्रोल) की चर्चा छिड़ गई। मैंने मिश्राजी से कहा, जब आप बच्चों से इतने परेशान हैं, तो बर्थ-कण्ट्रोल के उपायों का प्रयोग क्यों नहीं करते? इस पर मिश्राजी अपने को काबू में नहीं रख सके, उन्होंने आवेश में भरकर अपनी करुण कथा सुनानी प्रारम्भ कर दी। उन्होंने कहा, आप तो बर्थ-कण्ट्रोल की बात कहते हैं, हमने तो महीनों ब्रह्मचर्यपूर्वक बिताये हैं। पर क्या आप यह समझते हैं, कि स्वस्थ पुरुष और स्त्री एक साथ रहते हुए सदा ब्रह्मचर्य से रह सकते हैं? भूख और प्यास की तरह लैङ्गिक सुख भी मनुष्यों की एक प्राकृतिक आवश्यकता है, जिसे वे कभी न कभी पूर्ण करना ही चाहेंगे। पूर्ण ब्रह्मचर्य का उपदेश तो ठीक वैसा ही है, जैसे कि किसी को पानी न पीने का उपदेश करना हो। अब रही बर्थ-कण्ट्रोल के कृत्रिम उपाय की बात। कौन-सा ऐसा उपाय है, जिसे हमने इस्तेमाल नहीं किया। अखबार में जिस किसी दवा का इश्तहार देखा, उसे मंगवाया। केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट की दूकानवाले ने जो कीमती से कीमती दवा बताई, उसका उपयोग किया। पर कौन-सी ऐसी दवा है या कौन-सा ऐसा उपकरण है, जो सौ फीसदी सही उतरता हो? दिक्कत यह

है, कि हमारे समाज में नैतिकता की जो मर्यादा बनी हुई है, उसके कारण इस विषय पर न डाक्टरों से खुलकर सलाह ली जा सकती है, और न वैज्ञानिक रीति से दवाइयां बनानेवाले ही इस बात का उद्योग कर सकते हैं कि मलेरिया, टाइफाइड आदि बीमारियों की तरह इसके लिये भी निःसंकोच होकर दवाई बना सकें, और उससे जनता को लाभ पहुंचा सकें। परिणाम यह होता है, कि लोग इस मामले के लिये इश्तहारी दवाइयों पर निर्भर करते हैं, और ये दवाइयां सदा कारगर नहीं हो पातीं। और यदि साल दो साल में एक बार भी स्त्री को गर्भ रह गया, तो दस-बारह बच्चों का हो जाना कौन-सी बड़ी बात है। सन्तति-निग्रह का उपाय केवल यह है, कि गर्भ का गिरवा सकना कानून द्वारा अभिमत हो, और डाक्टर लोग इसके लिये किसी भी प्रकार का संकोच व कानूनी रुकावट अनुभव न करें। पर आप जानते हैं, कि भ्रूण-हत्या या गर्भपात धार्मिक दृष्टि से भारी पाप माना जाता है, और कानून की निगाह में भी यह बड़ा गुनाह है। इस दशा में जब किसी स्त्री को गर्भ रह जाता है, तो वह बेचारी उन इश्तहारों को देखने लगती है, जो रुके हुए मासिक धर्म को फिर से जारी कर देनेवाली दवाइयों का बड़े आकर्षक रूप में विज्ञापन करते हैं, और कानून के शिकंजे में न आने के लिये साथ ही यह टिप्पणी भी दे देते हैं, कि गर्भवती स्त्रियां इस दवा को हरगिज न मंगावें, क्योंकि इससे गर्भपात हो जायगा। स्त्रियां तो ऐसी दवाई की खोज में ही होती हैं, वे सोने के दाम से मिट्टी खरीद लेती हैं। पचास फीसदी केसों में तो इन दवाओं का कोई असर ही नहीं होता। जब इनका असर होता है, तो ये लाभ की जगह नुकसान ही अधिक पहुंचाती हैं। गर्भ इनसे गिर जाता है, पर साथ ही स्त्री के स्वास्थ्य को इतना अधिक नुकसान पहुंच जाता है, कि वह सदा के लिये रोगग्रस्त हो जाती है। कितनी ही दाइयां व लेडी डाक्टर गर्भ गिराने का पेशा करती हैं, पर इसके लिये वे जो फीस मांगती हैं, [illegible] कितने लोगों [illegible] में होता है? बेचारी लेडी डाक्टर भी [illegible], [illegible] कोई [illegible] बात करने को

चाहें, तो वे उसके लिये चोर-बाजार की फीस क्यों न दें ? उन्हें भी तो इस बात का डर रहता है, कि अगर कहीं मामला प्रकाश में आ गया, किसी ने उनकी शिकायत कर दी, तो अदालत उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई करेगी, उन्हें सजा दी जायगी और यदि वे सरकारी नौकरी में हुईं, तो उन्हें नौकरी से ही हाथ धोना पड़ेगा। वैसे गर्भपात करा देना कोई बड़ी मुश्किल बात नहीं है। शल्य-विज्ञान इतनी अधिक उन्नति कर चुका है, कि किसी भी कुशल डाक्टर के लिये यह बिलकुल साधारण-सी बात है। पर कानून का क्या इलाज है ? न कोई गर्भवती स्त्री किसी डाक्टर से इस विषय में निःसंकोच रूप से बात कर सकती है, न कोई लेडी डाक्टर ही ऐसे केस को खुले तौर पर अपने हाथों में ले सकती है। अब आप ही बताइये, कितने लोगों में यह हिम्मत है, कि वे सैकड़ों रुपये खर्च करके एक ऐसा काम करें, जो कानून की निगाह में अपराध है। देश में अनाज की कमी है, जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है, हर साल लाखों नये व्यक्ति बढ़ते जाते हैं, उस अनाज पर दावा करने के लिये जो पहले ही नाकाफी है। सब यह मानते हैं कि सन्तति का नियमन होना चाहिये, पर उसका जो सीधा और सरल उपाय है, उस पर किसी का ध्यान नहीं जाता। एक बार यदि सरकार की ओर से यह सर्क्युलर जारी हो जाय, कि गर्भपात कराना कानून के खिलाफ नहीं है, सब सरकारी अस्पतालों में इसके लिये समुचित व्यवस्था कर दी गई है, तो आप देखेंगे, कि किस तरह सब अस्पताल उन स्त्रियों से भर जायेंगे, जो अधिक सन्तान के कारण परेशान हैं, और जो कानून व खर्च के डर से अपने भाग्य को कोसकर रह जाती हैं। मैं मानता हूं, कि माँ को अपनी सन्तान से स्वाभाविक स्नेह होता है। स्त्री का पूर्ण विकास तभी होता है, जब वह मातृपद को प्राप्त करे। पर आज की परिस्थितियों में दर्जनों बच्चों का बोझ उठा सकने की शक्ति कितने गृहस्थों में है ? मनुष्य अपनी बनाई हुई जंजीरों में खुद जकड़ा हुआ है, समझते-बूझते हुए भी वह अपनी पुरानी नैतिक मर्यादाओं के जाल को तोड़कर फेंक देने की हिम्मत

नहीं कर पाता। इसीलिये वह कष्ट उठाता है। समाज गर्भपात को पाप मानता है, पर जब कोई व्यक्ति सन्तान के बोझ से दब जाता है, तब उसकी सहायता के लिये अंगुली तक नहीं उठाता। बच्चों के पालने-पोसने की जिम्मेवारी व्यक्ति पर है, पर अपनी जिम्मेवारी को हलका करने के लिये वह किसी उपाय का प्रयोग करे या नहीं, इसे समाज निश्चित करता है।

मिश्राजी अभी और बहुत कुछ कहना चाहते थे। पर इसी बीच में श्रीमती कुसुम मिश्रा आ गईं। उनके तीन छोटे बच्चे पढ़कर सो गये थे, चार बच्चे दो-दो आने पैसे खर्च करने के लिये पाकर नौकर के साथ बाजार चले गये थे और तीन बड़े बच्चों को संभालने की कोई समस्या नहीं थी। इस सुवर्णीय अवसर का उपयोग मिसेज मिश्रा कहीं घूम आने के लिये करना चाहती थीं। इन्जीनियर साहब को भी ऐसा मौका बहुत कम मिलता था, जब वे अपनी सुसंस्कृत सहधर्मिणी को साथ लेकर कहीं आ-जा सकें। वे तुरन्त मुझसे विदा लेकर उठ खड़े हुए, और मेरे मन में एक तूफान-सा पीछे छोड़ गये। मिश्राजी ने जो कुछ कहा था, उसकी सुगमता से उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। उन्होंने मेरे सम्मुख एक क्रियात्मक समस्या खड़ी कर दी थी, जो वस्तुतः महत्त्वपूर्ण थी। क्या हमारे समाज-शास्त्री इस समस्या का कोई सन्तोषजनक हल निकाल सकेंगे?

## (२७)

## बेगम साहिबा

१८ सितम्बर को एक अधेड़-से सज्जन मेरे दफ्तर में आये और आदाब अर्ज करके बैठ गये। उनकी आयु साठ साल के लगभग थी, और उनके सिर के बाल पक गये थे। वे कुछ झुककर चलते थे, और जब बात करते थे, तो रुक-रुककर बोलते थे। उनके दांत तमाखू के धुएं और पान के निरन्तर सेवन से काले पड़ गए थे और उन पर पीली मैल की तह-सी जमी हुई थी।

ऊपर के जबड़े से उनके तीन-चार दांत भी गायब थे, जिन्हें उन्होंने किसी दन्तसाज से बनवा लेने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की थी। पुरानी मैली अचकन और ढीला पाजामा पहने हुए इन सज्जन को देखकर मैंने अनुमान किया, कि ये किसी रईस के मुंशी होंगे या किसी जमींदार के पेशकार। पर बात चलने पर मुझे ज्ञात हुआ, कि इनके विषय में मेरा अनुमान सही नहीं था। इन्होंने मुझे बताया, कि वे बाराबंकी जिले के रहनेवाले हैं, और देहात में उनकी अच्छी बड़ी रियासत है। हवा तबदील करने के लिये वे रामनगर आये हैं, और यहां दो महीने ठहरेंगे। उनकी बेगम साहिबा भी साथ आई हैं, और वे मोटरों के अड्डे पर असबाब के पास बैठी हैं। नवाब साहब जगह का इन्तजाम करने के लिये यहां आये हैं। बाराबंकी जिले के एक बड़े ताल्लुकेदार साहब की इस हद की सादगी पर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मुझे खयाल आया, कि अंग्रेजी राज्य के डेढ़ सौ बरस भी हमारे देश के देहातों पर कोई ज्यादा असर नहीं डाल सके हैं। वहां के धनी-मानी राजा नवाब अब तक भी सादगी के साथ रहते हैं, पाश्चात्य सभ्यता उन्हें छू तक नहीं गई है। कितने सादा-मिजाज हैं, ये ताल्लुकेदार साहब! न इन्हें अपने कपड़ों की फिकर है, न बनाव-सिंगार की। बेचारे पैदल चलकर मोटर के अड्डे से होटल मॉडर्न तक आये हैं। न इन्होंने सवारी की, और न कोई खिदमतगार ही साथ में लिया। नवाब साहब ने मुझसे कहा, बाराबंकी में ही आपकी तारीफ सुनी थी, इसलिये सीधा यहीं चला आया। रास्ते में रेलगाड़ी में भी कई साहब मिले, जो आपके इन्तजाम में होटल मॉडर्न में ठहर चुके हैं। सब दिल खोलकर आपकी तारीफ करते थे। खुदा ने रहम दिया है, आपके दिल में। आप गरीब-अमीर सबके साथ एक सा बरताव करते हैं, और सबके आराम का खयाल करते हैं। आपसे मिलकर तो अजहद खुशी हुई। अब मैं कहीं न जाऊंगा, यहीं रहूंगा। जो चाहे कमरा दे दीजिये, जो चाहे किराया ले लीजिये। ज्यादा किराया तो आप ले ही नहीं सकते। हम दो आदमी तो हैं ही, एक छोटा-सा कमरा

ही हमारे लिये बस होगा। सोच-समझकर ९८ नम्बर कमरा मैंने नवाब साहब को दे दिया, और सौ रुपया महीना किराया इसका अर्ज कर दिया। नवाब साहब ने इसे खुशी से स्वीकार कर लिया।

कोई दो घण्टे बाद नवाब साहब अपनी बेगम के साथ होटल मॉडर्न में आ गये। मैं समझता था, बेगम साहिबा रिक्शा पर आवेंगी, और चार-पांच कुलियों पर उनका असबाब होगा। पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ, कि अपने पति के समान वे भी पैदल आई थीं, और उनके साथ केवल एक कुली था, जिसने एक पुराना-सा ट्रंक और एक बिस्तरा उठाया हुआ था। बेगम साहिबा की आयु बाईस साल से अधिक नहीं थी। उन्होंने बारीक मलमल के कपड़े पहने हुए थे, जिनमें से उनकी शरीर-यष्टि की एक-एक रेखा साफ दिखाई देती थी। मैंने उनके शरीर की एक यष्टि से उपमा दी है, पर मुझे यह स्वीकार करना चाहिये, कि बेगम साहिबा तन से कुछ भारी थीं और उनका बदन भरा हुआ था। यौवन के उभार के कारण उनमें सौन्दर्य की कमी नहीं थी, पर कृत्रिमता ने इस स्वाभाविक सौन्दर्य पर एक परदा-सा डाल रखा था। उनका सिर नंगा था, और लम्बी केशराशि एक लुब-भाती वेणी में बंधी हुई कमर तक नीचे लटक रही थी। उनकी भौंहें तराश-कर काली-पतली-सी लकीर के समान की हुई थीं, और उनका चेहरा पाउडर और रूज से पुता हुआ था। बाराबंकी जिले के देहात में रहनेवाले साठ साल के बूढ़े ताल्लुकेदार साहब की बेगम का यह रूप होगा, यह बात मेरी कल्पना में भी नहीं आ सकती थी। मैं अपने होटल को एक चिड़िया-[illegible] जिसमें एक से एक नये और अजूबा जानवर रोज देखने [illegible] आज के ये जानवर सबसे अजीब थे। मैंने सोचा, अल्लाह ने भी क्या जोड़ी मिलाई है। फिर ख्याल में आया, नवाब साहब ने पैसे के जोर [illegible] से विवाह किया है। उसे वे अपने पीछे कैसे चला [illegible] हैं? [illegible] वाले किसी गरीब की लड़की होगी, जो नवाब साहब [illegible] पूरे कर रही है,

और उनके पैसे को अपने शौक पूरे करने में नष्ट कर रही है। नवाब साहब का कमरा पहले ही से तैयार था। वे अपनी बेगम साहिबा के साथ उसमें ठहर गये। शाम के समय वे फिर मेरे पास आये और बोले, कि असबाब-सामानों का सन्दूक बाराबंकी स्टेशन से बुक करा दिया था, अब तक नहीं पहुंचा है। उसके आने का इन्तजाम करने में दो-चार दिन की देर लगेगी। इस बीच में वे होटल में ही भोजन करेंगे, और खाने का बिल अलग दे देंगे। मुझे इसमें क्या एतराज हो सकता था? नवाब साहब के आदेश के अनुसार उनका भोजन बेयरा उनके कमरे में ले जाने लगा और दोनों मियां-बीबी मौज से अच्छे-पकवान उड़ाने लगे।

पर इस नाज़ुकमिज़ाज-सुन्दरी का रंग-ढंग कुछ निराला-सा था। बेगम साहिबा रोज सायंकाल सोलह सिंगार करके बाहर निकलतीं और महीन कपड़े से अपने नव यौवन के सौन्दर्य को बखेरती हुई फिरने लगतीं। नवाब साहब अपनी गरदन झुकाये हुए, होटल मॉडर्न के विस्तृत मैदान में पड़ी हुई एक बेन्च पर चुपचाप आ बैठते, और घण्टों तक ज़मीन की तरफ देखते रहते। मालूम नहीं कौन-सी चिन्ता थी, जो उनके दिल को कुरेदती रहती थी। बेगम साहिबा कभी होटल के लॉन्ज में जातीं, कभी डाइनिंग रूम में, कभी बरामदों में और कभी टहलती हुई बाजार की तरफ निकल जातीं, मानों वे किसी की तलाश कर रही हों। जो कोई रास्ते में मिलता, उसकी तरफ वे निर्लज्ज रूप से देखने लगतीं, मानों कहती हों कि क्या तुम्हें मेरा रूप पसन्द आया, क्या तुम मुझमें कोई आकर्षण अनुभव नहीं करते, क्या मेरा यह रूप, यह यौवन इस बुड्ढे खूसट के साथ नष्ट हो जाने के लिये है? संसार में शौक़ीनों की कमी नहीं थी, कुछ नौजवान बेगम साहिबा के भी पीछे लग गये। वे उन्हें देखकर आवाज़ कसने लगे और एक युवक ने तो उनके घर आना-जाना भी शुरू कर दिया। जिस समय नवाब साहब होटल मॉडर्न के मैदान में बेन्च पर बैठे हुए ऊंघ रहे होते थे, बेगम साहिबा अपने कमरे में इस युवक के साथ

रंगरेलियां चार रही होती थीं। युवक का नाम रामसिंह था, और वह रामनगर के एक रईस का बिगड़ा हुआ लड़का था। कुछ ही दिनों में वह बेगम साहिबा के प्रेम में पागल हो गया और छाया के समान उनके साथ रहने लगा। एक दिन शाम के समय जब रामसिंह बेगम साहिबा की तलाश में आया, तो वे होटल के बारकम में बैठी हुई ह्विस्की की चुस्कियां ले रही थीं। उन्हें यह ख़याल नहीं रहा था, कि रामसिंह के आने का समय हो गया है। घण्टे भर तक इधर-उधर फिरने के बाद रामसिंह मेरे दफ्तर में आया, और बेगम साहिबा के नाम एक चिट्ठी लिखकर छोड़ गया। चिट्ठी अंग्रेजी में थी, और बेगम साहिबा स्वयं उसका आशय नहीं समझ सकीं। वे चिट्ठी पढ़वाने के लिये मेरे पास आईं। हिन्दुस्तानी में चिट्ठी का आशय समझाने के लिये मुझे कुछ संकोच अनुभव हुआ, क्योंकि सारा पत्र प्रेम की उथली बातों से परिपूर्ण था। पर बेगम साहिबा को उससे जरा भी शर्म अनुभव नहीं हुई, वे हंसती हुई चिट्ठी को सुनती रहीं और फिर पत्र मेरे हाथ से झपटकर इठलाती हुई चली गईं।

अगले दिन सायंकाल जब मैं काम निबटाकर आराम करने के लिये अपने कमरे में चला गया, तो बेगम साहिबा मेरे कमरे में घुस आईं, और बिना किसी शर्म व संकोच के मेरे साथ सोफे पर बैठ गईं। जोर से खिल-खिलाकर वे बोलीं, रामसिंह भी कैसा बेवकूफ है, कर्नल साहब, कैसी-कैसी चिट्ठियां लिखता है। आप भी सोचते होंगे, मैं कैसी बेहया औरत हूं, जो ऐसे लोगों से मेल-जोल रखती हूं। सच बताइये कर्नल साहब, आप क्या सोचते हैं? यह कहते हुए बेगम साहिबा मेरे और भी नजदीक खिसक आईं और मेरी आंखों में आंखें डालकर देखने लगीं। बेगम साहिबा की इस भावभंगी को देखकर मैं अचम्भे में आ गया। सितम्बर की सायंकाल पहाड़ों में अच्छी ठण्डी होती है, पर बेगम साहिबा इस समय भी महीन रेशमी कपड़े पहने हुए थीं, जिनमें उनकी छातियों का उतार-चढ़ाव साफ-साफ दिखाई देता था। अपनी घुंघराली केश-राशि को हाथों में उछालते

हुए उन्होंने फिर कहा, बोलते क्यों नहीं कर्नल साहब, आप मुझे ऐसी समझते हैं, है न ? बेगम साहिबा धीरे-धीरे सरकती हुई मेरे और नज़दीक आ रही थीं, कि मैं उछलकर खड़ा हो गया और किसी काम का बहाना करके कमरे के बाहर चला आया। कोई दस पन्द्रह मिनट बेगम साहिबा मेरी इन्तज़ार करती रहीं, और फिर उठकर अपने कमरे में चली गईं।

होटल का बड़ा खिदमतगार नन्दनसिंह अच्छा अनुभवी आदमी था। अगले दिन उसने मुझे आकर कहा, ९८ नम्बर कमरे के साहब लोग ठीक आदमी नहीं मालूम होते हैं हुज़ूर। उनके बारे में कैसी-कैसी बातें बाजार में सुनी जा रही हैं। नन्दनसिंह का मतलब मैं समझ गया। मैंने उसी होटल की बिल-बुक लाने को कहा और खुद अपने हाथ से ९८ नम्बर साहब लोगों का बिल बनाकर तैयार कर दिया। पांच दिन के भोजन के पचास रुपए और एक महीने के पेशगी किराये के सौ रुपये मिलाकर १५० रु० का बिल बना। नन्दनसिंह नवाब साहब के पास गया, जो अपनी मुर्दनी सूरत लिये हुए होटल के मैदान की बेञ्च पर ही सदा के समान विराज रहे थे। नवाब साहब ने बिल देखकर पास रख लिया। पर नन्दनसिंह बड़ा घुटा नौकर था, अपने काम को खूब समझता था। उसने कहा, हुज़ूर, साहब का हुक्म है, कि बिल के पैसे लेकर आना। यहां पेशगी का दस्तूर है। नवाब साहब उठकर अपने कमरे की तरफ चले, और नन्दनसिंह उनके पीछे-पीछे। कमरे में बेगम साहिबा अभिसार के लिये शृंगार करने में तल्लीन थीं। नवाब साहब ने बिल उनकी खिदमत में पेश कर दिया। पर वे इससे ज़रा भी चिन्तित नहीं हुईं, अपना शृंगार समाप्त करके वे सीधी मेरे पास आईं, सदा के समान खिलखिलाती हुईं। वे मेरी कुर्सी के हत्थे पर सहारा लेकर खड़ी हो गईं और बोलीं, आप फ़िकर न करें, रुपया आपके पास पहुंच जायगा। रात को नौ बजे जब मैं डिनर खाकर अपने कमरे में आराम करने के लिये गया, तो बेगम साहिबा भी वहां आ पहुंचीं, रोज की अपेक्षा भी अधिक भड़कीली पोशाक में। उनकी केशराशि से चमेली की खुशबू आ रही थी,

और मुख से शराब की। वे दम देकर मेरे सामने सोफे पर बैठ गईं, और हंस-हंसकर बातें करने लगीं। कर्नल साहब, आप तो हमसे नाराज हैं, कभी सीधे मुंह बात भी नहीं करते। न कोई खिदमत अर्ज करते हैं, न कोई काम ही बताते हैं। झट उठाकर बिल भेज दिया, जैसे हम कोई लफंगे हैं। मैं बेगम साहिबा के मतलब को समझ गया, वे मुझे होटल का बिल चुकाने आई थीं, रुपये से नहीं, अपितु अपने शरीर से। मैंने बेयरे को आवाज दी और कहा, बेगम साहिबा को उनके कमरे में पहुंचा आओ, ये अपने होश में नहीं हैं। बेयरा मेरी बात को समझ गया, और बेगम साहिबा को उनके कमरे में पहुंचा आया। तब तक नवाब साहब भी वहां आ चुके थे।

मैं खुद नवाब साहब से होटल के बिल के लिये तकाजा करता, तो वे यही कहते, उनके रुपये शीघ्र आनेवाले हैं। उन्होंने अपने मुंशी को चिट्ठी लिख दी है, वह रुपया भेजता ही होगा। किसान लोग आजकल बहुत सरकश हो गये हैं, समय पर लगान नहीं देते। अब मैं यह जान गया था, कि नवाब साहब के रुपये कहां से आनेवाले हैं। न उनकी कोई जमींदारी थी और न बेगम साहिबा उनकी पत्नी ही थीं। बेगम साहिबा अपने शरीर को बेचकर रोटी कमाती थीं, और नवाब साहब उनके मैनेजर थे। उन्हें आशा थी, कि रामनगर में शीघ्र ही कोई सुनहरी चिड़िया हाथ लग जायगी और उससे उनका सब खर्च पूरा हो जायगा। होटल मॉडर्न में आकर वे इसीलिये ठहरे थे, कि शरीफों की तरह रहें और शराफत के परदे के पीछे किसी मोटे शिकार को अपने जाल में फंसावें। पर बेगम साहिबा में वह 'कल्चर' नहीं थी, जिससे मॉडर्न ढंग के लोग आकृष्ट होते हैं। लखनऊ या दिल्ली में उनका धन्धा ज्यादा अच्छा चलता। रामनगर के लिहाज से उनका स्टैण्डर्ड अपटू-डेट नहीं था, और उन्हें वहां अपनी दुकानदारी चलाने में सफलता नहीं हुई।

नवाब साहब और बेगम साहिबा की असलियत को समझकर मैंने बटलर को हिदायत दे दी थी, कि उन्हें होटल से भोजन न दिया जाय।

अब उन्हें रोटी की बहुत किल्लत हो गई थी। नवाब साहब बाजार जाते और नानबाई की दुकान से मक्खन और रोटी खरीद लाते। पर उनके पास जो पूंजी थी, वह शीघ्र ही खतम हो गई। बेगम साहिबा के प्रशंसक तो कई पैदा हो गये थे, पर कोई ऐसा आदमी अभी उनके हाथ नहीं लगा था, जो उन पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार होता। अब नवाब साहब रोज के खर्चों को चलाने के लिये पैसा उधार लेने लगे। एक दिन रामनगर के सेनिटरी इन्स्पेक्टर से बाजार में उनकी भेंट हो गई। इनसे नवाब साहब होटल मॉडर्न में परिचित हो गये थे। नवाब साहब ने उन्हें आदाब अर्ज करके कहा, माफ कीजिये, मैं अपना पर्स होटल में भूल आया हूँ, कुछ चीजें खरीद ली हैं, चार रुपये दीजिये, आप तो रोज होटल में आते ही हैं, कल वापस लौटा दूंगा। इन्स्पेक्टर साहब की जेब में उस समय दो रुपये आठ आने थे। वे उन्होंने नवाब साहब को दे दिये। अगले दिन इन्स्पेक्टर साहब जब होटल में आये, तो सीधे १८ नम्बर कमरे में जा पहुंचे। उन्हें देखकर नवाब साहब बगलें झांकने लगे। रुपया वे कहां से लौटाते, उनके पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी। पर इन्स्पेक्टर साहब सीधे आदमी नहीं थे, बीच बाजार नवाब साहब की बेइज्जती करने से बाज नहीं आये। उन्हीं की मदद से मैंने नवाब साहब और बेगम साहिबा से अपना पिण्ड छुड़ाया। वे भंगियों की अपनी फौज ले आये और नवाब साहब का सामान होटल से उठवा दिया। होटल-बिल का मुझे एक भी पैसा वसूल नहीं हुआ, पर इस ताल्लुकेदार-दम्पती से पीछा छुड़ाकर मैंने आराम की सांस ली।

## (२८)

## अदालती चक्कर में

होटल मॉडर्न के सैकड़ों मेहमानों में जिन स्त्री-पुरुषों ने मेरा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया था, उनका उल्लेख मैंने पिछले प्रकरणों में कर दिया

है । होटल की तुलना मैं चिड़ियाघर से किया करता हूं, जिसमें आंखें खोलकर रहनेवाले मनुष्यों को नाना प्रकार के प्राणियों को नजदीक से देखने का अवसर मिलता है । मुझे होटल गोल्डन में अन्य भी बहुत-से व्यक्तियों के चरित्र आदि के अनुशीलन का सुवर्णीय अवसर मिला । पर मैं उन सबका वर्णन कर इस पुस्तक के कलेवर को बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करूंगा । ऐसा करने से तो यह ग्रन्थ महाभारत, कथासरित्सागर व सहस्र-रजनी-चरित्र के समान विशाल हो जायगा ।

पर मैं उस कथानक के लिखने का प्रलोभन नहीं रोक सकता, जिसके कारण मैं एक बार फिर कानूनी चक्कर में पड़ गया और मुझे अपने देश की अदालतों को बहुत समीप से देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ । भारत की अदालतें उस विकट चक्रव्यूह के समान हैं, जिसमें प्रवेश कर लेना तो बहुत सुगम है, पर जिससे बाहर निकल सकना बहुत ही कठिन है । एक बार किसी अदालत में पैर रख दीजिये, कोई मुकदमा दायर कर दीजिये या कोई मामूली सी दरख्वास्त ही दे दीजिये, आपके पैर कानूनी दलदल में निरन्तर नीचे की ओर धसते चले जावेंगे ।

मुझे होटल का किराया जून, १९४८ की समाप्ति के पूर्व ही विजयनगर की रियासत के खजाने में जमा करना था । जून में तो मुझे इस ओर ध्यान देने की फुरसत ही नहीं थी । जुला [illegible] और मेरे पास कोई विशेष काम न रहा, तो [illegible] को बुला-कर आदेश दिया, कि वे नफे-नुकसान का चिट्ठा बनाकर पेश करें । बाबू-जी का हिसाब तैयार था । उन्होंने मुझे बताया, कि सब खर्च निकालकर इस समय १२५०० रु० के लगभग जमा है [illegible] अदा करने के लिये [illegible] किया जा [illegible] है । [illegible]नगर का सीजन अब समाप्त हो चुका था, [illegible] के आने की विशेष आशा नहीं थी । [illegible] में कुछ यात्री [illegible] आयेंगे, पर [illegible] होटल गोल्डन के एक चौथाई कमरे भी नहीं भर [illegible] । [illegible]

कर उनसे ५००० रु० से अधिक की प्राप्ति नहीं हो सकेगी । इस प्रकार किराये-खाते केवल १७५०० रु० जमा होगा । पर मुझे तो ३१,००० रुपया किराया देना था । अब मेरे सम्मुख प्रश्न यह था, कि शेष १३,५०० रु० मैं कहाँ से लाऊँगा । अपने मुनाफे का तो सवाल ही पैदा नहीं होता था । मेरे सामने तो यह समस्या थी, कि मकान-मालिक के किराये का इन्तजाम किस प्रकार करूं ?

मैं इसी चिन्ता में डूबा हुआ था, कि विजयनगर रियासत के मैनेजर साहब का एक रजिस्टर्ड नोटिस मुझे मिला । उसमें लिखा था, कि आगामी जुलाई बीत जाने पर भी अब तक होटल बिल्डिंग का किराया पेश नहीं किया है । इकरारनामे के अनुसार यह किराया जून के अन्त तक अदा कर दिया जाना चाहिये था । यदि इस नोटिस के पहुंचने के दो सप्ताह के अन्दर अन्दर मैंने पूरा ३१००० रुपया रियासत के खजाने में जमा नहीं किया, तो मेरे खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जायगी और किराये की रकम अदालत द्वारा वसूल कर ली जायगी । यह नोटिस पाकर मेरी क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना पाठक सहज में कर सकते हैं । होटल को किराये पर लेते हुए इकतीस हजार रुपयों की रकम जमानत के रूप में पेश जमा करानी पड़ी थी, और यह रकम एक मित्र से कर्ज पर ली थी । इसका सूद मेरे सिर पर चढ़ रहा था । किराये खाते मेरे पास साढ़े बारह हजार रुपये मौजूद थे, शेष रकम अब कर्ज पर भी नहीं मिल सकती थी । मैंने सोचा, क्यों न विजयनगर रियासत के मैनेजर साहब के सामने जाकर फरियाद करूं । उनसे कहूं, समय को देखते हुए वे किराये में कमी करने की कृपा करें । पर मैनेजर साहब अपनी रैयत के दुःखों को सुनने व उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के आदी नहीं थे । उनकी जमींदारी में हजारों किसान ऐसे थे, जिनको पेट भर खाने को भी मयस्सर नहीं होता था । यदि मैनेजर साहब उनकी करुण कथा पर ध्यान देकर लगान की रकम में रियायत कर दिया करते, तो रियासत का दिवाला ही न निकल जाता । मैं आगरा गया, मैनेजर साहब

को अपनी दिक्कतें व परेशानियां सुनाईं। पर वे किसी भी प्रकार की रियायत करने को तैयार नहीं हुए। रामनगर वापस लौटने पर कुछ मित्रों ने सलाह दी, कि मुझे रेण्ट-कण्ट्रोल-एक्ट के अधीन अदालत द्वारा समुचित किराया तय करा लेने की दरख्वास्त दे देनी चाहिये। उन दिनों उत्तर-प्रदेश में इस प्रकार का कानून मौजूद था, जिसके अनुसार, यदि किसी किरायेदार ने मकानमालिक से किराये के बारे में कोई ऐसा इकरार कर लिया हो, जो अत्यधिक अनुचित हो, तो मुंसिफ व सिविल जज साहब की अदालत द्वारा उसमें परिवर्तन कराया जा सकता था। इसमें सन्देह नहीं, कि होटल मॉडर्न के लिये ३१००० रुपया किराया बहुत अधिक था। मेरे से पहले के किरायेदार इस रकम का आधा भी किराया नहीं देते थे। मैंने सोचा, क्यों न सिविल जज साहब की अदालत में मुनासिब किराया तय कराने के लिये मुकदमा दायर कर दूं। अब प्रश्न यह था, कि इस काम के लिये किस वकील साहब की सहायता लूं। रामनगर में वकीलों की कमी नहीं थी, पर मेरा परिचय किसी से भी नहीं था। होटल मॉडर्न के किराये का प्रश्न मेरे लिये इतना अधिक महत्वपूर्ण था, कि मैं किसी बहुत अच्छे वकील की सहायता प्राप्त करने के लिये उत्सुक था। मेरे एक मित्र ने बताया, कि श्री त्रिलोकचन्द्र खन्ना बहुत अच्छे वकील हैं, वे अभी-अभी पश्चिमी पंजाब से आये हैं। लाहौर हाईकोर्ट में उनका बड़ा नाम था, और छोटे मुकदमों को वे हाथ भी नहीं लगाते थे। अब रिफ्यूजी होकर वे रामनगर आये हुए हैं, और यहां की अदालत में प्रैक्टिस कर रहे हैं। सायंकाल के समय मैं खन्ना साहब की कोठी में उपस्थित हुआ। मैं खन्ना साहब को नहीं जानता था, पर वे मुझसे अपरिचित नहीं थे। अपने मित्रों के साथ एक-दो बार वे होटल मॉडर्न में चाय पी चुके थे, और मेरे विषय में बहुत कुछ सुन चुके थे। वे मुझसे बड़ी प्रसन्नता के साथ मिले, ठीक उसी तरह जैसे कोई चतुर शिकारी किसी अच्छे शिकार को अपने जाल में फंसते हुए प्रसन्न होता है। उन्होंने [illegible] अपने नौकर को आवाज दी, और मेरे लिये चाय

लाने का हुक्म दिया। मैंने वकील साहब से कहा, मैं चाय पी आया हूं, और यह चाय का समय भी नहीं है। पर वकील साहब बोले, आप तो हजारों को रोज चाय पिलाते हैं, बड़े-बड़े राजा-रईस और अफसर आपके साथ बैठकर चाय पीते हैं। हम गरीबों की चाय आप कैसे पीयेंगे? यदि आप कभी लाहौर आते, तो देखते कि इस नाचीज के घर पर भी हाईकोर्ट के जज और बड़े-बड़े मिनिस्टर आते-जाते रहते थे। लाखों से कम के केस को तो मैं हाथ भी न लगाता था। वहां मेरी आलीशान कोठी थी, और दो मोटरें हर समय पोर्च पर खड़ी रहती थीं। आप कभी लाहौर गये होंगे, तो लारेन्स गार्डेन आपने जरूर देखा होगा। उसके बाईं ओर जो बड़ा-सा बंगला था, वह अपना ही था। इसी बीच में चाय आ गई, मजबूर होकर मुझे भी एक प्याला पीना पड़ा। मेरी इच्छा थी, कि मैं वकील साहब की सेवा में अपनी कष्ट-कथा बयान करूं, पर उन्होंने मुझे इसका अवसर ही नहीं दिया। वे अपने अतीत वैभव की बातें सुनाते रहे, और यह भी कहते गए, कि रामनगर के लोग बहुत सुस्त हैं, न वे किसी से मिलते-जुलते हैं, और न किसी की कद्र ही करते हैं। मालूम नहीं उत्तर-प्रदेश के लोगों की तबियत ही कैसी है। जब मैंने अपने केस की बात चलाई, तो उन्होंने कहा—आप यही तो चाहते हैं न, कि आपका किराया कम हो जाय। आप फिक्र न करें, मैं केस दायर कर दूंगा, और रियासत के मैनेजर साहब आपसे उससे अधिक किराया नहीं ले सकेंगे, जितना कि पहला किरायेदार उन्हें देता था। मैं चाहता था, कि वकील साहब मेरी फाइल देख लें, रियासत के मैनेजर साहब के साथ जो इकरार मैंने किया था, उसे ध्यान से पढ़ लें। उनके साथ जो पत्र-व्यवहार मेरा हुआ था, उस पर भी एक नजर डाल लें। पर वकील साहब को इसके लिये फुरसत ही नहीं थी। वे कहते गये, मैंने लाहौर हाईकोर्ट में कितने ही ऐसे केस जिता दिये, जिनमें मेरे मुवक्किलों को एक फीसदी भी सफलता की आशा नहीं थी। आपका केस तो बहुत मामूली है, इसमें तो नाकामयाबी की कोई बात ही नहीं। आप अपनी फाइल छोड़ जाइये।

रही फीस की बात, कर्नल साहब, मैंने आपकी बहुत तारीफ सुनी है। मुझे अभिमन्यु न करें। मैं आपसे कानूनी फीस से एक पैसा अधिक नहीं लूंगा। आपका केस ३१००० रुपये का है। आप जानते ही हैं, कि वकील की कानूनी फीस ७॥) सैकड़ा होती है। वैसे तो मैं सब फीस पेशगी लिया करता हूं, पर आपसे मैं इसके लिये आग्रह नहीं करूंगा। आप एक हजार रुपया अब दे दें, बाकी बाद में दे दीजियेगा। आपका केस एक सप्ताह में दायर कर दिया जायगा। मुझे नहीं मालूम, कि उत्तर-प्रदेश में स्टाम्प की क्या दर है। इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देने की मुझे फुरसत ही कहां है। आप कल अदालत चले जाइयेगा, वहां मेरे मुंशी हिफाजत हुसैन मिलेंगे, वे स्टाम्प का हिसाब करके आपको बता देंगे। स्टाम्प आप खरीद लाइयेगा, बस केस दायर करने में जरा भी देर नहीं होगी।

श्री त्रिलोकचन्द खन्ना भारी-भरकम शरीर के रोबदार आदमी थे, और विशुद्ध अंग्रेजी पहरावे में रहते थे। उनकी आयु चालीस साल के लगभग थी। १९४७ में भारत का विभाजन होने के कारण वे लाहौर छोड़कर रामनगर आ गये थे। एक अपरिचित नगर की जनता से परिचय प्राप्त करने के लिये उन्होंने वहां की सभा-सोसायटियों में भाग लेना शुरू कर दिया था। आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में वे नियमपूर्वक सम्मिलित होते थे। उन्हें चौकड़ी मारकर बैठने का अभ्यास नहीं था, और पतलून पहनकर चौकड़ी मारकर बैठ सकना सुगम भी नहीं होता। फिर भी वे आर्यसमाज में नियमपूर्वक आते, फर्श पर आंख बन्द कर बैठ जाते और बड़ी श्रद्धा से वेदमन्त्र, प्रार्थना और उपदेश आदि का श्रवण करते। शीघ्र ही [illegible] का ध्यान इस सूट-बूटधारी अप-टू-डेट 'महाशय' की ओर [illegible] हुआ। अपना परिचय देते हुए खन्ना साहब ने बताया, [illegible] आर्यसमाजी क्षेत्र में बहुत ऊंची हैसियत रखता था। [illegible] का निर्माण करने के लिये उनके पिता-जी ने [illegible]। पंजाब में कितने ही गुरुकुल, अना-

थालय, डी० ए० वी० स्कूल और पुत्री-पाठशालायें उनके परिवार के दान पर चलती थीं। रामनगर में आर्यसमाजी लोग इस बात से बहुत प्रसन्न थे, कि श्री त्रिलोकचन्द्र खन्ना जैसे प्रतिष्ठित आर्य अब रामनगर आकर बस गये हैं, और अब वहां समाज में नई जान पड़े बिना नहीं रहेगी। उन्हें क्या मालूम था, कि खन्ना साहब समाज की किसी भी नियम-मर्यादा का पालन नहीं करते। वे मांस खाते हैं, और कितनी ही अन्य ऐसी बातें करते हैं, जिन्हें आर्यसमाज कभी सहन नहीं कर सकता। वे आर्यसमाज के अधिवेशनों में केवल इसलिये आते थे, कि जनता में उनका परिचय बढ़े, और उनकी वकालत में मदद मिले। वैसे न उन्हें आर्यसमाज से कोई प्रेम था और न उसके सिद्धान्तों से कोई जानकारी ही। खन्ना साहब से मेरा परिचय एक आर्यसमाजी मित्र द्वारा ही हुआ था, और इसमें सन्देह नहीं, कि आर्य-समाज आदि संस्थाओं में आने-जाने के कारण लाहौर हाईकोर्ट के ये वकील साहब रामनगर की जनता में अच्छा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में समर्थ हो गये थे।

मैंने १००० रुपये का चैक श्री त्रिलोकचन्द्र खन्ना की सेवा में भेज दिया। खजाने में स्टाम्प भी जमा किया गया। खन्ना साहब ने मुकदमे की मिसल तैयार कर दी। १००० रुपया पेशगी पाकर भी उन्होंने यह गवारा नहीं किया, कि फाइल को पढ़ें या धैर्य के साथ आधा घण्टे मेरे साथ बैठकर केस को अच्छी भांति समझ लें। श्री त्रिलोकचन्द्र अपने को बड़ा अनुभवी वकील समझते थे। उनका खयाल था, कि दो मिनट बात करके ही वे सब मामले को अच्छी भांति समझ लेते हैं। उन्हें कुल मिलाकर २४०० रुपये के लगभग फीस मुझसे मिलनी थी। इतनी भारी रकम पाकर उन्हें इतना कष्ट तो अवश्य उठाना चाहिये था, कि अपना कुछ समय केस को समझने में, फाइल पढ़ने में और कानून को देख लेने में व्यतीत करते। पर उनका विचार था, कि कानून तो उन्हें सब कण्ठस्थ है, फाइल पढ़ना मुंशियों या नये वकीलों का काम है, और उन जैसे बड़े वकीलों के लिये यह जरूरी नहीं, कि छोटी-छोटी बातों

पर गौर करें। खैर, प्लेन्ट ( अर्जीदावा ) लिख ली गई, और मैंने स्वयं उसे सिविल जज के कोर्ट में जाकर पेश कर दिया। इधर विजयनगर रियासत के मैनेजर साहब ने भी आगरा की अदालत में मुझ पर केस दायर कर दिया, जिसका उद्देश्य होटल मॉडर्न के सालाना किराये की रकम को मुझसे वसूल करना था। दोनों मुकदमे एक-दो दिन के अन्तर से दायर हो गये।

मुझे अदालती झंझटों का कोई भी अनुभव नहीं था। मुकदमेबाजी मेरे लिये एक नया तजुर्बा था। दो सितम्बर को रामनगर की अदालत में मेरे मुकदमे की पहली पेशी हुई। विजयनगर रियासत की ओर से आगरा के एक प्रसिद्ध वकील मामले की पैरवी करने के लिये आये थे, उनके साथ में एक छोटे वकील और दो मुंशी भी थे। बाद में मुझे मालूम हुआ, कि विजयनगर रियासत में अदालती कार्रवाई के लिये एक पृथक् महकमा है। जिस रियासत को जमींदारी से लाखों रुपया साल की आमदनी हो, जिसके आगरा, दिल्ली, नैनीताल, रामनगर आदि शहरों में सैकड़ों बंगले और मकान हों, उसमें मुकदमेबाजी तो रोज का ही धन्धा होता है। नवाब साहब को तो यह मालूम ही नहीं होता, कि किसने उन पर मुकदमा किया है, और किस पर उनकी तरफ से मुकदमा दायर हुआ है। यह सब काम उन लॉ-एजेन्टों द्वारा किया जाता है, जिन्हें इसी काम के लिये वेतन मिलता है। लॉ-एजेन्ट साहब व उनके स्टाफ की भलाई इसी में है, कि मुकदमेबाजी दिन दुनी रात चौगुनी बढ़े। वे जरूरत के बिना भी मुकदमे दायर करते हैं, केवल इसीलिये कि उनका महत्त्व कायम रहे, और उनके महकमे में किसी तरह की कमी न की जाय। विजयनगर रियासत के मुकदमेबाजी के महकमे में कोई तीन लॉ-एजेन्ट और दस मुंशी थे। प्रत्येक मुकदमे के लिये वे अलग अलग [illegible] लेते थे। आगरा जिले के अनेक वकीलों का [illegible] प्रारम्भ से होता था, कि इन्हें विजयनगर रियासत के लॉ-एजेन्ट साहब [illegible] मुकदमे में अपना वकील नियत कर लें।

से वकील दिल लगाकर कोशिश करते थे, और इस यत्न में रहते थे, कि उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक बड़ा मुकदमा पैरवी के लिये दिया जाय। मेरे मुकदमे को जिन वकील साहब के सुपुर्द किया गया था, उनका नाम श्री राधामोहन पाण्डेय था। ये आगरा के प्रसिद्ध एडवोकेट थे और उत्तर-प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य। बड़े-बड़े अफसर और प्रान्त के मन्त्री इनका रोब मानते थे और अदालत में कोई इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। रामनगर के कोर्ट में जब मेरा मुकदमा पेश हुआ, तो इन्होंने एक दरख्वास्त पेश कर दी, कि जज साहब को इस मामले पर विचार करने का कोई हक ही नहीं है, यह मुकदमा उनके न्यायक्षेत्र के बाहर का है। असली मामला तो पेश ही नहीं हो पाया, सारा समय इसी बहस में बीत गया। मेरे वकील श्री त्रिलोकचन्द्र खन्ना भी कोई मामूली वकील नहीं थे, लाहौर हाईकोर्ट में वे बड़े-बड़े जजों के सम्मुख बहस कर चुके थे। श्री पाण्डे और श्री खन्ना की बहस को देखकर मैं ऐसा अनुभव कर रहा था, मानो दो दिग्गज मैदान में उतरकर लड़ रहे हों। बहस सुनकर जज साहब ने फैसला दिया, यह मुकदमा उनके न्यायक्षेत्र के बाहर नहीं है। इस निर्णय के बाद जज साहब असली मुकदमे पर विचार करना चाहते थे, पर श्री पाण्डे एक अन्य दरख्वास्त पहले से ही तैयार करके लाये हुए थे। इसमें यह निवेदन किया गया था, कि क्योंकि किराये की वसूली के लिये उन्होंने आगरा की अदालत में मेरे खिलाफ मुकदमा दायर किया हुआ है, अतः जब तक उसका फैसला न हो जाय, रामनगर की अदालत में मुकदमे को स्थगित रखा जाय। इस पर भी खूब बहस हुई, अभी दोनों पक्षों के वकील अपनी बहस को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाये थे, कि सायंकाल के चार बज गये। जज साहब ने मामले को स्थगित कर दिया और अगली पेशी के लिये तीन अक्तूबर की तारीख नियत कर दी।

उधर दस सितम्बर को उस मुकदमे की पेशी थी, जिसे विजयनगर रियासत की ओर से आगरा में मेरे खिलाफ दायर किया गया था। मेरे

को बचाने के लिये मैंने आगरा के ही एक वकील को अपनी ओर से कर लिया था। आगरा में मैं किसी वकील से परिचित नहीं था, पर होटल मॉडर्न में एक ऐसे सज्जन ठहरे हुए थे, जो आगरा के निवासी थे। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे बताया, कि आगरा में एक से एक अच्छे वकील मोजूद हैं, जिनकी फीस प्रति पेशी ५० रुपये से ५०० रुपये तक है। इस सज्जन की सिफारिश से मैंने श्री किशोरीरमण सक्सेना से पत्र-व्यवहार किया, जो १०० रुपया प्रति पेशी फीस लेकर मेरी पैरवी करने को तैयार हो गये। पर श्री त्रिलोकानन्द खन्ना मेरे-जैसी सोने का अण्डा देनेवाली मुर्गी को हाथ से जाने देने के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने मुझे समझाया, मुकदमेबाजी में दो चार सौ रुपये का मुंह नहीं देखना चाहिये। यदि अदालत द्वारा किराया कम हो गया, तो मुझे कम से कम १५००० रुपये का फायदा होगा। इसलिये मुकदमेबाजी पर अगर पांच-सात हजार भी खर्च हो गया, तो मुझे इसका ख्याल नहीं करना चाहिये। आगरा की अदालत में जो मुकदमा दायर है, वह बड़ा अहम है। यदि कहीं वहां की अदालत ने मेरे खिलाफ किराये की रकम की डिग्री कर दी, तो मामला बहुत बिगड़ जायगा। अतः आगरा के मुकदमे को तब तक के लिये मुल्तवी कराना बहुत जरूरी है, जब तक कि शामनगर की अदालत में मुनासिब किराये का फैसला न हो जाय। खन्ना साहब ने मुझे यह भी कहा, कि आप आगरा के वकील पर भरोसा न करें। विजयनगर-जैसी प्रतिष्ठित व सम्पन्न रियासत को नाराज कर सकना आगरा के किसी भी वकील के लिये सुगम नहीं है। कौन जानता है, कि सक्सेना साहब पहले कभी विजयनगर रियासत की तरफ से किसी मुकदमे में वकील रह चुके हों या आगे उनके मुकदमे प्राप्त करने के लिये कोशिशमन्द हों। इस हालत में वे आपका काम ठीक तरह से नहीं करेंगे। अच्छा यह होगा, कि आप मुझे आगरा ले चलें। मैं अवश्य ही वहां के मुकदमे को स्थगित करा दूंगा। मुझे खन्ना साहब की बात समझ में आ गई। उन्होंने अत्यन्त कृपापूर्वक और अपना नुकसान

करके १०० रुपया दैनिक पर मेरे साथ आगरा चलना स्वीकार कर लिया। उनका सफर-खर्च तो मुझे देना ही था। आगरा पहुंचकर हम दोनों सक्सेना साहब से मिले। शुरू में खन्नाजी और सक्सेनाजी जिस ढंग से मिले, उसे देखकर मुझे स्मरण हो आया, कि "पण्डितो पण्डितं दृष्ट्वा श्वानवत् गुर्गुरायते"। पर शीघ्र ही इन दोनों को ख्याल हुआ, कि हमारे हित एक दूसरे से नहीं टकराते हैं। फीस तो दोनों को ही पूरी मिलेगी। अब उन्होंने एक दूसरे की प्रशंसा के पुल बांधने शुरू कर दिये। सक्सेना साहब ने कहा—आप अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं, जो रामनगर के मुकदमे के लिये आपको खन्ना साहब-जैसे सुयोग्य वकील मिल गये हैं। इनके हाथों में आपके हित सर्वथा सुरक्षित रहेंगे। खन्ना साहब ने कहा—यदि मुझे पहले मालूम होता, कि सक्सेना साहब इतने सुयोग्य व्यक्ति हैं, तो मैं अपना हर्ज करके क्यों आगरा आने की तकलीफ करता? अपने दोनों वकीलों की बातें सुनकर मैं सोचने लगा—इन लोगों की भी कैसी लीला है।

उष्ट्राणां विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः।
अन्योन्यं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः॥

दस सितम्बर को आगरा की अदालत में मेरा मुकदमा पेश हुआ। मेरी तरफ से मुकदमे को स्थगित करने के लिये अर्जी पेश कर दी गई। रियासत की तरफ से पाण्डेय साहब खूब जोर से लड़े, पर मेरे दो वकीलों के मुकाबले में वे नहीं ठहर सके। जज साहब ने फैसला दे दिया, कि क्योंकि मुद्दाअलेह किराया देने से इनकार नहीं करता, और उसने रामनगर की अदालत में मुनासिब किराया तय कराने के लिये अर्जी दी हुई है, अतः अभी किराया वसूली के मुकदमे को मुल्तवी रखा जाय। १५ अक्टूबर को अदालत में यह सूचना दी जाय, कि रामनगर के जज साहब ने कितना किराया तय किया है। पेशी के खतम होने पर खन्ना साहब और सक्सेनाजी ने आगरा के एक बढ़िया होटल में मेरे साथ चाय पी। वहां इन दोनों ने एक दूसरे की तारीफ के पुल बांध दिये। उनकी बातों को सुन-सुनकर मैं भी फूला नहीं

समझता था, और मानता था, कि मैं भी वस्तुतः अत्यन्त सौभाग्यशाली हूं, जो मुझे इतने बढ़िया वकील प्राप्त हुए हैं। ये सज्जन फीस तो जरूर तगड़ी लेते हैं, पर काम भी तो खूब करते हैं। रियासत के वकील देखते ही रह गये, और उन्होंने मुकदमे को स्थगित करा दिया।

पर श्री राधामोहन पाण्डेय भी अपने फन में पूरे उस्ताद थे। उन्होंने सोचा, अगर रामनगर में मुनासिब किराया तय होने का मुकदमा जारी रहा, तो कहीं रियासत के खिलाफ फैसला न हो जाय। उन्होंने तुरन्त एक दरख्वास्त तैयार की, और उसे इलाहाबाद हाईकोर्ट में जाकर पेश कर दिया। इस दरख्वास्त का उद्देश्य यह था, कि रामनगर और आगरा की अदालतों में चलनेवाले दोनों मुकदमों को मिलाकर एक कर दिया जाय, और क्योंकि रामनगर के सिविल जज साहब को यह अधिकार नहीं है, कि वे मेरे द्वारा चलाये गये मुकदमे पर विचार कर सकें, अतः आगरा की अदालत ही दोनों मुकदमों का एक साथ फैसला करे। ३ अक्टूबर को जब रामनगर में मेरे मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई, तो पाण्डेय साहब ने हाई-कोर्ट का आर्डर पेश कर दिया, जिसमें यह कहा गया था, कि जब तक हाई-कोर्ट द्वारा विजयनगर रियासत की दरख्वास्त का फैसला न हो जाय, सिविल जजी में मुकदमों की सुनवाई को स्थगित रखा जाय। पाण्डेय साहब चतुर वकील थे, और जिस प्रकार शतरंज के खिलाड़ी एक दूसरे की चाल को मात देने का यत्न करते हैं, इसी तरह की चालें इन मुकदमों के बारे में चली जा रही थीं। प्रत्येक महीने मुझे दो बार अदालत में पेश होना पड़ता था, एक बार रामनगर की अदालत में और दूसरी बार आगरा में। वकील लोग प्रत्येक पेशी की अपनी पूरी फीस ले लेते थे, [illegible] था और [illegible] करना ही फिजूल है। [illegible] देते थे, और कोई नई [illegible] करने की नौबत ही [illegible] करने में

ही बीत जाता था, और जज साहब इस पर भी अपना फैसला नहीं दे पाते थे। पेशी का अन्त एक महीने बाद की नई तारीख पड़ जाने के साथ होता था, और मैं परेशान था, कि यदि इस चाल से मेरे मुकद्दमे चले, तो उनका अन्त कब और कैसे होगा ?

पाण्डेय साहब की दरख्वास्त पर विचार करने के लिये हाईकोर्ट द्वारा तारीख पड़ गई, और मेरे सम्मुख यह समस्या उपस्थित हुई, कि इलाहाबाद जाकर इस नये मामले को भी निबटाऊं। खन्ना साहब की इच्छा थी, कि वे मेरी ओर से हाईकोर्ट में भी पेश हों, पर इसके लिये वे २५० रुपया दैनिक फीस मांगते थे, आने-जाने का खर्च अलग। मैंने सोचा, क्यों न इलाहाबाद चलकर वहीं से कोई वकील ठीक कर लूं। मालूम नहीं, वहां कितने दिन लग जावें, कोई और नई दरख्वास्तें रियासत की ओर से पेश कर दी जावें। खन्ना साहब कब-कब वहां जावेंगे और उनकी फीस व सफर-खर्च पर मेरी कितनी रकम स्वाहा हो जायगी। मैं इलाहाबाद गया, और वहां किसी परिचित सज्जन की तलाश करने लगा। अचानक एक दिन सड़क पर घूमते-घूमते पण्डित किशोरीदासजी से भेंट हो गई। ये महाशय ओरियन्टल बीमा कम्पनी के एजेन्ट थे, और बीमा-पालिसी के लिये शिकार की तलाश करते-करते रामनगर भी गये थे। यद्यपि वे होटल आनन्द में नहीं ठहरे थे, पर वहां ठहरे हुए सम्भ्रान्त लोगों की टोह लेते हुए मेरे दफ्तर के कई चक्कर लगा चुके थे। मुझे देखते ही उन्होंने तांगा रोक लिया, और तुरन्त नीचे उतरकर बोले—कहिये, कर्नल साहब, यहां कहां ? पण्डित किशोरीदासजी से मिलकर मुझे बहुत खुशी हुई। डूबते हुए को तिनके का सहारा मिल गया। मैंने पण्डितजी के सम्मुख अपनी समस्या रखी। उन्होंने कहा, इलाहाबाद में आप वकील के लिये परेशान हैं। यहां तो गली-गली में वकील हैं, सब एक से एक बढ़कर। मैं सबको जानता हूं, कहिये कितनी फीसवाला वकील करना चाहते हैं ? मामूली वकील से तो आपका काम चलेगा नहीं। रियासत के वकील पाण्डेयजी हैं, जो बहुत

प्रभावशाली व्यक्ति हैं। फिर वे हाईकोर्ट में किसी बहुत बड़े वकील की भी मदद लेंगे। रियासत के लिये १००० रुपया प्रति पेशीवाला वकील कर लेना भी कोई बड़ी बात नहीं है। आप भी कोई ऐसा वकील करें, जो रियासत-वालों के मुकाबले में खड़ा हो सके। अगर आप ३०० रुपया प्रति पेशी भी खर्च कर सकें, तो मैं ऐसे वकील से आपका परिचय करा दूंगा, जो १००० रुपये फीसवाले वकील से भी बराबर की टक्कर ले सकेगा। मेरे मित्र श्री देवनाथ हाईकोर्ट के बहुत बड़े वकील हैं। वैसे तो उनकी फीस ५०० रु० प्रति पेशी है, पर मेरे कहने से ३०० रुपया तक लेना वे मंजूर कर लेंगे। पण्डित किशोरीदासजी मुझे देवनाथजी की सेवा में ले गये। वे एक आलीशान बंगले में रहते थे, हाईकोर्ट के बहुत नजदीक एलिगन रोड पर। बाहर तीन-चार मोटरकारें खड़ी थीं। अन्दर घुसते हुए वकील साहब के प्रभाव, समृद्धि व वैभव का कदम-कदम पर अनुभव होता था। मुझे एक विशाल ड्राइंग रूम में बिठा दिया गया। किशोरीदासजी अन्दर कहीं चले गये। आध घण्टे बाद देवनाथजी ने ड्राइंग रूम में प्रवेश किया। किशोरीदासजी उनके साथ थे। काली अचकन और श्वेत गांधीटोपी पहने हुए देवनाथजी बहुत ही भव्य और प्रभावशाली दिखाई देते थे। मैंने उठ-कर उन्हें प्रणाम किया। बात चलने पर उन्हें मालूम हुआ, कि मैं मेरठ जिले का रहनेवाला हूं। मेरे कुछ रिश्तेदारों का परिचय प्राप्त कर वे बोले, ओहो, आप पण्डितजी के रिश्तेदार हैं, तब तो आप अपने घर के आदमी हैं। पण्डितजी तो मेरे घनिष्ठ मित्र थे, बिलकुल सगे भाइयों के समान। फीस की बात चलने पर देवनाथजी ने कहा - -आप भी कैसी बातें करते हैं? भला आपसे फीस का क्या सवाल है? कहीं अपनों से भी ऐसी बातें की जाती हैं? देवनाथजी से मिलकर मैंने अनुभव किया, अदालती चक्कर से मेरा निस्तार करने के लिये साक्षात् भगवान् ने ही वकील साहब का रूप धारण कर अवतार लिया है। मैंने अपनी फाइल उनके सुपुर्द कर दी। उन्होंने वकालतनामा मेरे सम्मुख रखा और उस पर मेरे हस्ताक्षर करा लिये।

देवनाथजी को नमस्कार कर मैं खुशी-खुशी वहां से विदा हुआ। अभी मैंने बरामदे से नीचे कदम रखा ही था, कि पीछे से आवाज आई, जरा सुनिये। मैंने मुड़कर देखा, तो बरामदे के दायें कोने के कमरे से एक वृद्ध सज्जन मुझे बुला रहे थे। मैं उनके पास गया, तो उन्होंने कहा, खर्चे की रकम जमा करा दीजिये। मैंने पूछा, कितना खर्च जमा कराना होगा। उन्होंने उत्तर दिया, ३०० रु० वकील साहब की फीस का, ५० रुपया मुंशियाना का और ३० रु० अन्य विविध खर्च का। कुल मिलाकर ३८० रुपया का हिसाब सुनकर मैं सन्न रह गया। पर अब मेरे सम्मुख उपाय ही क्या था। मेरी फाइल देवनाथजी की आलमारी में जगह पा चुकी थी, और मैं उनके वकालतनामे पर दस्तखत कर चुका था। देवनाथजी तो अपने घर के ही आदमी थे, फिर मैं उनसे कैसे कहता, कि मेरी फाइल मुझे वापस दीजिये, मुझे ३८० रुपया खर्च कर नहीं देना है। मैंने चुपचाप जेब से चेकबुक निकाली, और ३८० रुपया का चेक काट दिया। चेक को संभालकर अपनी मेज की दराज में रखते हुए मुंशीजी ने कहा—अब आप बेफिक्र होकर जाइये। पेशी के दिन आपको हाजिर होने की जरूरत नहीं। सब काम वकील साहब खुद कर लेंगे, यदि आपसे कुछ पूछने की जरूरत होगी, तो आपको चिट्ठी लिख दी जायगी।

उसी शाम मैं इलाहाबाद से वापस लौट पड़ा। रेलगाड़ी में बैठा हुआ मैं सोच रहा था, मैं भी किस जंजाल में फंस गया हूं। जब मेरे घर के आदमी ने खर्चे के ३८० रुपये मुझसे वसूल कर लिये हैं, तो अपरिचित वकील के पल्ले पड़ जाने पर मेरी क्या दशा होती। कोई पांच दिन बाद देवनाथजी के मुंशी साहब का एक पत्र मुझे मिला। उसमें लिखा था, वकील साहब को इस तरह के छोटे मामलों पर अधिक ध्यान देने की फुरसत नहीं रहती है। आप शिक्षित व्यक्ति हैं, अच्छा होगा, कि आप अपने मामले को संक्षिप्त व स्पष्ट रूप से लिखकर भेज दें, ताकि वकील साहब उसे पढ़कर सब बातों को भली भांति समझ लें। रियासत की दरख्वास्त के जवाब में जो अर्जी आप

देना चाहें, उसे भी वकालतनामा भेज दें, ताकि वे उसे भी हाईकोर्ट में पेश कर दें। मुंशीजी की चिट्ठी पढ़कर मैंने अपना सिर धुन लिया। मैंने सोचा, कि किस बात के मैंने ३८० रु० देवनाथजी को दिये हैं। जब उन्हें मेरी फाइल तक पढ़ने की फुरसत नहीं है, तो उन्होंने यह रकम किस लिये मुझसे वसूल की। मुमकिन है, कि देवनाथजी की निगाह में ३८० रुपये की कोई कीमत न हो। उन्होंने मुझसे सज्जनतापूर्ण रियायत की हो, और अपनी हैसियत से कम फीस लेकर मेरा कार्य करना स्वीकार किया हो। पर एक बार जब उन्होंने मेरा कार्य मंजूर कर लिया था, तो उन्हें मेरे साथ न्याय अवश्य करना चाहिये था। अदालती चक्कर में जो भी वकील मेरे पल्ले पड़े, मेरी राय में उन्होंने मेरे केस पर समुचित ध्यान देने का कष्ट नहीं किया। उन्हें देखकर मैं सोचा करता था, वकालत का पेशा भी कैसे मजे का है। मुसीबत के मारे हुए मुवक्किल लोग वकीलों के दरबार में हाजिर होते हैं। शुरू में वकील उनसे मीठी-मीठी बातें करते हैं, जब मुवक्किल एक बार उनके जाल में फंस जाता है, तो फिर उसके लिये छुटकारा पा सकना सम्भव नहीं रहता। हमारे देश में न्याय का ढंग भी कैसा अद्भुत है, कानून इतना जटिल है, कि उसका आश्रय लेकर किसी मामले का फैसला सुगमता के साथ किया ही नहीं जा सकता। छोटे-छोटे मुकदमों के फैसले में सालों लग जाते हैं, पेशी पर पेशी पड़ती जाती है। वकीलों का फायदा इसी बात में है, कि मामला लम्बा चले। जितनी पेशियां पड़ेंगी, वकीलों की फीस भी उतनी ही बढ़ती जायगी। सैकड़ों रुपया फीस लेकर भी वकील लोग मुकदमे पर समुचित ध्यान नहीं देते। वकीलों के मुकाबले में डाक्टर लोग तो मुझे देवता प्रतीत होते थे। अच्छे बड़े विशेषज्ञ डाक्टर १६ रुपया फीस प्राप्त [illegible] तो चार या पांच रुपया फीस [illegible] पर आने पर भी घण्टा आध [illegible] बीस मिनट मरीज को देखता है, [illegible] दूसरी बार यदि आप [illegible]

विजिट के लिये न भी बुलायें, तो मरीज का हाल पूछकर वह नया नुस्खा लिख देता है, और अगर आप घूमते-फिरते मिल जायें, तो मरीज का हाल-चाल भी पूछ लेता है। इसके मुकाबले में वकील लोग? वे आपके घर पर कभी नहीं आवेंगे, आप उनके दरबार में हाजिर होंगे। मेरा मुनशी पहले से वकालतनामे पर आपके दस्तखत करा लेंगे, फिर खर्चे जमा करा लेंगे। कचहरी में वे बाररूम में बैठे गपशप करते रहेंगे। जब आपके मुकदमे की आवाज पड़े, तो आप अदालत में उनकी तलाश के लिये इधर-उधर भागते फिरिये। वकील साहब आवेंगे, पांच मिनट बहस करेंगे, मुवक्किल पर यह असर डालने की कोशिश करेंगे, कि उनके हाथों में उसके हित सर्वथा सुरक्षित हैं, और फिर वहीं पेशी बदलवाकर बाररूम लौट जावेंगे। मैं जानता हूं, कि वकील लोगों की स्थिति न्याय और कानून के अफसरों की होती है। यह माना जाता है, कि उनका कार्य सत्य-न्याय करने में न्यायाधीश की सहायता करना है। पर मुझे सन्देह इस बात में है, कि हमारे देश की अदालतों की जो कार्यविधि है, कानून का जो रूप है, उसमें लोगों को वस्तुतः न्याय प्राप्त हो सकता है या नहीं। यदि उन्हें न्याय प्राप्त भी होता है, तो उसके लिये उन्हें कितना खर्च करना पड़ता है, कितना समय नष्ट करना होता है और कितनी परेशानी उठानी पड़ती है!

पांच नवम्बर को हाईकोर्ट में मेरा मामला पेश हुआ। रियासत की दरख्वास्त के जवाब में अपना वक्तव्य मैंने देवनाथजी को लिखकर भेज दिया था। उसे उन्होंने उसी रूप में जज साहब की सेवा में उपस्थित कर दिया। मेरी इच्छा थी, कि आगरा और रामनगर के दोनों मुकदमे अलग-अलग रहें, और किराये की वसूली का मामला तब चले, जब कि रामनगर के सिविल जज साहब किराये की समुचित रकम का फैसला कर दें। पांच मिनट की बहस के बाद जज साहब ने फैसला दिया, कि दोनों मुकदमे साथ-साथ चलें, उन्हें मिलाकर एक कर दिया जाय। पर क्योंकि होटल मॉडर्न रामनगर में है, अतः दोनों मुकदमे वहीं की

अदालत में गये। बाहर और फैसले की इन्तजार में सोचने लगा, मैंने किस लिये विश्वनाथजी को अपना वकील किया था, और किसलिये ३८० रुपये मैंने उन्हें खर्चे के लिये दिये थे? यदि मैं जवाबदावा खुद लिख सकता था, तो हाईकोर्ट में खुद ही अपने मामले की पैरवी भी कर सकता था। पर जब भगवान् के मन्दिर में भी पुजारी की सहायता के बिना काम नहीं चल सकता, तो हाईकोर्ट में वकील साहब की मदद के बिना कैसे काम चल सकता था। उनको दक्षिणा दिये बिना तो हाईकोर्ट के चक्रव्यूह में प्रवेश पा सकना भी कठिन हो जाता।

अब होटल मॉडर्न के मुकदमे रामनगर के सिविल जज साहब की अदालत में आ गये थे। मुझे आशा थी, कि अब शीघ्र ही किराये का मामला तय हो जायगा, और मेरी नैया किसी किनारे आ लगेगी। पर विजयनगर रियासत के वकील लोग इतनी जल्दी मेरा पीछा छोड़नेवाले नहीं थे। आठ दिसम्बर को रामनगर में मेरे मुकदमों की तारीख थी। मैं समझता था, आज दोनों पक्षों के दृष्टिकोण, साक्षी आदि को जानकर जज साहब कुछ न कुछ फैसला अवश्य दे देंगे। यदि अन्तिम निर्णय न भी हुआ, तो भी अधिक से अधिक एक अन्य पेशी में मामला निबट जायगा। पर जब मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई, तो पाण्डेय साहब ने एक नई दरख्वास्त पेश कर दी। इसमें जज साहब से यह प्रार्थना की गई थी, कि क्योंकि मेरी अधीनता में होटल मॉडर्न का नाम बदनाम हो गया है, और मैंने होटल के सब फर्निचर व सामान को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है, अतः होटल का इन्तजाम करने के लिये एक रिसीवर नियुक्त कर दिया जाय, जो मेरी ओर से सब काम करे। असली मुकदमों पर विचार की तो अब गुंजाइश ही नहीं थी। रिसीवर नियुक्त करने की दरख्वास्त पर विचार शुरू हुआ। मेरे वकील खन्ना साहब ने भी खूब बढ़-चढ़कर अपने हाथ दिखाये। यद्यपि यह बात भी, कि मैं बड़े परिश्रम के साथ होटल चला रहा था। उसका सब सामान बिल्कुल ठीक हालत में था, और जज साहब खुद भी अनेक बार होटल में आ

में अपने मित्रों से मिलने या किसी पार्टी में शामिल होने के लिये आ चुके थे। वे भली भांति जानते थे, कि विजयनगर रियासत के वकील साहब की दरख्वास्त बिल्कुल निरर्थक है, और उसका प्रयोजन केवल मुझे परेशान करना है। पर अदालत में उन्हें कानून के अनुसार कार्य करना था। श्री शोभाराम पाण्डेय एम० एल० ए० की युक्तियों की सर्वथा उपेक्षा कर सकना भी उनके लिये सुगम नहीं था। उन्होंने मुझे अपने पक्ष में साक्षी उपस्थित करने का अवसर दिया, और मामले के फैसले के लिये दस जनवरी की तारीख लगा दी।

अब मैंने भली भांति अनुभव कर लिया था, कि होटल मॉडर्न के किराये का मामला जल्दी तय हो जानेवाला नहीं है। उसमें कई साल लग जायेंगे। पहले रिसीवर नियुक्त करने की बात का फैसला होगा, और यदि उसका निर्णय मेरे पक्ष में हुआ, तो भी श्री पाण्डेय असली मुकदमे पर विचार करने का जल्दी मौका नहीं देंगे। उनके तरकश में तीरों की कमी नहीं थी। मुझे ज्ञात हुआ, कि वे एक और दरख्वास्त हाईकोर्ट में पेश करने का विचार कर रहे हैं, और रिसीवर के मामले को भी आगे ले जाना चाहते हैं। इधर मेरे साथी भी चुपचाप नहीं बैठे थे। उन्होंने मुझसे कहा, आप एक दरख्वास्त सरकार के 'कस्टोडियन आफ एवेक्यूई प्राप्रटी' साहब के पास भेज दीजिये, जिसमें यह प्रार्थना कीजिये, कि क्योंकि होटल मॉडर्न के मालिक नवाब साहब ने कराची में एक बंगला खरीद लिया है, अतः उन्हें 'इवेक्यूई' घोषित किया जाय, और होटल मॉडर्न को कस्टोडियन साहब अपने अधिकार में कर लें। राजा साहब की प्रेरणा से यह दरख्वास्त पेश कर दी गई, और इस बात के प्रमाण भी पेश कर दिये गये, कि नवाब साहब ने सचमुच कराची में एक बंगला खरीद लिया है। कस्टोडियन साहब ने मेरी दरख्वास्त को मंजूर कर लिया, और यह हुक्म जारी कर दिया, कि होटल मॉडर्न का किराया नवाब साहब को न देकर कस्टोडियन के दफ्तर में जमा कराया जाय। दस जनवरी को जब सिविल जज साहब की अदालत में मेरा मुकदमा शुरू

हुआ, तो कस्टोडियन साहब का आर्डर पेश कर दिया गया। इस आर्डर के होते हुए नवाब साहब का होटल मॉडर्न से कोई ताल्लुक नहीं रह जाता था। अब क्योंकि होटल मॉडर्न का किराया वसूल करने की जिम्मेवारी कस्टोडियन पर थी, नवाब साहब को इस मामले में मुझसे कुछ भी कहने का हक नहीं था। पाण्डेय साहब ने जब इस आर्डर को देखा, तो उनका मुंह सूख गया। वे हक्के-बक्के रह गये। मेरे वकील खन्ना साहब ने ऐसा दुरुस्त कानूनी नुक्ता था, कि पाण्डेयजी के पास उसका कोई जवाब नहीं था। अब उन्होंने यह अर्जी पेश की, कि रिसीवर नियुक्त कराने के मामले पर निर्णय को अभी स्थगित रखा जाय। पर खन्ना साहब का कहना था, कि पाण्डेयजी को अदालत में मुकदमे के लिये आने का कोई हक ही नहीं है। उनका होटल मॉडर्न से अब कोई सम्बन्ध नहीं। न अब होटल से नवाब साहब का कोई सम्बन्ध है, और न उनके वकील का। पर सिविल जज साहब ने पाण्डेयजी की अर्जी को स्वीकार कर लिया, और अगली तारीख पांच फरवरी की डाल दी गई।

अब पाण्डेयजी के सम्मुख यह समस्या थी, कि कस्टोडियन साहब के आर्डर को कैसे रद्द कराया जाय। वे भागे-भागे लखनऊ गये, वहां जाकर उत्तर-प्रदेश के प्रधान कस्टोडियन साहब की सेवा में मामले को उपस्थित किया। नवाब साहब की गिनती उन मुसलमानों में की जाती थी, जिन्होंने भारत में स्वराज्य के स्थापित होते ही मुस्लिम लीग का साथ छोड़कर कांग्रेस का सदस्य होना स्वीकार कर लिया था। १५ अगस्त, १९४७ को उन्होंने स्वराज्य-स्थापना की खुशी में एक बड़ा भोज भी दिया था, जिसमें प्रान्त के अनेक गण्यमान्य नेता और मिनिस्टर लोग सम्मिलित हुए थे। ऐसे राष्ट्रप्रेमी भारतभक्त को इन्टेन्डिंग एवेक्यूई घोषित करके रामनगर के कस्टोडियन साहब ने ऐसा कार्य नहीं किया था, जिसका प्रान्तीय सरकार अनुमोदन कर सकती। पर कानून तो कानून ही है। अब लखनऊ में एक नया मामला शुरू हो गया। अब पाण्डेयजी को यह सिद्ध

करता था, कि नवाब साहब इन्टेन्डिंग एवैक्युई नहीं हैं। नवाब साहब को अब यह भी भय हो गया था, कि कहीं उनकी आगरा, नैनीताल, दिल्ली आदि की सम्पत्ति पर भी कस्टोडियन अपना अधिकार न कर लें। होटल मॉडर्न के किराये के मुकाबले यह मामला बहुत अधिक महत्वपूर्ण था। पांच फरवरी को जब रामनगर में सिविल जज साहब की अदालत में मेरे मुकदमे की पेशी हुई, तब तक पाण्डेयजी यह आशा नहीं छोड़ सके थे, कि रामनगर के कस्टोडियन साहब के आर्डर को रद्द किया जाय। उन्होंने फिर मुकदमे को स्थगित करने की अर्जी दी। अब मेरे वकील खन्ना साहब ने खूब बढ़-चढ़कर हाथ दिखाये। उन्होंने कहा, इस तरह बार-बार मुकदमे को मुल्तवी करने से मेरे मुवक्किल को सख्त नुकसान पहुंच रहा है। अब जज साहब को यह फैसला दे देना चाहिये, कि विजयनगर के नवाब का होटल मॉडर्न से कोई सम्बन्ध नहीं है, और किराये के बारे में उनके मुकदमे पर विचार करने की कोर्ट को कोई जरूरत नहीं है। पर पाण्डेयजी इतनी आसानी से अपनी हार मान लेनेवाले नहीं थे। उन्होंने कहा, मुकदमे की तारीख पड़ जाने से खन्ना साहब को जरूर नुकसान है, इससे उनके समय का हर्ज होता है। पर उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिये हम तैयार हैं। खन्ना साहब को उस दिन की पेशी के १०० रुपये विजयनगर रियासत की ओर से दे दिये गये। अब उन्हें अगली तारीख डाल देने में कोई आपत्ति नहीं रही। मुकदमे तीन मार्च तक फिर स्थगित कर दिये गये। हर महीने अदालत का चक्कर काटना और वहां घण्टों तक अपनी बारी आने का इन्तजार करने में मेरा भी कोई नुकसान होता है, इसकी चिन्ता किसी को नहीं थी। अदालत के चक्कर में जो आदमी एक बार फंस जाता है, न उसके समय की कोई कीमत रहती है, और न उसके रुपये की। आठ महीने की मुकदमेबाजी में मेरे चार हजार से अधिक रुपये स्वाहा हो चुके थे, और असली मामले पर अभी विचार भी शुरू नहीं हुआ था।

## ( २९ )

## समझौता

मुकदमेबाजी से मैं बेहद परेशान था। होटल मॉडर्न से मुझे जरा भी नफा नहीं था। अक्टूबर में रामनगर की सीजन समाप्त हो गई थी, और हिसाब लगाकर मैंने मालूम किया था, कि मैं अधिक से अधिक १५,००० रुपया किराये के बद में दे सकता हूं। यदि किराये की मात्रा १५,००० से अधिक तय हुई, तो वह रकम मुझे अपनी जेब से देनी होगी। मुकदमे में क्या फैसला होगा, यह सर्वथा अनिश्चित था। यदि कहीं जज साहब का फैसला मेरे पक्ष में हुआ, तो भी मेरी समस्या का अन्त नहीं हो जायगा। रियासत के वकील रामनगर के सिविल जज के निर्णय के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील करेंगे। कोई कानूनी पायन्ट निकालकर यदि वे सुप्रीम कोर्ट में चले गये, तो भी कोई आश्चर्य नहीं। और यदि मुकदमे का फैसला मेरे खिलाफ हुआ, तब तो मेरी मौत ही समझिये। ३१,००० रुपया मैं किस प्रकार दूंगा, और मुकदमे में मेरा जो खर्च हो रहा है, वह कहां से लाया जायगा। निजामनगर-जैसी सम्पन्न रियासत के लिये मुकदमेबाजी पर दस-बीस हजार रुपया खर्च कर देना बिल्कुल मामूली बात थी। पर नवाब साहब और उनके वकील पाण्डेयजी 'इन्टेन्डिंग एवेक्यूई' के मामले से सख्त परेशान थे। हाथी और चींटी का क्या मुकाबला? पर कभी-कभी चींटी भी हाथी के ऐसे मर्मस्थल पर चोट कर देती है, कि हाथी बेहाल हो जाता है। मैंने भी नवाब साहब के ऐसे ही मर्मस्थल पर चोट की थी। वे भी मुझसे कुछ परेशानी अनुभव करने लग गये थे। इस हालत में मेरे मन में आया, कि क्यों न किराये के मामले में रियासत से समझौता कर लिया जाय। शायद अब वे भी मुकदमे से कुछ परेशान हों, और समझौते की बात पर गौर करने के लिए तैयार हो जावें। [illegible] बगैरा के

होटलों में नई सीजन के लिये तैयारी शुरू हो जाती है, और यदि समझौते की बात चलानी हो, तो यही उसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त अवसर था। जिस तरह भी सम्भव हो, मैं होटल मॉडर्न से अपना पीछा छुड़वाना चाहता था। न इससे आमदनी थी, और न किसी प्रकार का आराम। मैंने हिम्मत की, और एक पत्र विजयनगर रियासत के मैनेजर खां बहादुर जनाब अशफाकुल्ला खां साहब की सेवा में भेज दिया। इस पत्र की नकल अब तक मेरे पास सुरक्षित है। पत्र अंग्रेजी में था, उसका हिन्दी-अनुवाद मैं यहां देता हूं—

प्रिय महोदय, शायद आपको मेरा यह पत्र पाकर आश्चर्य होगा। मुझे ज्ञात नहीं, कि विजयनगर रियासत का होटल मॉडर्न के किराये के बारे में मेरे साथ जो मुकदमा चल रहा है, उसके सम्बन्ध में आप क्या अनुमान करते हैं। पर मैं बहुधा सोचा करता हूं, कि क्या हमारे लिये यह सम्भव नहीं है, कि हम आपस में मिलकर खुद ही इस मामले को निबटा सकें। शायद यह आप स्वीकार करेंगे, कि मैं एक सुशिक्षित व्यक्ति हूं, और शिक्षा की दृष्टि से उन सिविल जज साहब की अपेक्षा कम नहीं हूं, जिनके सम्मुख यह मुकदमा पेश है। आपके ज्ञान और अनुभव का भी मुझे भली प्रकार ज्ञान है, और मैं आपके प्रति आदर का भाव भी रखता हूं। लाला साहब और पाण्डेयजी कानूनी दांवपेंच में चाहे कितने ही कुशल क्यों न हों, पर सांसारिक अनुभव और सामान्य बुद्धि (कामन सेन्स) में वे हम दोनों से अधिक नहीं हैं। इस दशा में यह क्योंकर कठिन होना चाहिये, कि हम दोनों साथ मिलकर बैठ सकें, और किसी वकील या जज की मदद के बिना ही अपने विवादग्रस्त मामलों का खुद फैसला कर लें। यदि आप मेरे विचार से सहमत हों, तो कृपया रामनगर आने का कष्ट कीजिये। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं खुद आगरा आकर आपसे भेंट करने के लिये तैयार हूं। यदि आप मेरे विचार से सहमत न हों, तो इस पत्र को रद्दी की टोकरी में फेंक दीजिये। उस दशा में मैं यह आपसे आशा करूंगा ही, कि आप

मेरे इस पत्र को बिलकुल प्राइवेट समझेंगे, और मुकदमे के सिलसिले में इसे किसी भी रूप में प्रयुक्त नहीं करेंगे। मुझे भरोसा है, कि कम से कम मेरी इस आशा पर आपकी ओर से कोई आघात नहीं पहुंचेगा।

खां बहादुर असफाकुल्ला खां साहब ने बाद में मुझे बताया, कि उन्हें मुझसे इस प्रकार का पत्र पाने की स्वप्न में भी सम्भावना नहीं थी। वस्तुतः ऐसा पत्र उन्हें कभी किसी ने नहीं लिखा था। वे एक बहुत बड़ी रियासत के मैनेजर थे। जमीन-जायदाद के साथ मुकदमेबाजी लगी ही रहती है। बहुत बड़े-बड़े आदमियों के साथ उनके मुकदमे हो चुके थे, और मेरा मामला उनकी दृष्टि में कोई अधिक बड़ा या महत्त्वपूर्ण भी नहीं था। मेरा पत्र पाकर वे एकदम स्तम्भित रह गये थे। पर उसकी उपेक्षा कर सकना उनके लिये सम्भव नहीं था। आखिर वे भी मनुष्य थे और मानवता सब कानून-कायदों और आदर्शों से ऊपर होती है। मेरे पत्र का जवाब उन्होंने तार से दिया। तार द्वारा उन्होंने मुझे सूचित किया, कि वे २७ मार्च को बारह बजे रामनगर पधार रहे हैं। खां बहादुर साहब का स्वागत करने के लिये मैं खुद उस स्थान पर गया, जहां से आगे रामनगर में मोटर नहीं आ सकती। वे मुझसे बड़े प्रेम के साथ मिले। मैंने उनसे अनुरोध किया, कि वे होटल मॉडर्न में मेरे अतिथि-रूप में ही ठहरें। उन्हें इसमें संकोच अनुभव होता था, क्योंकि अभी तक हमारा फैसला नहीं हुआ था। मुकदमेबाजी लड़ाई से किसी भी प्रकार कम नहीं होती, और अपने शत्रु के घर ठहरने के लिये मनुष्य में असाधारण साहस चाहिये। पर मेरे अनुरोध को मैनेजर साहब नहीं टाल सके। हम दोनों एक रिक्शा पर बैठकर होटल मॉडर्न आये, और यह तय हुआ, कि जब मैनेजर साहब गुसल और लंच से निबट जायेंगे, तब हमारी बातचीत होगी।

तीसरे पहर [illegible] बजे के लगभग भोजन करके खां साहब अपने कमरे से बाहर आये। होटल मॉडर्न के ड्राइंग-रूम में एक बेंच पर हम दोनों की गोलमेज-कान्फरेन्स शुरू हुई। खां बहादुर साहब ने मुझसे कहा—

आपका हुकुम पाकर मैं विजयनगर आ गया हूं। कहिये, आप क्या प्रस्तावित करते हैं। मैंने कहा—मैंने होटल तीन साल के लिये किराया पर लिया था। पर उससे मुझे भारी नुकसान है। मुझे अधिक प्रसन्नता होगी, यदि कोई ऐसा किरायेदार आपको मिल सके, जो ३१,००० रुपया या इससे भी अधिक किराया देकर उसे आपसे ले ले, और उसे नफे पर चला सके। मैं होटल को अभी छोड़ देने के लिये तैयार हूं, बशर्ते कि आप जितने समय के लिये होटल मॉडर्न मेरे पास रहा है, उसके किराया की इतनी रकम स्वीकार कर लें, जिसमें न मुझे कोई नुकसान रहे, न कोई नफा। मेरे बही-खाते के अनुसार यह रकम १९,००० रुपया है। खां बहादुर साहब को सोच-विचार में दो मिनट से अधिक समय नहीं लगा। उन्होंने कहा, मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार है। उसी समय एक कागज मंगाया गया। बहुत संक्षेप के साथ नया शर्तनामा लिख लिया गया और हम दोनों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। जो कानूनी युद्ध हम दोनों में आठ-नौ महीने से चल रहा था, इस प्रकार उसका अन्त हुआ। भोजन के उपरान्त हमने एक साथ मिलकर चाय पी, और यह निश्चय किया, कि एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर मैं होटल के सामान का चार्ज खां साहब को दे दूंगा, और हम दोनों अपने-अपने मुकदमे अदालत से वापस ले लेंगे। समझौते का इकरार-नामा अदालत में पेश कर दिया जायगा, और मुकदमेबाजी में दोनों पक्षों का अब तक जो खर्च हुआ, या भविष्य में होगा, दोनों पक्ष उसके लिये स्वयं जिम्मेवार होंगे। खर्चे के लिये कोई पक्ष एक दूसरे पर दावा नहीं करेगा।

अदालती चक्कर से मैं इतनी सुगमता से मुक्त हो जाऊंगा, इसकी मुझे स्वप्न में भी सम्भावना नहीं थी। समझौते का प्रस्ताव करते हुए जब मैंने खां बहादुर साहब को पत्र लिखा था, तो मैं अनुभव करता था, कि मैं अंधेरे में तीर चला रहा हूं। हो सकता है, कि यह पत्र विजयनगर रियासत के लॉ-डिपार्टमेन्ट में भेज दिया जाय, और उसके कुशल वकील

उसमें कोई ऐसे पायन्ट ढूंढ़ निकालें, जिन्हें मुकदमे में मेरे विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सके। पर मैं यह स्वीकार करूंगा कि, खां बहादुर साहब में मानवीय गुणों का अभाव नहीं था। एक बड़ी रियासत के मैनेजर होने के कारण उन्हें बहुधा रैयत से निर्दयता का बर्ताव करना पड़ता था। लगान वसूल कराते हुए कठोर नीति का प्रयोग करना, बेगार लेना और सरकश किसानों को पिटवाना उनका रोज का काम था। अपनी रियासत की जनता को वे 'प्रजा' समझते थे, जिसका एकमात्र कर्तव्य यह था, कि वह नवाब बहादुर या उनके कर्मचारियों की आज्ञाओं का पालन आंख मींचकर करें, उनके सामने सिर न उठावें और उनके मुकाबले में अपने को हीन समझें। पर इस भावना के लिये मैं खां बहादुर साहब को दोष नहीं दे सकता। यह हमारे सामाजिक संगठन का दोष था, जिसके कारण कुछ लोग मालिक और दूसरे रैयत बने हुए थे। खां बहादुर साहब मालिकों में से थे, और मालिक के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने में वे जरा भी प्रमाद नहीं करना चाहते थे। पर दूषित सामाजिक संगठन ने भी उनके हृदय से मानवता को सर्वथा नष्ट नहीं कर दिया था। यही कारण है, कि उन्होंने मेरे मन का दुरुपयोग नहीं किया, और मुझसे समझौते के लिये तैयार हो गये।

पर साथ ही में यह भी [illegible] कि खां बहादुर साहब जो मुझसे समझौता करने के लिए इतनी सुगमता के साथ तैयार हो गये, उसमें कुछ अन्य कारण भी थे। जमींदारी-प्रथा को नष्ट करने का कानून उत्तर प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा में पेश था, और कांग्रेस-पार्टी के बहुमत के कारण यह बिल्कुल प्रत्यक्ष नजर आता था, कि अब जमींदारी का अन्त होने में अधिक समय नहीं रह गया है। जानकार लोग कहते थे, कि १९५० के अगस्त मास में जमींदारियां [illegible] हो जावेंगी। अब जमींदारों के समान [illegible] नवाब साहब के मस्तिष्क में यह समस्या विद्यमान थी, कि जमींदारी के खत्म हो जाने के बाद उनकी

आमदनी का क्या साधन रह जायगा ? रियासत के मैनेजर, पेशकार, अहल्कार, मुनीम, गुमाश्ते—सबको यह आशंका थी, कि अगस्त, १९४९, के बाद वे सब बेरोजगार हो जायेंगे। होटल मॉडर्न इस अन्धकार में उनके लिये प्रकाश की किरण के समान था। मैनेजर साहब का ख्याल था, कि जमींदारी नष्ट हो जाने के बाद वे खुद होटल मॉडर्न को संभाल सकेंगे, और उनके कितने ही कर्मचारी होटल में असिस्टेन्ट, क्लार्क आदि का कार्य कर लेंगे। साथ ही, नवाब साहब रामपुर के कस्टोडियन द्वारा इवेक्युई प्रोपर्टी उद्घोषित हो जाने के कारण भी बहुत परेशान थे। उनका ख्याल था, कि इस मुसीबत की जड़ मैं ही हूं। मेरे रूप में उन्हें अपना एक ऐसा समर्थ शत्रु नजर आता था, जिसने उनके खिलाफ आन्दोलन करने के लिये कमर कस ली है, और जो भारत के कस्टोडियन साहब के पास भी ऐसे प्रमाणों को प्रस्तुत करने के लिये तैयार बैठा है, जिनसे उनकी अपनी रियासत भी खतरे में पड़ सकती है। वे मुझसे पीछा छुड़ाने के लिये उत्सुक थे। इन दिनों नवाब साहब भारत में ही विद्यमान थे। ईराक, अरब और ईरान में पर्यटन की सुविधाओं के सम्बन्ध में उन्होंने यह जरूरी समझा था, कि भारत में रहकर पहले इस्टेट की चिन्ता करें। इसलिये उन्होंने भी अपने मैनेजर खां बहादुर अलफाजुल्ला खां साहब को मुझसे समझौता कर लेने के लिये आदेश दे दिया था।

पर मैं यह जरूर कहूंगा, कि यदि वकील लोग हमारे मुकदमों को लटका न रखते, हमें कानूनी शिकंजों में फंसाये रखने का निरन्तर उद्योग न करते रहते, तो अदालत द्वारा हमारा फैसला हो जाने में दो-तीन महीने से अधिक देर न लगती। यह माना जाता है, कि वकीलों का काम न्याय के कार्य में अदालत की मदद करना है, और वे कानून के अफसर हैं। पर मुझे मुकदमेबाजी में फंसकर जो अनुभव हुआ, उससे मैं इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं। मेरी सम्मति में वकीलों से न मुवक्किलों को लाभ पहुंचता है, और न न्याय-कार्य में सहायता ही मिलती है। यदि

वकालत के पेशे को गैरकानूनी ठहरा दिया जाय, अदालतों में वकील न रहें, और लोग अपने विवादग्रस्त मामलों को सीधी-सादी भाषा में स्वयं अदालत में पेश किया करें, तो न्यायाधीश लोग कानून के अनुसार उनका बहुत सुगमता के साथ फैसला कर सकते हैं। वकील लोग न्याय के कार्य में अदालत की मदद नहीं करते, वे मामले को उलझाने में ही अपना व अपने मुवक्किल का भला समझते हैं, और उनके कारण मुकदमों का फैसला होने में व्यर्थ की देर होती है। यदि कानून के विविध पहलुओं को सामने लाने के लिये और मुकदमे के पक्ष-विपक्ष की युक्तियों को प्रस्तुत करने के लिये किन्हीं विशेषज्ञों की आवश्यकता समझी ही जाय, तो क्या यह सम्भव नहीं है, कि अदालत की तरफ से ही प्रत्येक मुकदमे में दो वकीलों को नियुक्त कर दिया जाया करे, एक वादी के पक्ष में और दूसरा प्रतिवादी के पक्ष में। इन वकीलों को नियमित वेतन मिले, ठीक उसी प्रकार जैसे कि न्यायाधीशों को मिलता है। कोर्ट-फीस के रेट में कुछ वृद्धि करके इन वकीलों के वेतन का खर्च अवश्य पूरा किया जा सकता है। अंग्रेजी राज्य में भारत ने इंगलैण्ड से जो बहुत-सी बुरी बातें ग्रहण की हैं, अदालती न्याय-व्यवस्था और वकील भी उन्हीं में से हैं। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद क्या हम इनसे अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकते?

## (३०)

## इन्कमटैक्स

६ जुलाई को [illegible] गाँधीजी का आशीर्वाद लेकर मैंने रामनगर से विदा ली। मैं समझता था, मुसीबत [illegible] दिन अब बीत गये। कोई एक साल पहले जब मैंने [illegible] किया था, तो मुझे उससे बड़ी-बड़ी आशायें थीं। [illegible] था, कि [illegible] [illegible] और सुखी जीवन [illegible] सकता है।

पर मेरी यह आशा पूर्ण नहीं हुई। "चौबेजी छब्बे होने चले थे, पर दुबे ही रह गये", यह कहावत मुझ पर पूरी तरह से चरितार्थ हुई। इसमें सन्देह नहीं, कि मैं बिना कोई नुकसान उठाये रामनगर से वापस लौट आया था। मुझे यह सन्तोष था, कि इस एक साल में जितने विविध प्रकार के लोगों के निकट सम्पर्क में आने का मुझे अवसर मिला, जो अनुभव मैंने प्राप्त किये, वे इतने थोड़े-से समय में अन्य किसी भी तरह से प्राप्त नहीं किये जा सकते थे। पर मेरी परेशानियों का अभी अन्त नहीं हुआ था। मुझे अभी कुछ अन्य कटु अनुभव होने बाकी थे।

रामनगर से लौटकर मैं देहरादून आ गया था, और कोई नया काम करने की फिक्र में था। इसी बीच में २८ मई, १९४५ को मुझे रामनगर के इन्कमटैक्स आफिसर साहब का नोटिस मिला, कि ३५ दिन के अन्दर अन्दर मैं होटल मॉडर्न की आमदनी का हिसाब उनकी सेवा में भेज दूं। हिसाब की सब किताबें मेरे पास थीं। विजयनगर रियासत से किराये के बारे में मेरा समझौता इस आधार पर हुआ था, कि न मुझे कोई नुकसान रहे, और न कोई नफा। मैंने इसी के अनुसार अपनी आमदनी और खर्च का विवरण बनाकर भेज दिया। इन्कम-टैक्स का हिसाब भेजने का यह मेरा पहला मौका था। इससे पहले भी मैं इन्कम-टैक्स देता रहा था पर फौजी नौकरी में होने के कारण टैक्स की रकम मेरे वेतन से ही काट ली जाती थी। मुझे कभी इन्कमटैक्स के आफिसर साहब की कोर्ट में पेश होने की आवश्यकता नहीं हुई थी। १५ जून को मुझे डाक द्वारा सूचना मिली कि होटल मॉडर्न के बारे में जो हिसाब मैंने पेश किया है, उसके सम्बन्ध में कुछ पूछ-ताछ की जानी है, अतः २५ जून को सुबह १०॥ बजे मुझे रामनगर में इन्कमटैक्स आफिसर साहब के कोर्ट में उपस्थित होना होगा। मैं २० जून को ही रामनगर पहुंच गया, अपने सब बही-खाते व अन्य कागज साथ ले गया, और २५ जून को सवा दस बजे ही इन्कमटैक्स के दफ्तर में आ पहुंचा। रामनगर से मैं भलीभांति परिचित था, वहां का इन्कमटैक्स

आफिस एक दुमंजिली कोठी में था, जिसकी ऊपरली मंजिल में आफिसर साहब का निवास-स्थान था । निचली मंजिल के दो कमरे उनके क्लर्कों के रहने के लिये थे । एक कमरे में इन्कमटैक्स आफिसर अपना कोर्ट लगाते थे और दूसरे कमरे में क्लर्क लोग बैठते थे । टैक्स अदा करनेवाले सज्जनों के बैठने के लिये बरामदे में कुछ कुर्सियां पड़ी हुई थीं, जहां न धूप से रक्षा होती थी, और न वर्षा से । मैं भी चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया । मुझे साढ़े दस बजे का समय दिया गया था, पर एक बजे तक मेरी बारी नहीं आई । मेरी ही तरह अन्य अनेक सज्जन बरामदे में बैठे हुए अपनी-अपनी बारी का इन्तजार कर रहे थे । ठीक एक बजे इन्कमटैक्स आफिसर साहब लंच खाने के लिये अपने घर चले गये । क्लर्कों से पूछने पर मालूम हुआ, कि आफिसर साहब दो बजे तक फिर अपने कोर्ट में आ जाते हैं, पर उनका कोई समय निश्चित नहीं है । कई बार उन्हें देर हो जाती है, और कई बार जल्दी भी आ जाते हैं । इसका मतलब यह था, कि हम लोगों को भोजन व खान-पान के लिये कहीं बाहर नहीं जाना चाहिये, और यहीं बैठकर इन्कमटैक्स आफिसर साहब की इन्तजार करनी चाहिये । हमें प्रतीक्षा करते तीन बज गये । चपरासी से मालूम हुआ, कि आफिसर साहब के कोई दोस्त उनसे मिलने आ गये हैं, और वे उनसे गपशप में लगे हैं । साढ़े तीन बजे इन्कमटैक्स आफिसर साहब अपने दफ्तर में आये । अब वे जल्दी में थे, अपने दोस्तों के साथ वे सिनेमा और क्लब का प्रोग्राम बना चुके थे । कोई आध घण्टा कचहरी करके वे उठ गये, और अपने क्लर्कों को आदेश दे गये, कि जिन लोगों के टैक्स का फैसला आज नहीं हो सका, उनकी अगली तारीख [illegible] । मेरी अगली तारीख १५ जुलाई लगा दी गई । देहरादून में [illegible] आने-जाने [illegible] १०० से ऊपर रुपये खर्च हुए, मेरे जो दो [illegible], उनकी किसे चिन्ता थी ? मैं रामनगर में वापस लौट गया, और हिसाब के कागज अपने एक परिचित मित्र के यहां छोड़ गया, ताकि दुबारा उन्हें [illegible] न करना पड़े ।

१५ जुलाई को मैं फिर रामनगर पहुँचा । इस बार मेरा भाग्य अधिक अच्छा था । सुबह दस बजे से तीसरे पहर के ढाई बजे तक बरामदे में इन्तजार करने के बाद मुझे कोर्ट के अन्दर बुलाया गया । रामनगर के इन्कमटैक्स आफिसर के पद पर इस समय श्री हरिहर साहब विराजमान थे, जो बड़े ही मृदुभाषी और व्यवहार में कुशल व्यक्ति थे । २२ वर्ष की आयु में उन्होंने क्लर्क के रूप में इन्कमटैक्स के महकमे में प्रवेश किया था । अपनी मेहनत और योग्यता के आधार पर वे शीघ्र ही इन्स्पेक्टर बन गये और अब ४५ साल की आयु में आफिशियेटिंग (स्थानापन्न) इन्कमटैक्स आफिसर के पद पर आरूढ़ थे । उनकी यह स्वाभाविक इच्छा थी, कि इन्कमटैक्स आफिसर का पद उन्हें स्थिर रूप से प्राप्त हो जाय, और यदि सम्भव हो, तो और अधिक उन्नति करके असिस्टेन्ट इन्कमटैक्स कमिश्नर का पद भी प्राप्त कर लें । इससे अधिक ऊंचा उठ सकने की उन्हें कोई आशा नहीं थी । इन्स्पेक्टर से आफिसर का पद प्राप्त करने में उन्हें जो सफलता हुई थी, उसका यही रहस्य था, कि वे जहां भी जाते, अधिक से अधिक टैक्स वसूल करके दिखाते । यदि किसी हल्के से पहले पांच लाख टैक्स वसूल होता था, तो हरिहरजी वहां से आठ लाख की वसूली की कोशिश में रहते थे । रामनगर में उनकी नियुक्ति पहली बार हुई थी, और उनकी यह आकांक्षा थी, कि यहां से वसूल होनेवाले टैक्स में कम से कम ४० या ५० प्रतिशत वृद्धि कर दी जाय । इससे इन्कमटैक्स के महकमे में उनका नाम होगा, और उन्हें तरक्की का मौका मिलेगा ।

आफिस में अन्दर जाकर मैंने श्री हरिहर को प्रणाम किया । उन्होंने मेरे प्रणाम का उत्तर दिया, खूब उत्साह के साथ । एक कुर्सी की ओर इशारा करके उन्होंने मुझे बैठने को कहा । उनके व्यवहार से मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ । मैंने अनुभव किया, कि श्री हरिहर अन्य सरकारी अफसरों के समान नहीं हैं, जो नमस्ते के उत्तर में अपने मुंह या सिर को कष्ट देना उचित नहीं समझते, और कुर्सी पर बैठने के लिये कहना तो जिनकी

कल्पना से भी बाहर की बात होती है । मेरा केस शुरू करने के पहले हरिहरजी ने मेरा हालचाल पूछा, और कहा, आप रामनगर छोड़ गये, यह ठीक नहीं हुआ । आपका होटल तो खूब अच्छा चलता था, सब लोग आपके प्रबन्ध व व्यवहार से बहुत सन्तुष्ट थे । मैंने उत्तर में कहा, यदि होटल खूब अच्छा चलता और मुझे उससे आमदनी होती, तो मैं उसे क्यों छोड़ता ? साल में एक महीने के लिये यदि होटल भर भी गया, तो उससे कर्मचारियों का व अपना साल भर का खर्च कैसे चल सकता था ? अब मैं क्या कर रहा हूँ, इस विषय में भी हरिहरजी ने मुझसे प्रश्न किया । यह जानकर कि अभी मैं बेकार हूँ, उन्होंने खेद भी प्रगट किया । कुछ देर तक इसी ढंग की औपचारिक बातचीत होती रही । फिर उन्होंने मेरी फाइल निकाली, और [illegible] किया । होटल से मुझे कुल मिलाकर १६,००० के लगभग [illegible] । किराये, टैक्स और मरम्मत आदि में २५,००० से कुछ अधिक खर्च हुआ था । कर्मचारियों के वेतन में १०,०००, भोज्यपदार्थों के क्रय में ६७,०००, बिजली-पानी में ३५००, विज्ञापन व पत्र-व्यवहार में १००० और अन्य विविध मदों में ४५०० रु० के लगभग खर्च दिखाया गया था । मुफ्तखोराकी और सफर-खर्च के मिलाकर ५००० रु० खर्च हुए थे । इस प्रकार हिसाब में मुझे न कोई नुकसान हुआ था, और न कोई नफा । मेरे हिसाब को देखकर ही विजयनगर रियासत के मैनेजर साहब ने १५,००० रु० मुझसे होटल [illegible] के किराये का लेना स्वीकार किया था । मेरी कैशबुक और लेजर—दोनों बिलकुल सही-सही लिखे गये थे । पर यदि इन्कमटैक्स आफिसर साहब मेरे हिसाब को स्वीकार कर लेते, तो वे रामनगर से टैक्स की आमदनी में वृद्धि कैसे कर सकते थे ? टैक्स देनेवाले व्यवसायियों व व्यापारियों के सम्बन्ध में उनकी कुछ धारणायें बिलकुल स्पष्ट रूप से बनी हुई थीं । प्रत्येक टैक्सपेयर अपनी आमदनी को छिपाने का प्रयत्न करता है, [illegible] हिसाब में दर्ज नहीं करता । [illegible] इस आमदनी को

ढूंढ़ निकालने का यत्न करें। यदि टैक्स पेयर लोगों द्वारा पेश किये हुए हिसाब को ही आंख मीचकर मानते जावें, तो शायद इन्कमटैक्स वसूल कर सकना सम्भव ही न हो।

श्री हरिहर ने सबसे पहले बैंक की पासबुक देखी। उसमें दर्ज की गई अनेक रकमों के बारे में उन्होंने मुझसे पूछा, ये हिसाब में दिखाई गई हैं या नहीं। मेरा हिसाब बिल्कुल सही था, वे बैंक में जमा की गई एक भी ऐसी रकम नहीं पा सके, जो हिसाब में दर्ज न हो। अब उन्होंने होटल का वह रजिस्टर देखा, जिसमें प्रत्येक मेहमान का नाम व पता दर्ज होता है। उन्हें यत्न करने पर भी कोई ऐसा नाम नहीं मिला, जिसका बिल होटल की बिलबुक में न हो, और जिससे प्राप्त हुई रकम को मैंने [illegible]-खाते में जमा किया हो। अब उन्होंने बिलबुक ली, और यह तलाश शुरू की, कि किसी बिल की रकम मैंने आमदनी-खाते में जमा करने से छोड़ दी हो। इस दिशा में भी उन्हें निराशा हुई। पर श्री हरिहरजी इतनी सुगमता से अपनी हार मानने को तैयार नहीं थे। अब उन्होंने खर्चे का हिसाब देखना शुरू किया। जो सामान थोक में किसी दुकान से मंगाया जाता था, उन सबके बिल व रसीदें मौजूद थीं। दूधवाला जो दूध व मक्खन देता था, कोयले वाला जो कोयला देता था, जहां से चाय, कॉफी, पोरिज आदि आते थे, सबके बिल बाकायदा व रसीदें विद्यमान थीं। पर श्री हरिहरजी यदि इतने से सन्तुष्ट हो जाते, तो वे मामूली क्लर्क से इन्स्पेक्टर और इन्स्पेक्टर से इन्कमटैक्स आफिसर कैसे बन सकते थे? उन्होंने कहा, सब्जी और फल के बिल दिखाइये। मैंने उनसे निवेदन किया, कि जो लोग सब्जी और फल बेचते हैं, न उनके पास बिलबुक होती है, और न उन्हें रसीद देकर पेमेन्ट किया जाता है। गरीब कुंजड़े होटल में सब्जी-फल लेकर आते हैं, सौदा करके माल देते हैं, और नकद पैसे ले जाते हैं। उनका रोजाना हिसाब मेरे पास मौजूद था, पर कुंजड़ों के हाथों से बनाये हुए बिल, और वह भी ऐसे कागज पर जिस पर कि उनकी फर्म का नाम-

हुआ, उसी के कारण अन्त में समझौता हो सकना भी सम्भव हुआ, और यह तोहमत आई, कि होटल मॉडर्न के हिसाब में कोई नुकसान नहीं रह गया। पर श्री हरिहर ने मेरी बात को निराधार माना, और मुकदमेबाजी के खर्चे को भी नामंजूर कर दिया। खर्चे में ११,००० रुपये के लगभग की रकम को अस्वीकृत करके ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। अब उन्होंने कहा, कि आप भी तो होटल में रहते थे, वहीं भोजन करते थे और वे सब आराम उठाते थे, जो अन्य मेहमानों को प्राप्त होते हैं। अन्य मेहमानों से आप १२ रुपया रोज के हिसाब से चार्ज करते थे। आप कम से कम ३५० दिन तो होटल में रहे ही होंगे। इन दिनों का ४२०० रुपया आपको अपनी आमदनी में अवश्य शुमार करना चाहिये। साथ ही, आपके कितने ही मित्र भोजन के दिनों में समय-समय आये होंगे। इनमें से बहुत-से आपके पास ठहरे होंगे। जो नहीं भी ठहरे होंगे, उन्होंने भी अनेक बार आपके साथ पी होगी, खाना खाया होगा और अन्य कई किस्म की सुविधाएं प्राप्त की होंगी। इसका खर्च ८०० रुपये से कम क्या हुआ होगा। अतः आपके निजी खर्च का ५००० रुपया शामिल किया जाना उचित होगा। मैंने हरिहर साहब से बड़े विनय के साथ निवेदन किया, यह ठीक है, कि मैं होटल में रहता था, और भोजन भी वहीं करता था। पर इसके लिये आप मुझसे दैनिक रेट नहीं लगा सकते। एक मास तक ठहरने-वालों के लिये मेरा रेट ३०० रु० मासिक था, और सीजन भर रहने-वालों से मैं इससे भी कम चार्ज कर लेता था। फिर होटल अक्टू-बर में बन्द हो गया था। उसके बाद के भोजन आदि का कोई भी खर्च होटल के हिसाब में जमा नहीं किया गया। इस दशा में आप अधिक से अधिक सात मास का खर्च मेरे हिसाब में डाल सकते हैं, और वह भी अधिक से अधिक २७५ रु० मासिक के हिसाब से। जहां तक मेरे मित्रों या सम्बन्धियों का ताल्लुक है, रामनगर में कोई ऐसे सज्जन मेरे पास आकर नहीं ठहरे, जो मेरे वैयक्तिक अतिथि रहे हों। कुछ सज्जन आया-जाती

मुफ्त में जरूर रहते रहे हैं, पर इनमें बहुसंख्या उन सरकारी आफिसरों की थी, जो होटल मॉडर्न जैसे होटलों को अपनी ससुराल समझते हैं, और उसमें जाकर पीकर या भोजन करके बिल के लिये कहने का भी कष्ट नहीं उठाते। मुकुन्दी एम० एल० ए० व अन्य राजनीतिक नेता मेरे पास रियायती दर पर अवश्य ठहरे थे, पर उनसे प्राप्त हुई किसी आमदनी को मैंने छिपाया नहीं है। हरिहरजी मेरी सब बातें बहुत ध्यान से सुनते रहे, पर उन्होंने किसी को स्वीकार्य नहीं समझा।

अब मेरे हिसाब की जांच समाप्त हो गई थी। इन्कमटैक्स आफिसर साहब ने घण्टी बजाकर अपने स्टेनो को बुलाया और अपना फैसला लिखवाना शुरू किया। फैसले में कहा गया था, कि होटल मॉडर्न के हिसाब की जांच करने से ज्ञात हुआ, कि उसमें खर्च का हिसाब ठीक तरह से नहीं रखा गया। बहुत-से खर्च ऐसे दर्ज किये गये हैं, जिनकी पुष्टि में बिल, वाउचर व रसीदें नियमित रूप से नहीं दी गई हैं। मुकदमेबाजी पर जो खर्च दिखाया गया है, कानून के अनुसार उसे कारोबार-सम्बन्धी खर्च नहीं माना जा सकता। एसेसी (जिस पर टैक्स लगाया जा रहा हो) यह स्वीकार करता है, कि वह होटल में रहता है, वहीं भोजन करता रहा है, और होटल के अन्य सब काम भी करता रहा है, उसने स्वेच्छापूर्वक कुछ मेहमानों के साथ ठहरने आदि में रियायत की है, और कुछ लोग उसके अतिथि रूप में होटल से खान-पान भोजन आदि भी मुफ्त प्राप्त करते रहे हैं, अतः यह स्पष्ट है, कि जो आमदनी व खर्च का हिसाब मेरे सम्मुख पेश किया गया है, उसके अनुसार एसेसी पर टैक्स लगाना उचित नहीं होगा। इस दशा में मेरे सम्मुख केवल यही मार्ग रह जाता है, कि जो आमदनी एसेसी ने प्रदर्शित की है, उस पर होटलों के सर्वसम्मत मुनाफे की दर से मुनाफे का अन्दाज लगा लूं। पर मैं एसेसी से ज्यादती नहीं करना चाहता। उसने मुगालते में आकर होटल [illegible] जो पिछले [illegible]

गुंजाइश नहीं थी। मैं चुपचाप हरिहर साहब के कोर्ट से उठकर बाहर चला आया।

उस समय मेरे मन की जो दशा थी, उसको शब्दों द्वारा प्रकट कर सकना सुगम नहीं है। मैं सोच रहा था, इन्कमटैक्स का महकमा भी कितना अद्भुत है। यहां जो न्यायाधीश है, वही सरकारी वकील भी है। जब किसी आदमी पर चोरी या डकैती का मुकदमा चलता है, तो जज अलग होता है, और अभियोग चलानेवाला वकील अलग। पर यहां तो इन्कमटैक्स आफिसर साहब ने खुद ही [illegible] के हिसाब की जांच करनी है, खुद ही उन्हें उसके हिसाब को गलत सिद्ध करना है, उस पर हिसाब ठीक न रखने व आमदनी छिपाने का अभियोग लगाना है, और खुद ही इस अभियोग का फैसला [illegible] हाथ में इतने अधिकार दे देना क्या उचित है?

[illegible] । सोचने लगा, कि क्या इन्कमटैक्स वसूल करने का इससे अधिक अच्छा कोई और ढंग नहीं हो सकता? ईस्ट इण्डियन कम्पनी ने किसानों से मालगुजारी एकत्र करने के लिये यह ढंग निकाला था, कि उसकी तरफ से विविध इलाकों की मालगुजारी को वसूल करने का काम ठेके पर दे दिया जाता था। जो सबसे बढ़कर बोली बोलता, उसी को यह ठेका मिल जाता। क्या इसी तरह से यह सम्भव नहीं, कि इन्कमटैक्स वसूल करने के लिये ठेके नीलाम किये जाया करें। जो सबसे बढ़कर बोली बोले, उसी को उसका ठेका दे दिया जाय। इससे सरकार को टैक्स भी अच्छा मिलेगा, और उस पर खर्च की भी कोई जिम्मेवारी नहीं रहेगी। न इन्कमटैक्स आफिसर साहब को अच्छी-मोटी तनख्वाह मिलेगी, न उनके लिये एक शानदार कोठी किराये पर ली जायगी और न ही उनके सफर-खर्च के भत्ते का बिल बनेगा। इन्कमटैक्स के ठेकेदार की [illegible] सरकारी अफसर की [illegible] नहीं, [illegible] ही एक आदमी होगा, और शायद लोगों पर उतना जुल्म नहीं कर सकेगा, जितना कि इन्कमटैक्स आफिसर साहब करते हैं। उनकी भी यही कोशिश रहती है, कि वे अधिक से अधिक

हिसाब ठीक स्वीकार किया जा सकता है। श्री माधोराम की किसी दलील ने उन पर असर नहीं किया। जब मैंने उनसे यह निवेदन किया, कि कम से कम आप इस बात को तो महत्त्व दीजिये, कि होटल मॉडर्न गर्मियों में बन्द रहता है, उन दिनों मैंने होटल से भोजन, सर्विस आदि कुछ भी प्राप्त नहीं की, तो इस बात में उन्हें कुछ वजन मालूम पड़ा। उन्होंने मेरे खर्च में गर्मियों के पांच महीने के खर्च के १८००रु० कम कर दिये। इससे मेरे टैक्स की रकम में ३०० रुपये के लगभग कम हो गये। पर इससे मुझे लाभ क्या हुआ? २७५ रुपया मैंने श्री माधोराम को दिये थे, फीस और सफर-खर्च के। ५० रुपया मेरा भी यात्रा-व्यय हुआ था। अपील से मेरा तो नुकसान ही रहा था।

अब श्री माधोराम ने मुझपर जोर देना शुरू किया, कि मैं दिल्ली जाकर ट्रिब्यूनल में अपील करूं। उनका कहना था, कि असिस्टेन्ट कमिश्नर की अदालत में प्रायः न्याय नहीं होता, पर ट्रिब्यूनल के जज न्याय करते हैं। उन्होंने मुझसे कहा, वहां अपील में १०० रु० स्टाम्प लगेगा। अपील वे खुद दायर करेंगे, और उसके लिये २०० रु० प्रति पेशी के हिसाब से फीस लेंगे। वैसे तो ट्रिब्यूनल में अपील के लिये वे ३०० रु० से कम फीस नहीं लेते। पर मेरे साथ वे रियायत करेंगे। हां, दिल्ली का सफर-खर्च तो मुझे देना ही होगा। मैंने सोचा, दिल्ली में यदि मेरा मामला एक ही दिन में तय हो गया, तो भी मेरा कुल खर्च ५०० रुपये से कम नहीं पड़ेगा। श्री माधोराम और मेरे सफर-खर्च में ही २०० रु० के लगभग उठ जायेंगे। यदि वहां [illegible] में [illegible] भी हो जाये, तो मुझे क्या लाभ हुआ? [illegible] परेशान होने से क्या लाभ है? मैंने तय कर लिया, कि अपील नहीं करूंगा। मैं मन मारकर चुप [illegible] की रकम [illegible] दी गई।

मैं [illegible] लोगों के लिये न्याय प्राप्त करना [illegible] है? ट्रिब्यूनल और हाईकोर्ट [illegible] अपील

कर सकते हैं, जिन्हें चार-पांच हजार या अधिक टैक्स [illegible] या कम टैक्स देनेवाले लोग अपील करने में कोई लाभ [illegible] भाग्य उन इन्कमटैक्स अफसरों के हाथ में रहता है, जिनके सामने अधिक से अधिक टैक्स वसूल करने का लक्ष्य रहता है, और ये अफसर प्रायः नये और अनुभवशून्य होते हैं। दीवानी अदालतों में छोटे मामले स्माल काजेज कोर्ट में पेश होते हैं, जिनके जज बहुत अनुभवी व्यक्ति रखे जाते हैं। क्या यही व्यवस्था छोटे एसेसी लोगों के लिये इन्कमटैक्स के महकमे में सम्भव नहीं है ?

× × × ×

मैंने एक साल तक एक नये होटल का संचालन किया। इस बीच में जो अनुभव हुए, उनमें से कतिपय मैंने इस पुस्तक में लिख दिये हैं। आप पूछेंगे, होटल का काम छोड़कर अब मैं क्या करता हूं? इसकी कथा भी बड़ी लम्बी है, और साथ ही मनोरंजक भी। मनुष्य की आंखें चाहिये; ये दो मांस-पिण्ड की आंखें नहीं, अपितु वह तृतीय नेत्र, जो भगवान् शिव के मस्तक पर होता है, जिससे मनुष्य को अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। भगवान् शिव के समान तृतीय नेत्र रखने का [illegible] मैं दावा नहीं करता। [illegible] होंगे, जिन्हीं लोगों [illegible] का प्रयत्न अवश्य [illegible] साधारण चर्मचक्षुओं से दिखाई नहीं देतीं। यदि पाठकों [illegible] इस आत्मकथा [illegible] जीवन के अन्य अनुभवों [illegible] उपस्थित करूंगा।